ओ३म्

योगी का आत्मचरित्र

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विषय सूची

एक निवेदन

महापुरुषों का जीवन जनसामान्य के लिए प्रेरणा का स्रोत होता है। महर्षि दयानन्द जैसी सुसंस्कारित आत्मा, जन्म-जन्मान्तर से अपने मोक्षपथ पर अग्रसर होती हुई कभी-कभी ही भूमण्डल पर जन्म लेती है और अपने ज्ञान, कर्म एवं उपासना से भूमण्डल को आलोकित कर देती है। उसी आलोक से, उस भूमण्डल पर रहने वाले मानवों को अपने जीवन को ऊँचा उठाने न केवल अवसर ही मिलता है, बल्कि बहुत से लोग भी उस महापुरुष के समान मोक्षपथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी होते और कुछ सौभाग्यशाली उस पथ को अपना लक्ष्य भी बना लेते हैं।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें अपने इस जीवन में, विलुप्त से हुए सत्य-सनातन वैदिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का दिग्दर्शन, महर्षि दयानन्द सरस्वती की असीम दया कृपा से हुआ है। उन्होंने अपने जीवन में सत्य-ज्ञान को प्राप्त करने हेतु २१ वर्ष की आयु में ही घर को छोड़ दिया और सत्य ईश्वर की खोज में, योगियों की संगति प्राप्त करने एवं सम्पूर्ण क्रान्ति हेतु भारत भर में आश्रमों, मठों, मन्दिरों एवं जंगलों का भ्रमण किया और सच्चे योगी पुरुषों की खोज की।

स्वामी जी का हस्तलिखित जीवन चरित्र एवं पूना प्रचवन में कथित जीवन चरित्र उपलब्ध होता है परन्तु वह बहुत ही संक्षिप्त है। इन दोनों में ही उनके आरम्भिक जीवन का वर्णन अति संक्षेप से मिलता है। स्वामी विरजानन्द जी के पास शिक्षा हेतु जाने से पूर्व का वृतान्त अत्यन्त ही संक्षिप्त है। स्वामी जी ने कलकत्ता में अपने इस जीवनकाल की घटनाओं को अधिक विस्तार से संस्कृत में लिखवाया था तथा उन्हें यह भी आदेश दिया था कि इसे हमारे जीवन काल में न छापा जाये। "योगी का आत्मचरित्र" उसी का हिन्दी अनुवाद है।

इससे स्वामी जी के जीवन के बहुत से रहस्यों का पता चलता है। स्वामी जी द्वारा सत्य-ज्ञान की खोज में किन-किन लोगों से मिले, योगियों की खोज में कहाँ-कहाँ भटके, और योगी मिलने पर उन्होंने अपने जीवन में साधना किस प्रकार की, उस काल में उनकी दिनचर्या का वर्णन, योग पर उनके गुरुओं द्वारा प्रदत्त ज्ञान, २४-२५ वर्ष से २७-२८ वर्ष तक तीन वर्ष व्यासाश्रम में तथा ३० वर्ष की अवस्था तक

तीन वर्ष आबूपर्वत रामगुफा में साधना का वर्णन, योग की विभिन्न सिद्धियों की प्राप्ति का विस्तार से वर्णन इस अमूल्य ग्रन्थ में मिलता है। उसके पश्चात् स्वामी का भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान का वर्णन भी केवल मात्र इसी ग्रन्थ में मिलता है।

स्वामी जी ने योग के विषय में और अन्य विषयों में जो कुछ उनके, उस काल के गुरुओं ने सिखाया था, उसे उसी प्रकार से कह और लिखवा दिया था। स्वामी जी सत्यान्वेषी थे, और सत्य का ज्ञान होने पर अपनी मान्यता को बदलने में कभी भी देर नहीं लगाते थे। जैसे पहले वह मुक्ति को अनन्त मानते थे, फिर बाद में उसे सान्त मानने लगे। इसी प्रकार इस जीवन चरित्र में कुछ घटनायें असम्भव सी लगती हैं, कुछ बातें पौराणिक मान्यताओं से प्रभावित लगती हैं। सिद्धान्त पक्ष हेतु स्वामी जी के ग्रन्थ एवं वेदानुकूल मान्यतायें ही अन्तिम मार्ग दर्शक हैं। अतः इस जीवन चरित्र को इसी रूप में देखना चाहिए और मान्यता रूप से जहाँ कही विसंगति प्रतीत हो वहाँ यह जानना चाहिए कि उनके पौराणिक गुरुओं ने जो कुछ कहा था, स्वामी जी उसका वर्णन कर रहे हैं और उस मान्यता के सत्यासत्य के निर्णय हेतु स्वामी के स्वलिखित ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए। आर्यसमाज के नियमानुसार हमें भी सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

स्वामी जी का यह जन्मचरित्र वर्तमान में उपलब्ध नहीं था। आचार्य भद्रकाम जी ने अत्यन्त पुरुषार्थ करते हुए इस का सम्पादन कर सुन्दर रूप से छपवा दिया, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। स्वामी जी के इस जीवन चरित्र से अगर कुछ लोगों को भी अपने जीवन में परिवर्तन करने की प्रेरणा मिलती है, और वे योग के अमरता प्रदान करने के मार्ग पर अग्रसर होते हैं, तो यह मानना चाहिए ग्रन्थ सम्पादन का यह कार्य सफल हुआ है। और मेरा मानना है ऐसा होता है, इससे बहुत से लोग अपने जीवन उज्ज्वल करने में सफल होंगे। परम पिता परमात्मा हम पर कृपा करे कि मनुष्य जीवन की सफलता = मोक्षपथ पर हम सभी अग्रसर हो सकें। ओम्।

सतीश आर्य

15 पॉकेट 1, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली- 110063

सम्पादकीय

योगविद्या का इतिहास

प्राचीन काल में योगविद्या की दो शाखायें प्रचलित हुई- 1. वैषयिक योग 2. पारमार्थिक योग।

वैषयिक योग

वैषयिक योग के आदि उपदेष्टा थे:- 1. उशना 2. बृहस्पति 3. इन्द्र 4. पुनर्वसु 5. अग्निवेश।

इस वैषयिक योग के कुल 13 तेरह प्रकार प्रचलित हुये। जैसे कि-

1. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्त्तित करना।
2. दुर्लभ वस्तु को चिन्तन द्वारा जान लेने के उपाय जानना।
3. प्राप्त वस्तु का संरक्षण करना।
4. कौशल से कार्य लाभ करना।
5. शब्दों की अर्थबोधशक्ति को जानना।
6. शब्दों का यथायोग्य विन्यास करना।
7. देह को स्वस्थ रखना।
8. वस्तुओं के प्रकृत तत्वों को छिपाना।
9. युक्तिपूर्वक वाक्यों का प्रयोग करना।
10. अस्त्र धारण करने के कौशल जानना।
11. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ मिलान करना।
12. एक तत्व के साथ दूसरे तत्व को मिलान कर देना।
13. कार्य के कारणों को एक साथ जान लेना।

इस वैषयिक योग के इन तेरह प्रकारों का अवलम्बन करके 8 आठ प्रकार के शास्त्रों का आविष्कार हुआ, वे निम्न प्रकार से हैं:- 1. नीतिशास्त्र 2. धनुर्वेद 3. आयुर्वेद 4. गान्धर्ववेद 5. शिल्पविद्या 6. कृषिविज्ञान 7. वाणिज्य 8. कलाकौशलशास्त्र।

पारमार्थिक योग

पारमार्थिक योग के आदि उपदेष्टा थे- 1. हिरण्यगर्भ 2. महेश्वर 3. शिवानी 4. कपिल 5. पञ्चशिख 6. जनक 7. वसिष्ठ 8. दत्तात्रेय 9. जैगिषव्य 10. याज्ञवल्क्य 11. पतञ्जलि

इस पारमार्थिक योग के कुल 4 चार प्रकार प्रचलित हुये, जो कि निम्न प्रकार से हैं-

1. चित्त को एकतान यानी एकाग्र करना।
2. सब की सब मनोवृत्तियों को रोक देना।
3. वस्तुविषय चिन्तन प्रवाह को उद्दीप्त करना।
4. आत्मा को आत्मा के साथ या परमात्मा के साथ संयोग कर देना।

इस पारमार्थिक योग के इन चार प्रकारों का अवलम्बन करके साधना के लिये 4 चार शास्त्रों का आविष्कार हुआ, वे निम्न प्रकार से हैं-

1. मन्त्रयोग 2. लययोग 3. राजयोग 4. हठयोग।

इन चारों योगों में से राजयोग सर्वश्रेष्ठ है। पातञ्जल योगसूत्र तथा व्यासभाष्य दोनों मिलकर राजयोग कहलाता है।

आधुनिक युग के महायोगी महर्षि दयानन्द सरस्वती इसी राजयोग के उत्कृष्ट योगाभ्यासी थे।

पातञ्जलयोगसूत्र पर जिन महानुभावों ने भी अपनी वृत्ति व भाष्य लिखा है और वर्त्तमान में उपलब्ध भी है, वे निम्न प्रकार से हैं-

1. व्यासमुनिकृत- व्यासभाष्य।
2. भोजदेवकृतः- राजमार्त्तण्डवृत्ति।
3. भावगणेशकृतः- योगसूत्रदीपिका।
4. नागेशभटकृतः- नागोजिभटीया वृत्ति।
5. रामानन्दकृतः- मणिप्रभावृत्ति।
6. सदाशिवेन्द्रसरस्वतीकृतः- योगसुधाकरवृत्ति।
7. नारायणतीर्थकृत-सिद्धान्तचन्द्रिकावृत्ति।

इन सभी में व्यासभाष्य सर्वोत्तम है । अतः पातञ्जलयोगसूत्र तथा व्यासभाष्य को आधारभूत ग्रन्थ मानकर 5 पाँच महानुभावों ने अपनी-अपनी टीकायें देवभाषा संस्कृत में लिखी हैं, वे निम्न प्रकार से हैं-

1. वाचस्पतिमिश्रकृतः- तत्ववैशारदी।
2. शंकराचार्यकृतः- पातञ्जलयोगभाष्यविवरण।
3. विज्ञानभिक्षुकृतः- योगवार्त्तिक।
4. हरिहरानन्दकृतः- भास्वती।
5. राघवानन्दकृतः- पातञ्जलरहस्यम्।

वर्त्तमान में ये सभी टीकायें समुपलब्ध हैं। आर्यजगत् में पातञ्जलयोगसूत्र तथा व्यासभाष्य को आध ाार बनाकर आर्य भाषा हिन्दी में अनेक महानुभावों ने अपने व्याख्यान ग्रन्थ लिखे हैं, उनका नाम निम्न प्रकार से हैं-

1. स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक
2. स्वामी विज्ञानाश्रम
3. आचार्य राजवीर शास्त्री
4. स्वामी सत्यपति परिव्राजक
5. श्रीमान् सतीश आर्य। इत्यादि

पौराणिक जगत् के विख्यात मूर्धन्य विद्वानों में से कुछेक विद्वानों के नाम निम्न प्रकार से हैं, जिन्होंने योगशास्त्र पर अपने व्याख्यान ग्रन्थ लिखे हैं-

1. स्वामी ब्रह्मलीन मुनि
2. स्वामी हरिहरानन्द आरण्य
3. श्री रामाशंकर त्रिपाठी
4. श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव। इत्यादि

इन महानुभावों के अतिरिक्त अन्य महाशयों ने योगदर्शन पर सुन्दर कार्य करते हुये आर्य भाषा में सूत्रार्थ व भावार्थ लिखने का प्रसंशनीय कार्य किया है, उनके नाम निम्न प्रकार से हैं–

1. आर्यमुनि
2. आचार्य उदयवीर शास्त्री
3. आचार्य ज्ञानेश्वर
4. स्वामी रामस्वरुप
5. स्वामी ओमानन्द। इत्यादि

इन शास्त्रों में ज्ञान का रहस्य मिलता है। साधना का रहस्य नहीं मिलता। इस अमूल्य ग्रन्थ ''योगी का आत्मचरित्र'' में साधना का रहस्य मिलेगा।

यद्यपि महर्षि दयानन्द जी ने योग पर स्वतन्त्रग्रन्थ अलग से नहीं लिखा, परन्तु प्रसंगवशात् ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आत्मचरित्र आदि प्रमुख ग्रन्थों में योगविद्या पर बहुत कुछ लिखा है। इनका संकलन स्वामी विज्ञानाश्रम, आचार्य राजवीर शास्त्री तथा श्री सतीश आर्य जी ने अपने व्याख्यान ग्रन्थ में यथासम्भव, यथास्थान किया है।

इस ग्रन्थ से सम्बन्धित प्रमाणिक प्रसंग

महर्षि दयानन्द सरस्वती के इतिहास से जुड़े हुये कुछ प्रसंगों को बतलाना प्रासंगिक होगा। इन प्रसंगों को देखने के उपरान्त, विश्लेषण करके इतिहास की सच्चाइयों का पता लगाना आप के लिये अत्यन्त सरल हो जायेगा। बहुत कुछ दर्पण की तरह स्पष्ट भी हो जायेगा।

16 नवम्बर 1869 के काशी शास्त्रार्थ के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती मिर्जापुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ कुम्भ का मेला लगा हुआ था। इसी मेला में पं. देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि गणमान्य लोग स्वामी जी से मिले और कलकत्ता पधारने का निमन्त्रण दिया। इसी निमन्त्रण के अनुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती 16 दिसम्बर 1872 को कलकत्ता में पहुँचे। 31 मार्च 1873 तक कलकत्ता में रहे। इसी बीच स्वामी जी का परिचय पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (प्रचारक ब्रह्मसमाज), पं. केशवचन्द्र सेन, बैरिस्टर चन्द्र शेखर सेन, बैरिस्टर उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय आदि से हुआ था। इन सभी लोगों ने दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व व कर्तृत्व से प्रभावित होकर उनका आत्मचरित्र जानने की इच्छा प्रकट की थी। इस कार्य के लिए इन लोगों ने कुछ संस्कृतज्ञ विद्वान् लेखकों को नियुक्त भी कर दिया, क्योंकि उन दिनों स्वामी जी अपना कथन संस्कृत भाषा में ही करते थे। इस बात की पुष्टि महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनी के प्रसिद्ध लेखक पं. लेखराम आर्य पथिक ने निम्न प्रकार से है:–

'' सन् 1871 में जब वे कलकत्ता में पधारे और संस्कृत भाषा में धर्म प्रचार आरम्भ किया तो यहाँ के कतिपय सज्जनों ने भी उनके जीवन चरित्र सम्बन्धी वृत्तान्त को जानने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहे। विद्वान्, संन्यासियों के अतिरिक्त साधारण गृहस्थियों के सामने ऐसे वृत्तान्त बताना, वे निरर्थक समझते रहे।'' (आर्य पथिक पं. लेखराम)

इससे सिद्ध हुआ कि स्वामी जी कलकत्ता पहुँचे थे। लोगों द्वारा जीवन चरित्र जानने हेतु प्रयास भी किया गया था। पण्डित लेखराम जी यहाँ लिखते है कि ''परन्तु असफल रहे'' इसके लिये निम्न प्रमाणों को पढें:–

ब्रह्मसमाज के प्रचारक तथा महर्षि दयानन्द जी के अनन्य शिष्य पं. श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती जी द्वारा सन् 1954 में बंगला भाषा में लिखित एक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया, जिसका नाम था ''बंगाल में ऋषि दयानन्द के चार मास विषयक दयानन्द प्रसंग'' इस पुस्तक में उल्लेख है कि–

''22 से 31 मार्च 1873 के मध्य स्वामी जी एकान्त में ग्रन्थ रचना में संलग्न रहे।'' (श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती)

इससे सिद्ध हुआ कि ग्रन्थ की रचना की गई थी और वह ग्रन्थ यही है, जो आपके हाथ में है, जिसकी रचना के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने अनुरोध भी किया था। इस ग्रन्थ के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं कहते हैं कि:–

''मेरे परममित्र प्रवर ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर से अनुरोध–पत्र आया है कि योग साधना के बारे में आपके अनुभव में जो कुछ है, आप करीब–करीब सब कुछ ही बोलने की कृपा करें। क्योंकि किताबों में ज्ञान का रहस्य मिलता है। साधना का रहस्य नहीं मिलता है। विद्यासागर जी का अनुरोध मुझे सहर्ष स्वीकार है। मैं यथाशक्ति इसका वर्णन करुँगा।''

इससे सिद्ध हुआ कि स्वामी जी आत्म वृत्तान्त सुनाने के लिये तैयार हो गये। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कलकत्ता में महर्षि के जीवन वृत्तान्त को जानने में सफल रहे। इस ग्रन्थ का उपसंहार करते हुये महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते है कि:–

''16 दिसम्बर 1872 को मैं कलकत्ता पहुँचा था। आज 31 मार्च 1873 है। अब हुगली और वर्धमान की तरफ भी मुझे जाना है। इसके पश्चात् बिहार की तरफ रवाना हो जाऊँगा। कल से मैं मौन धारण करुँगा। परम प्रभु आप लोगों की सदिच्छा पूर्ण करें।

मेरे मुख से आप लोगों ने मेरे जीवन के बारे में सब कुछ सुनने के लिए आग्रह किया था। योग विद्या के बारे में मेरा अनुभव, प्रजा विद्रोह के बारे में मेरा मन्तव्य और मेरे पारिवारिक परिचय के बारे में प्रकाश आदि विषय जानने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों ने इच्छा प्रकट की थी। मैंने जहाँ तक सम्भव हुआ, इन विषयों के बारे में सब कुछ कहा।

विभिन्न शंकायें मेरे सम्मुख आयी थीं। इनका भी समाधान किया गया है । जहाँ तक मेरी स्मृति में थे, सब कुछ कहा। आप लोगों ने सबका सब लिपिबद्ध किया है। आप लोगों से केवल एक ही अनुरोध है कि मेरे जीवन काल में यह सब मुद्रित न हो।'' (महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, योगी का आत्म चरित्र)

इतिहास की सच्चाई

प्रस्तुत ग्रन्थ ''योगी का आत्मचरित्र'' स्वयं महर्षि दयानन्द जी द्वारा लिखवाया गया है। इसके गवेषक, स्व.पं. दीन बन्धु वेदशास्त्री जी ने अपने जीवन के 45 वर्षों (1923– 1968 तक) का समय लगाया। यह आत्मचरित्र पण्डित जी को कैसे, कब और कहाँ से प्राप्त हुआ, इसका पूरा विवरण उनके द्वारा लिखित ''अज्ञात जीवनी की पृष्टभूमि'' में उपलब्ध है। इस कार्य के लिये शास्त्री जी के प्रति आर्य जगत् सदैव आभारी व कृतज्ञ रहेगा।

शास्त्री जी ने महर्षि दयानन्द जी की जीवनी सम्बन्धी जो मूल हस्तलेख वा प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई थी, उन सबका क्रमबद्ध हिन्दी में अनुवाद किया तथा आर्यो की शिरोमणि सभा सार्वदेशिक में प्रस्तुत किया। उस समय सार्वदेशिक सभा के महामन्त्री ओमप्रकाश त्यागी जी ने सब लेखों को देखकर स्वीकार किया तथा

अपनी सम्मति से सार्वदेशिक पत्रिका में छपवा भी दिया। 5 जनवरी 1969 से लेकर 8 नबम्वर 1970 तक 66 किश्तों में यह जीवनी सर्वप्रथम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुख्य पत्र ''सार्वदेशिक'' में अज्ञात जीवनी के नाम से क्रमशः छपी। एतदर्थ विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए सार्वदेशिक सभा से सम्पर्क कर सकते हैं अथवा उक्त अंकों को स्वयं देख सकते हैं। एतदर्थ आपको स्वयं पुरुषार्थ करना होगा। जब आप असफल हो जाए, तब हमसे सम्पर्क करें। मार्ग निर्देश कर दूँगा, परन्तु पुरुषार्थ फिर भी आपको ही करना होगा। तब शायद आप इसके महत्त्व को स्वयं अनुभव कर पायेंगें।

इसके पश्चात् स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी जी ने सभी 66 किश्तों किस्तों को एकत्र करक विस्तृत अनुशीलन से युक्त भूमिका सहित इस अज्ञात जीवनी को ''योगी का आत्मचरित्र'' के नाम से छापा। बहुत कुछ प्रमाण उपस्थित किये । अधिक जानकारी के लिए उनका अनुशीलन पढें। उन्होंने अत्यन्त पुरुषार्थ करके सार्वदेशिक पत्रिका में छपी सभी किस्तों को एकत्र किया। अन्य सामग्री हेतु अनेकों यात्रायें की। वर्षो के पुरुषार्थ के उपरान्त यह सर्वप्रथम पुस्तक के रूप में उपलब्ध हुआ। एतदर्थ आर्य जगत् उनका भी सदैव आभारी व कृतज्ञ रहेगा।

इस पवित्र कार्य में श्रीमान् आदित्य मुनि वानप्रस्थ जी एवं डा. वेदव्रत आलोक जी के पुनीत प्रयास को भी भुलाया नहीं जा सकता है। आपने पूना प्रवचन में स्वकथित आत्म वृत्तान्त तथा स्वयं लिखित अपना जन्म चरित्र के साथ-साथ इस अज्ञात जीवनी की संगति लगाते हुए बहुत ही सुन्दर सम्पादन कार्य किया है। सैकडों प्रमाण पाद टिप्पणियों में दिये हैं। शंका कर्त्ताओं की शंकाओं का समाधान भी युक्ति-युक्त प्रमाण सहित किया है। आर्य जगत् श्रीमान् आदित्य मुनि जी तथा डा. वेदव्रत आलोक जी का भी सदैव आभारी तथा कृतज्ञ रहेगा।

ज्ञात-अज्ञात विषय पर शंका-समाधान होना कोई नई बात नहीं है। अतः समय-समय पर महर्षि जी के जीवनियों पर अनेकों बार शंका समाधान हुआ है, शायद आगे भी होता रहेगा। इस पर मैं केवल इतना कहना चाहूँगा कि जो प्रमाणिकता व वास्तविकता महर्षि के द्वारा स्वयं लिखवायी गयी इस जीवनी में झलकती है; वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। क्योंकि वे आप्त पुरुष थे और आप्त पुरुषों का कथन बिना लाग-लपेट के यथार्थ होता है। पुनरपि यदि किसी को कोई संशय हो तो न्याय दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार शंका समाधान कर सकते हैं। पिष्टपेशण करनेवालों को उत्तर देना सिद्धान्त के विरुद्ध होगा, अतः ऐसी शंका कर्त्ताओं से विनम्र निवेदन है कि व्यर्थ विवाद से बचें। किन्तु सम्वादकर्त्ता का स्वागत सदैव किया जाएगा। ''पिष्टपेषणदोष'' अर्थात् ''पिसे को पुनः पीसना'' के दोष से मुक्त रहते हुये कोई शंका करेंगे तो पीछे नहीं रहुँगा। युक्ति-युक्त समाधान करुँगा । शंका करने वाले पूरी तैयारी के साथ गृहकार्य (होमवर्क) करके ही आगे आयें, तो शायद अच्छा रहेगा। इसका अध्ययन करने के उपरान्त मैं बहुत प्रभावित तथा लाभान्वित हुआ तथा हो रहा हू%। आशा है कि आप भी अवश्य लाभान्वित होंगे। किसी एक व्यक्ति के जीवन में एक भी बात चरितार्थ हो गई तो मैं अपना पुरुषार्थ सफल समझूँगा।

आर्यजनों, विद्वानों, योग के जिज्ञासुओं व क्रान्ति के पुरोहितों से विशेष प्रार्थना है कि आप मनोयोग से दो-तीन बार इस ''योगी का आत्मचरित्र'' को पढ़ें। राजयोग के बहुत सारे रहस्यों का उद्घाटन स्वतः हो जायेगा । राजयोग से होने वाली सिद्धियों के रहस्य का भी परिज्ञान होगा, जिस पर कुछ लोग हल्ला मात्र मचाते हैं, किन्तु योगाभ्यास नहीं करते। इसके स्वाध्याय के बाद अन्यों द्वारा लिखित व सम्पादित अन्य

जीवनियों को भी अवश्य पढें, तब आपको पता चलेगा कि किसमें कितनी सच्चाई व व्यावहारिक शिक्षा से युक्त तथ्य है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने के उपरान्त आप स्वयं अनुभव करेंगे कि ऋषिवर के अज्ञात जीवन वृतान्तों को जानने के लिये इस की कितनी आवश्यकता है? विधिवत् स्वाध्याय के उपरान्त हृदय स्वीकार करें, तो उपकारार्थ अन्यों को भी पढ़ाना न भूलना।

स्वाधीनता स्वतन्त्रता के संग्राम में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का कितना योगदान था? एतदर्थ स्वामी जी स्वयं चार वर्ष (1855 से 1859) तक भूमिगत रहे। सबसे अज्ञात किन्तु क्रान्ति के दूतों से हर क्षण विदित रहते थे। संग्राम का केन्द्र योग माया मन्दिर, दिल्ली था, जिसके पुरोहित त्रिशुल बाबा हुआ करते थे। 1857 का प्रथम सुनियोजित स्वतन्त्रता संग्राम यों ही नहीं हो गया। व्यर्थ विवाद करने वालों को यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता है और अपनी अज्ञानता का परिचय देते हुए, इस बात का खण्डन करते हुये भी नजर आते रहे हैं।

योग के जिज्ञासुओं से विशेष रूप से प्रार्थना करना चाहूँगा कि योग के क्रियात्मक साधना के रहस्यों को यदि जानना चाहते हैं, तो इस ''योगी का आत्मचरित्र'' का स्वाध्याय अनेक बार करे क्योंकि किताबों में ज्ञान का रहस्य मिलता है। साधना का रहस्य नहीं मिलता है। योग सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये योग शास्त्र का जानकारी प्राप्त करने के लिये योग शास्त्र का अध्ययन भी अति आवश्यक है। शास्त्रों के अध्ययन के विषय में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा है कि:-

''जहाँ तक बन सके, वहाँ तक ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्यायुक्त छः शास्त्रें को पढ़े, पढावें। ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढना चाहिये कि वे बड़े विद्वान्, सर्वशास्त्रवित् और धार्मात्मा थे।'' (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

इस ग्रन्थ को पढ़ने के उपरान्त आप स्वयं अनुभव करेंगे कि योगविद्या को जानने के लिये इस की कितनी आवश्यकता है? योगविद्या का क्रियात्मक व अनुभवात्मक प्रतिपादन इसमें अत्यन्त सरल विधि में किया गया है। योग के गूढ रहस्यों का उद्घाटन, योग की सिद्धियों का सही-सही प्रतिपादन तथा प्रचलित योगों में से राजयोग अर्थात् पातञ्जल योगसूत्र तथा व्यासभाष्य में पूर्ण आस्था प्रकट करते हुये बहुत ही सुन्दर कथन किया है।

योगेश्वर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपना जन्मचरित्र अत्यन्त संक्षेप से स्वयं लिखा तथा पूनाप्रवचन में भी अपना आत्मवृतान्त स्वयं कहकर सुनाया था, वह बहुत संक्षिप्त है। महर्षि दयानन्द जी अपने आत्मचरित्र के विषय में बहुत सी अज्ञात वृतान्तों का उल्लेख करना चाहते थे, सो उपयुक्त समय जानकर कलकत्ता प्रवास के दौरान दिनांक 16 दिसम्बर 1872 से 16 अप्रैल 1873 के मध्य विस्तार से संस्कृत में लिखवाया था। इसका बंगला में अनुवाद पंडित देवेन्द्रनाथ ठाकुर, पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशवचन्द्र सेन आदि विद्वानों ने करवाया था तथा हिन्दी में अनुवाद पंडित दीनबन्धु शास्त्री जी ने किया और सार्वदेशिक पत्रिका में ''अज्ञात जीवनी'' के नाम से 66 किस्तों में छपवाया था। बाद में स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी ने सभी किस्तों को एकत्र करके ''योगी का आत्मचरित्र'' नाम से छापा। तदुपरान्त श्रीमान् आदित्यमुनि जी ने इसी को ''अपना जन्मचरित्र'' नाम से छापा। वर्त्तमान में उपरोक्त संस्करणों में से कोई भी संस्करण उपलब्ध नहीं है। अतः इस ग्रन्थ को छपवाकर आपको सौंपते हुए मुझे बहुत हर्ष का

अनुभव हो रहा है।

अधिक जानकारी के लिए परिशिष्ट में दयानन्द उवाच, अनेक महापुरुषों द्वारा ऋषिवर के प्रति प्रदत्त कुछेक श्रद्धाञ्जलियाँ, पातञ्जल योगसूत्र, आत्मनिवेदन, विशेष वक्तव्य आदि छापा है। संगति लगाते समय इन की आवश्यकता पड़ेगी।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अनेक लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी के प्रति कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद।

बहुत प्रयत्न करने पर भी अल्पज्ञता वशात् अनेक त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। अत: आपसे विनम्र प्रार्थना है कि यदि कोई त्रुटि दिखाई पडे तो अवगत कराने की कृपा करें, जिससे कि अगले संस्करण में उसका सुधार किया जा सके। क्योंकि:-

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना:॥

विदुषां वशंवद:

आचार्य भद्रकाम वर्णी

॥ ओ३म् ॥

योगी का आत्मचरित्र

जन्म, स्थान, वंश तथा प्रारम्भिक 21 वर्ष का जीवन परिचय

1. मेरा जन्मस्थान और जन्मकाल:– गुजरात (गुर्जर) प्रदेश के काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के अन्तर्गत मौर्वी राज्य में डेमी नदी के किनारे अवस्थित एक नगर में सम्वत् 1881 (सन् 1824) में औदीच्य ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ था। इस हिसाब से मैं गुजराती ब्राह्मण संन्यासी हूँ और दूसरे हिसाब से मैं केवल एक भारतीय संन्यासी हूँ। मेरी अवस्था इस समय (सन् 1873 में) प्रायः 48 वर्ष की है।

2. मेरा वंशपरिचय:– वेद विरोधी बौद्ध और जैन मतों के प्रबल प्रचार होने के कारण कई एक प्रान्त प्रायः वेद-भ्रष्ट हो गये थे। यथा -

''अंग-बंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥''

(प्राचीन स्मृति वचन)

अर्थात् तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य के बिना दूसरे उद्देश्य से अंग (उत्तर बिहार), बंग (पूर्व-पश्चिम बंगाल), कलिंग (उड़ीसा और आगे दक्षिण देश), सौराष्ट्र (काठियावाड़ राज्य) और मगध (दक्षिण बिहार) प्रदेश में जाने से प्रायश्चित का भागी बनना पड़ता है।

सौराष्ट्र को वेद-भ्रष्टता के पाप से बचाने के लिये आज से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व वहाँ के धर्म-भीरु राजा मूलराज ने उत्तर भारत से करीब एक हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाकर सौराष्ट्र देश में बसाया था। सारे गुजरात प्रान्त में ये लोग फैल गये थे। मैंने उन्हीं में से एक ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया था। वंशगत रूप

में मेरा परिचय दिया जाय तो यह है कि मैं सामवेदी ताण्ड्य ब्राह्मणों के अन्तर्गत दाल्भ्य गोत्रीय त्रिपाठी हूँ। त्रिपाठी का तात्पर्य है- जो लोग वेदमन्त्रों के पदपाठ, क्रमपाठ और जटापाठ, इन तीनों पाठों को जानते हैं।

3. माता-पिता का परिचयः- मेरे पिताजी धनाढ्य, जमींदार, कुसीदजीवी सरकार के राजस्व आदायकारी और प्रभावशाली कट्टर शैव ब्राह्मण थे। माता जी अति सरल, अमायिक, दयावती और वैष्णवमत की अनुगामिनी थीं। पिता जी शैव थे और माता जी वैष्णवी थी । पिता जी को चाक-चमक और आडम्बर अच्छा लगता था। बाहर जाने के समय पिता जी के साथ सदा ही पाईक (सैनिक), वकन्दाज (अंगरक्षक) और सिपाही रहते थे। पिता जी शैवधर्म के आचरण में दृढ़ थे, माता जी वैष्णवधर्म के आचरण पर, इसलिये आपस में कभी कभी द्वन्द्व कलह, विवाद-विसम्वाद भी हो जाता था। लेकिन कोई उग्र नहीं था। पिता जी संस्कृत व्याकरण और वेद के अभिज्ञ थे। माताजी हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान, संस्कृत का मामूली ज्ञान और रामायण, महाभारत, पुराणों की कहानियों का पूरा ज्ञान रखती थीं। पारिवारिक स्थिति की रक्षा के लिये दोनों ही सजग थे और दोनों ही सदाचारी थे । पिता जी के अन्दर क्रोध आने पर माता जी क्षमा माँग लेती थीं और माता जी के अन्दर क्रोध आने पर पिता जी भी क्षमा माँग लेते थे। इसलिये आपस में कभी वैमनस्य का भाव नहीं आता था।

4. मेरा जन्मः- संसार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं था, परन्तु दोनों के चित्त कभी-कभी अप्रसन्न हो जाते थे, क्योंकि ये लोग विवाह के दीर्घकाल उपरान्त निःसन्तान थे। विवाह के समय पिता जी की आयु 21 इक्कीस और माता जी की वयः बारह वर्ष की थी। पिता जी की वयः पैंतीस और माता जी की वयः छब्बीस वर्ष की हो गयी थी, तो भी सन्तान उत्पन्न नहीं हुयी थी। इसलिये दोनों के चित्त में अप्रसन्नता स्थायी रूप से बैठ गयी थी। पिता जी अपने उपास्य देव शिव से और माता जी भी अपने उपास्य देवता विष्णु जी से सन्तान माँगते थे। प्रार्थना सब की सब व्यर्थ बन गयी थी। कभी-कभी माता-पिता समझते थे कि

विष्णु भक्त माता की प्रार्थना से शिव जी रुष्ट हो जाते हैं और उसी समय शिवभक्त पिता जी की प्रार्थना के कारण विष्णु भी रुष्ट हो जाते हैं। इसलिये दोनों की प्रार्थनायें व्यर्थ हो जाती होंगी। अतः दोनों ने ही प्रार्थना करना बन्द कर दिया था। सन्तानाभाव के कारण सांसारिक सुख दोनों को शान्ति नहीं दे सका।

मेरे मातामह का गृह हमारे गृह से लगभग पाँच कोस की दूरी पर था। माता-पिता दोनों मेरे मातामह से परामर्श करने के लिये वहाँ गये थे। विचार-विमर्श के बाद निश्चय हुआ कि मेरे पिता जी दूसरा विवाह कर लेवें और वह विवाह मेरी माता जी की चौथी बहन पन्द्रह वर्ष आयु वाली मेरी मौसी से हो जाये। माता जी ने भी इसमें सम्मति दे दी थी । दो-तीन महीने के बाद ही विवाह होगा ऐसा निश्चय हो गया था। लेकिन एक महीने के अन्दर-अन्दर ही पता लग गया कि माता जी को सन्तान होने वाली है। दूसरा विवाह करने का संकल्प बन्द हो गया। यथासमय मेरी माता ने पुत्र सन्तान प्रसव किया था। वह सन्तान ही मैं हूँ। माता-पिता को पुत्र सन्तान लाभ होने के कारण सब कोई आनन्दित और प्रसन्न हुये थे। माता जी ने बहुत दिन पहले मान्यता रक्खी थी कि सन्तान लाभ से होने से विष्णु भगवान् के नाम पर एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। सन्तान के वजन के अनुरूप सोना और चाँदी ब्राह्मणों को दान दूँगी। ऐसा ही हुआ था। सोना और चाँदी के अन्दर माता जी के जेवर और पिताजी के मोहर सम्मिलित थे।

5. नामकरण संस्कारः– मेरे जन्म के दिन से सौ दिन बाद मेरे पितामह और हमारे कुल-पुरोहित के सहयोग से मेरा नामकरण संस्कार हुआ था। उस समय भी एक झंझट पैदा हो गया था। पिता जी ने चाहा था कि पुत्र का नाम शिव जी के नाम पर हो और माता जी चाहती थी कि पुत्र का नाम विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार हो। इससे माता पिता के बीच में विरोध पैदा हो गया था। इस दृश्य को देखकर निमंत्रित शतशः आदमी स्तम्भित हो गये थे। मेरे पितामह ने मीमांसा की, कि पुत्र के दो नाम रखे जाते हैं- एक शिवजी के नाम के अनुसार और दूसरा विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार। ऐसा ही दोनों को

स्वीकार हो गया था। तदनुसार पिता जी और माता जी मुझको अपने-अपने रुचिकर नाम से पुकारते थे।

6. एक दुर्घटना:– मैं धीरे-धीरे बड़ा होने लगा । देखभाल करने के लिये पिता जी ने मुझको रत्नाबाई नाम की धात्री के हाथों में समर्पण कर दिया था। मुझे स्नान करवाना, खिलाना, पिलाना, बाहर लेकर घुमाना सब कुछ रत्नाबाई के ऊपर छोड़ दिया गया था। एक वर्ष के बाद मेरी जन्मतिथि का उत्सव मनाया गया। ब्राह्मणों को भोजन करवाना, गरीब-दुःखियों को अन्न-वस्त्र देना, नृत्य संगीत और हो-हल्ला शोर-गुल चल रहा था। रत्नाबाई को माताजी ने पुत्र को बाहर शांत स्थान में घुमा लाने का आदेश दिया था। रत्नाबाई हमारी धाई माँ थी। आदर, यत्न और स्नेह के साथ हमको खिलाती-पिलाती थी। मेरी रुग्णावस्था में रत्नाबाई को निद्रा नहीं आती थी, खाना-पीना छोड़ देती थी, मेरी शय्या के पास आँखों में आँसू लेकर उपविष्ट रहती थी, मेरे प्रति उसका माता का-सा स्नेह और ममता लगी रहती थी। आज उस धाई माता का चंचल मन विकृत हो गया। हजारों रुपये के जेवर पहने हुये मुझको गोदी में लेकर घूमती हुई मेरी धाई माता नदी के किनारे तक ले गयी थी। निर्जन स्थान पर पहुँच गयी थी । मेरे शरीर से सारे आभूषण उतार लिये थे, अपने कपड़े के आँचल में सब बाँध लिये थे, मेरे मुख को अन्तिम बार के लिये चूम लिया था। मुझको नदी के पानी में फेंक देने के लिये तैयार हो गयी थी, दो बार मुझको फेंकने के लिये पानी के अन्दर उतरकर भी फेंक नहीं सकी, मैं हँसने लगा था, मेरे मुख पर ध ाई माता ने अस्वभाविक रूप से हँसी देखी थी । उसका हृदय परिष्कृत हो गया, मुझको चूमती हुई पानी से ऊपर उठी और भीगे कपड़े पहने हुये रत्नाबाई ने मुझे माता के सम्मुख लाकर छोड़ दिया, रत्ना के पीछे-पीछे बहुत आदमी एकत्र हो गये थे। रत्नाबाई ने चिल्लाते हुए सबों के सम्मुख सारा हाल विस्तृत रूप से कह दिया। आँचल से जेबरों को खोलकर मेरी माता के सम्मुख रखकर, मुझको एक बार और उठा के चूम लिया और ''मैं प्रायश्चित करूँगी'' ''मैं प्रायश्चित करूँगी''' बोलती हुई दौड़कर चली गयी। पिता जी भी आ गये। उन्होंने सब कुछ

सुना। सब आदमियों ने एक स्वर से यही कहा कि ''धात्री पागल हो गई उसका इलाज होना चाहिये।'' रत्नाबाई को वापस लाने के लिये तीन सिपाही भेजे, किन्तु मेरी धाई माता नहीं मिली। तीन दिन बाद समाचार मिला कि दो कोस की दूरी पर एक पुराने मंदिर में रत्ना ने गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या कर ली है। रत्नाबाई का कोई नहीं था। पिता जी ने रत्नाबाई के लिये पण्डितों की सम्मति के अनुसार श्राद्ध, शांति और मेरी जीवन-रक्षा के लिये पूजा-पाठ किया था और पीछे बोध गया तक आकर रत्नाबाई के उद्धार के लिये पिंडदान किया था। इस घटना को मैंने माता-पिता और दूसरों के मुख से बार-बार सुना था । मेरे मन में संन्यास जीवन के अन्दर भी, इस घटना से मेरे माता-पिता और रत्नाबाई के चरित्र उज्ज्वल होकर रहे हैं, इनको भूल नहीं सका। पं. ईश्वर चन्द्र जी विद्यासागर ने इस कथा को हमसे दो बार सुना है,उस समय उनकी आँखों में हमने आँसू भी देखे हैं। इस रूप से मैं माता-पिता को सन्तान-लाभ का सुख और दुःख देता हुआ बड़ा होने लगा। माता-पिता पहले-पहल भगवान् से केवल एक ही संतान के लिये प्रार्थना करते थे। अब पिता जी शिवजी से कार्तिक और गणपति जैसे पुत्र माँगते थे और माताजी विष्णु भगवान् से लक्ष्मी और सरस्वती जैसी कन्या माँगती थी। पीछे और संतान माता-पिता को प्राप्त हुई थीं। हम सब मिलकर माता-पिता के पाँच संतान पैदा हुये थे। प्रथम मैं, दूसरी लड़की, तीसरा लड़का, चौथी लड़की और पाँचवाँ लड़का। पाँच सन्तान पाकर माता-पिता दोनों सुखी थे।

7. मेरा विद्यारम्भ संस्कार:– पञ्चम वर्ष की वयः में मेरे पिता ने मेरा विद्यारम्भ संस्कार किया था। पिता ने चाखड़ी से कृष्णवर्ण के प्रस्तर पर मेरे हाथ से स्वर वर्ण और व्यंजन वर्ण लिखवाये थे। इस उपलक्ष्य में पूजा पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था। अब से मेरे पिता और अभिभावक मुझ को कुल-परम्परागत धर्माचरण के साथ-साथ धर्मशास्त्र-पाठ और भिन्न-भिन्न स्तवन-श्लोक और रामायण, महाभारत, पुराणादि से कहानियाँ याद कराने लगे। तब से मैं वेदमन्त्र भी कण्ठस्थ करने लगा था। इस रूप से मेरे तीन वर्ष बीत गये थे। मेरे अपर भ्राताओं को भी इस रूप की शिक्षा दी जाती थी।

मेरी बहनों लिये इस रूप की शिक्षा-दीक्षा को कोई प्रबन्ध नहीं था। हम माता के पास भाई-बहन सब मिलकर महाभारत और रामायण की कहानियाँ सुना करते थे। माता जी को लिखना नहीं आता था, लेकिन पढ़ना आता था। माता जी ने बोल दिया था कि लड़कियों के लिये लिखना पाप है और पढ़ना पुण्य है। गुरुजनों के प्रति, अतिथियों के प्रति कैसे व्यवहार होने चाहिये? माता जी और पिता जी हम सब भाई-बहनों को यह शिक्षा देते थे। गृह में हमको तीन वर्ष में इस रूप की कुल-परम्परागत धर्म की और व्यवहार की शिक्षा मिल गयी थी।

8. मेरा यज्ञोपवीत संस्कार:— अष्टम वर्ष की वय: में मेरे यज्ञोपवीत संस्कार का प्रबन्ध हुआ था। इसके उपलक्ष्य में एक सौ वेदज्ञ औदीच्य ब्राह्मण निमन्त्रित हुये थे। इन लोगों ने एक दिन पहले ही आकर प्रारम्भिक यज्ञ और वेद-पाठ आरम्भ कर दिया था। मेरे पिता जी ने मेरे लिये सोने का तीन तार वाला यज्ञोपवीत बनवाया था। प्रत्येक ब्राह्मण को भोजन के बाद एक-एक कपड़ा, लोटा और दस-दस रुपये दक्षिणा दी गयी थी। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद मुझको 10 दिन के लिये घर में बन्द रहना पड़ा था। यह 10 दिन गायत्री मन्त्र के जप में और सन्ध्योपासना में ही बीत गये। 10 दिन के बाद यज्ञोपवीत धारण करके बाहर निकल आया था। मेरी झोली में कुछ न कुछ भिक्षास्वरूप सबने दिया था। बड़ौदा और पूना के दो राजकर्मचारी पिताजी के बन्धुओं के रूप से इस यज्ञोपवीत-संस्कार में उपस्थित थे। इन दोनों ने और पिता जी ने मेरी झोली में कई एक मोहरें डाली थीं। और माता जी ने फल और कच्चे चावल डाले थे। यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् प्रतिदिन हम तीन बार सन्ध्योपासना करते थे और गायत्री मन्त्र का जप करते थे। पिताजी ने स्वयं हमको रुद्राध्याय की शिक्षा दी थी और समग्र शुक्ल यजुर्वेद का पढ़ना आरम्भ कर दिया था। दो वर्ष के अन्दर हमने समग्र शुक्ल यजुर्वेद और शेष तीनों वेद के चुने हुये अंशों को कण्ठस्थ कर लिया था। इसके बाद पिता जी ने शिवपूजा की नियम विधि व्यवस्था की शिक्षा दी थी। शिवपूजा के लिये भिन्न-भिन्न उपासना, व्रतधारण और उपवासादि की भी शिक्षा दी थी। अब हमने स्वयं शिवपूजा करना शुरू कर दिया था।

9. शिवरात्री का व्रतः— पिता जी ने मेरी चौदह वर्ष की वयः में शिव चतुर्दशी के व्रत-धारण के लिये मुझे आदेश दे दियाः- ''इसके लिये कठोर उपवास करना है''। माता जी ने प्रतिवाद किया था। इस विषय में माता और पिता के अन्दर कलह-विवाद-विसम्वाद शुरू हो गया था। माता जी ने पराजय स्वीकार किया था और मैंने शिवपूजन के लिये व्रत धारण कर लिया था। पिता जी से हमने इस व्रत धारण का क्या प्रकार है' पूछा था। पिताजी ने कहा था कि- शिवरात्रि के 4 प्रहर तक जागते हुये 4 बार पूजा करने से शिव जी स्वयं आकर दर्शन देंगे। मैं परम श्रद्धा-भक्ति के साथ पूजा के लिये तैयार हो गया था। पिता जी के हाथों से माताजी मेरी रक्षा नहीं कर सकीं। मैं भी जगत् के प्रलयकर्ता शिवजी के दर्शन के लिये लालायित हो गया था। माताजी मुझको इस सौभाग्य से वंचित करना चाहती थीं। मैंने माताजी की बातें नहीं सुनी और मैं शिवपूजा के लिये सब कष्ट सहन करने के लिये उद्यत हो गया था।

10. सनातन कुल-धर्म की रक्षाः— मेरे पिताजी के सम्मुख अब सनातन कुल धर्म की रक्षा का विकट प्रश्न उपस्थित हो गया था। पिताजी जन्मगत कट्टर शैव ब्राह्मण थे। और माता जी जन्म-गत कट्टर विष्णु भक्त ब्राह्मणी थी। गुजरात प्रान्त के महाराष्ट्र के शासनाधीन होने से वहाँ महाराष्ट्र प्रान्त के सर्वप्रधान धर्म शैव मत का व्यापक प्रचार था। वीठल रावदेव जी ने सारे गुजरात प्रान्त में सैकड़ों शिव-मन्दिरों की स्थापना की थी। मेरे पिताजी ने भी डेमी नदी के किनारे अनेक शिव-मन्दिर बनवाये थे।

हमारे पूर्वजों ने कुल के नियम बनाये थे, कि उनके कुल में उत्पन्न होने वाले पुत्रों की पाँच वर्ष की वयः में ही देव नागरी अक्षर का परिचय, वर्णमाला का लेखन और पठन की शिक्षा पूरी होनी चाहिये। आठ वर्ष की वयः में यज्ञोपवीत संस्कार होने के साथ ही वेदाध्ययन और मृण्मय-शिव-लिंग पूजा का अभ्यास शुरू होना चाहिये। चौदह वर्ष की आयु में शिव-चतुर्दशी के उपलक्ष्य में व्रत धारण करके शिव पूजा की दीक्षा लेनी चाहिये। पिताजी इस कुल-गत क्रम के अनुसार मेरे धर्म-जीवन को निर्मित करना चाहते थे। माता जी ने इसमें बाध

ा डाल दी थी। छोटी अवस्था में शिव पूजा का उपवास रखना मेरे लिये बहुत ही कष्टदायक होगा- यह उनको चिन्ता थी। पिता जी ने मुझको शिव चतुर्दशी के व्रतधारण करने के माहात्म्य को सुनवा दिया था। मुझे वह बहुत ही रुचिकर मालूम हुआ था। मैं शिव चतुर्दशी के व्रतधारण और दीक्षा लेने के लिये सहर्ष तैयार हो गया। इस कार्य के योग्य चौदह वर्ष की आयु मेरी भी हो गयी थी।

नगर से बाहर डेमी नदी के किनारे पिता जी के विशाल शिव-मन्दिर में पूजा करने और दर्शन के लिये रात्रि को बहुत जनसमुदाय एकत्र होने लगा। पिता जी के साथ मैं भी वहाँ पहुँच गया। व्रतधारण किया गया, अब पूजा और दीक्षा लेनी बाकी है। रात्रि में जागते हुये चारों प्रहरों में चार बार पूजा करने के नियम हैं। प्रथम प्रहर में दूध के द्वारा, द्वितीय प्रहर में दधि के द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत के द्वारा और चतुर्थ प्रहर में मधु के द्वारा शिवलिंग को स्नान कराके अर्घ्यदान और पूजादि करने का नियम है। मैंने देखा कि प्रथम और द्वितीय प्रहर की पूजा देने के बाद एक-एक करके सब के सब व्रतधारी सोने लगे। मेरे पिता जी भी सो गये । पुजारी लोग एक-एक करके बाहर चले गये। मैं शिवजी के दर्शन करने की लालसा से जागरूक रहा। मैंने देखा कि एक चूहे ने शिवजी के सिर पर चढ़कर चावल, दूध, दही और शक्कर खाना आरम्भ कर दिया और शिवजी चुपचाप ही रह गये। मेरे दिमाग में तत्काल ही चिन्ता उत्पन्न हुई कि जगत् के प्रलयकर्ता यह शिव नहीं है। यह सब पूजा उपवास और रात्रि-जागरण ढोंग-मिथ्या और वृथा है। मैंने पिता जी को जगाया। शिवजी की अकर्मण्यता के बारे में प्रश्न किया।

उन्होंने मुझको धमका दिया और बोले ''कलिकाल में शिवजी का दर्शन सदा नहीं होता इस रूप से पूजा करने से प्रसन्न होकर कभी-कभी दर्शन भी देते हैं।''

मेरा प्रश्न था ''कि यह शिव वही शिव है कि नहीं?''

पिता जी ने कहा ''यह शिव उनकी प्रतीक है।''

मुझे सारे जीवन के लिये ज्ञान प्राप्त हुआ कि शिव जालशिव है और अक्षम

है। इसकी पूजा करना व्यर्थ है। मैंने घर जाना चाहा। पिता जी ने एक सिपाही के साथ मुझे घर भेज दिया और बोल दिया कि घर जाकर भोजन नहीं करना। व्रत को नहीं तोड़ना। मैंने भूख के कारण, घर जाकर ही माता जी से मिठाई माँगकर भरपेट खा ली। माता जी ने मेरे प्रति स्नेह के कारण पिता जी से डरते-डरते मुझको खिला दिया। मैं सो गया और सवेरे देर से उठा। और जागते ही देखा कि माता-पिता के अन्दर प्रचण्ड झगड़ा हो रहा है। मैं भयभीत होकर रोने लगा। पिता जी भी मेरा अकल्याण सोचकर रोने लगे, पिता जी भूखे थे। इसी अवस्था में वे झट घर छोड़कर चले गये और एक सिपाही को साथ ले लिया।

11. व्रत भंग का प्रायश्चित:– मेरे व्रत भंग के महापाप का प्रायश्चित क्या है? इसका विधान जानने के लिये दो कोस की दूरी पर एक स्मृति शास्त्र के पंडित के पास पिता जी पहुँच गये। पंडित जी अन्य पण्डितों से सलाह करने के लिये अगल-बगल दो-एक गाँवों में गये। चार पंडितों ने निर्णय दिया कि ''यह महापाप उस नाबालिग लड़के को नहीं लगा, यह महापाप आप पिता को ही लग गया। पुराण के पूजा-धर्म की अवज्ञा की गयी। इसके लिये एक ही प्रायश्चित है, आपके घर में शुक्ल पक्ष में एक-एक करके एक-एक रोज 18 पुराणों और कृष्ण पक्ष में 18 उपपुराणों का पाठ हो, तदनुसार दान-दक्षिणा हो और अन्तिम रोज इन कुल 36 ब्राह्मणों को एक साथ भोजन और दक्षिणा की व्यवस्था हो। तय हो गया कि आगामी शुक्ला द्वितीया तिथि से ही पुराण का पाठ शुरू होगा। पिता जी ने पंडितों के हाथ से पानी पीकर उपवास का पारण कर लिया।

पिता जी डेमी नदी में स्नान कर सायंकाल घर पहुँचे और सबको प्रायश्चित का पूरा विवरण सुना दिया। इस प्रायश्चित का नाम ''महापापघ्न'' प्रायश्चित है। आगामी दिन अमावस्या में हमारे घर में 36 पुराण-पाठी ब्राह्मणों का शुभागमन हुआ। संकल्प पाठ के साथ उन सब को वरण किया गया और भोजन करवाके दक्षिणायें दी गयीं। तृतीय दिवस शुक्ला द्वितीया तिथि से पुराणपाठ शुरू होगा। मैंने जाकर पंडितों से पूछा ''मैं भी तो पुराण-पाठ सुन

सकूँगा?'' पंडित लोगों ने हर्ष के साथ सम्मति दी। एक वृद्ध पंडित ने मुझे आशीर्वाद दिया-''वत्स तुम यशस्वी बनो!'' पिता जी ने प्रार्थना की पुराणों के अश्लील अंशों को छोड़ दिया जाये। पंडितों ने स्वीकार कर लिया। तीसरे रोज से यथारीति पुराण पाठ आरम्भ हो गया। क्रम इस प्रकार का रहाः-

प्रथम 6 दिन सात्विक महापुराणों का पाठ हुआ, यथाः– 1. विष्णुपुराण, 2. भागवतपुराण, 3. नारदीयपुराण, 4. गरुणपुराण, 5. पद्मपुराण 6. वराहपुराण।

दूसरे 6 दिन राजसिक पुराणों का पाठ हुआ। यथाः– 1. ब्रह्मपुराण, 2. ब्रह्माण्डपुराण, 3. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 4. मार्कण्डेयपुराण, 5. भविष्यपुराण 6. वामनपुराण।

तीसरे 6 दिन तामसिक पुराणों का पाठ हुआ। यथाः–1. शिवपुराण, 2. लिंगपुराण, 3. स्कन्दपुराण,
4. अग्निपुराण, 5. मत्स्यपुराण 6. कूर्मपुराण।

शेष 18 दिन 18 उपपुराणों का पाठ हुआ। यथाः– 1. सनत्कुमारपुराण, 2. नरसिंहपुराण, 3. वायुपुराण, 4. शिवधर्मपुराण, 5. आश्चर्यपुराण, 6. नारदपुराण, 7. नान्दिकेश्वरपुराण, 8. उशनापुराण, 9. कपिलपुराण, 10. वरुणपुराण, 11. साम्बपुराण, 12. कालिकपुराण, 13. महेश्वरपुराण 14. कल्किपुराण, 15. देवीपुराण, 16. पराशरपुराण, 17. मरीचिपुराण और 18. सौरपुराण।

प्रतिदिन पुराण-पाठक को 1 मोहर, 1 कपड़ा, 1 लोटा और दक्षिणा के साथ भोजन दिया जाता था। 36 दिन के बाद दूसरे दिन 36 पुराण पाठी पण्डितों ने एकत्र होकर दक्षिणा के साथ भोजन किया और हम सबको आशीर्वाद दिया था। पिता जी उस दिन महापाप से मुक्त होकर प्रसन्न हो रहे थे। मैं 36 दिन ही पिता जी के साथ बैठा हुआ सवेरे और सायं नियमित रूप से पुराणों की कहानियाँ सुना करता था। पिता जी के निर्देशानुसार पुराणों के अश्लील भद्दे अंशों को छोड़ दिया जाता था। केवल उल्लेख करते जाते थे। जैसे कि गोपियों का वस्त्र हरण, या रासलीला, या शिवजी का मोहिनी मूर्ति धारण

या कार्तिकेय का जन्म-लाभ इत्यादि। इस रूप से पिता जी ने अपने सनातन कौलिक धर्म की रक्षा की थी और मैंने पुराणों के रहस्य को जान लिया था। इसलिये सारे जीवन पुराणों का विरोधी बन कर रहा।

12. आगामी शिक्षाः— प्रायश्चित के बाद पिता जी ने मेरे अध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया। पिता जी स्वयं वेदज्ञ पंडित थे। उनसे मैंने पहले ही शुक्ल-यजुर्वेद पढ़कर सब के सब मन्त्र कण्ठस्थ कर लिये थे। हम लोग सामवेदी ब्राह्मण थे, किन्तु सस्वर सामवेद पढ़ाने के लिये ब्राह्मणों की विरलता होने के कारण शुक्ल यजर्वेद पढ़ने की रीति हमारे अन्दर प्रचलित हो गयी थी। पिता जी ने हमको इस चौदह वर्ष की आयु में वेदांग पढ़ाने के लिये 6 पंडित नियुक्त कर दिये थे। लगातार 4 वर्ष क्रमशः पंडितों सेः- 1. याज्ञवल्क्य की शिक्षा 2. कात्यायन का कल्प 3. भट्टोजी दीक्षित का व्याकरण 4. यास्क का निरुक्त 5. पिंगल का छन्दः और 6. पराशर का ज्योतिष का अध्ययन किया। उसके साथ-साथ जैमिनि का पूर्व मीमांसा दर्शन और धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र अध्ययन के लिये एक याज्ञिक और साग्निक मराठी पंडित को नियुक्त कर दिया था। इस रूप से अध्ययन-समाप्ति में मेरी आयु 18 की हो गयी थी।

13. भाई-बहनः— उस समय मैं माता-पिता का 18 वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र सन्तान था। मुझसे छोटी 14 वर्ष की बहन थी, उससे छोटा 10 वर्ष का भाई था, उससे छोटी 5 वर्षीय बहन थी और उससे छोटा 2 वर्ष का भाई था। इस रूप से कुल मिलाकर माता-पिता के 5 सन्तान थे। मैं बड़ा था और मेरे पीछे दो भाई और दो बहनें थीं।

मेरे माता-पिता दोनों नातिदीर्घ और नातिह्रस्व देह वाले और गौरवर्ण के थे। पिता तेजस्वी भी थे, कोमल हृदय वाले भी थे। माता सरल सीधी सादी नारी थी। दोंनों ही धर्म-भीरू थे। माता जी की मिष्ट भाषा और मिष्ट आचरण से हम भाई-बहन मुग्ध थे। माता जी ने हम सब ही भाई-बहनों का रसोई बनाना सिखाया था। पिता जी ने हम सब भाइयों को दण्ड, बैठक, कुश्ती करना सिखा दिया था। ब्राह्म मुहूर्त में उठना, यथा समय शौच जाना, नहाना, भगवान् की

स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना, यथासमय भोजन करना, विश्राम करना, स्वाध्याय करना सिखाया था। रात्रि जागरण नहीं करना, असत्संग नहीं करना, कलह-विवाद नहीं करना, देव, द्विज, अतिथि, गुरुजनों के प्रति नम्र भाव रखना, प्रणिपात नमस्कारादि करना, रोगी की सेवा-शुश्रूषा करना और घर के कार्य अपने हाथों से करना- इत्यादि कार्यों का हम सबको अभ्यास करवाया था। पिता जी मसालेदार तम्बाकू पीते थे, लेकिन हम सब भाई-बहनों को हुक्का या तम्बाकू छूना तक का भी निषेध कर दिया था। माता जी हम सबको नियमित रूप से रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थी। इस रूप से सुख-शान्ति से समय बीतता था।

14. बहन की मृत्युः— मेरी 9 वर्ष की आयु में मेरे पितामह की मृत्यु हो गई थी सब आदमी रोते थे, मैं भी रोता था। मृत्यु के सम्बन्ध में मुझे कुछ-कुछ ज्ञात हुआ था। मेरी 18 वर्ष की अवस्था में मेरी 14 वर्ष की बहन की मृत्यु हुई थी। मृत्यु के बारे में यहाँ से मेरा अनुभव शुरू हुआ। मेरी स्नेहशीला बहन की मृत्यु से मेरे हृदय पर बहुत ही आघात लगा था। लेकिन मुझे रोना नहीं आया था। केवल यह सोचने लगा था कि वह कहाँ किसके पास चली गयी? मुझे 18 वर्ष की आयु में भी कुछ समझ में ही नहीं आया था। सबसे जिज्ञासा की थी कि मेरी बहन की क्या दशा हुई? एक ने कहा कि- तुम्हारी बहन प्रेत हो गयी। तुम एकाकी कहीं नहीं जाना। तुमसे वह मुलाकात कर सकती है। मैं उससे मुलाकात के लिये एकाकी ही घूमने लगा। नदी के किनारे श्मशान भूमि में बैठा रहता था। उसका नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगा। लेकिन बहन से कुछ जवाब नहीं मिला, कुछ पता भी नहीं चला। श्राद्ध के दिन पिता जी ने मेरी बहन के लिये पिंडदान किया। सबके सब कहने लगे- ''अब तुम्हारी बहन उद्धार होकर चली गई और कभी तुमसे मुलाकात होने का डर नहीं है। ठीक उसी समय मुझे रोना आया। रोना बन्द नहीं हो पाता था क्योंकि मैंने समझ लिया कि अब बहन से मुलाकात होने की आशा भी नहीं है।

15. चाचा की मृत्युः— ठीक एक वर्ष के बाद मेरी 19 वर्ष की आयु

में मेरे चाचा जी की मृत्यु हो गयी। चाचा जी की मृत्यु से मृत्यु का स्वाभाविक और अवश्यंभावी रूप नजर आया। जीवन-भर के लिये वह हृदय में दृढ होकर बैठ गया। मृत्यु के साथ-साथ यहाँ का सब कुछ समाप्त हो जाता है। मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय भी नहीं है। मन में शंका उत्पन्न हुई कि मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय है कि नहीं? मैंने जान-पहचान के पंडितों से पूछा और पिता जी से भी पूछा-''मृत्यु से बचने का कोई उपाय है कि नहीं?'' सभी ने मुझे कह दिया कि ''योग विद्या ही एकमात्र उपाय है, जिससे मनुष्य जन्म और मृत्यु से बच सकता है, द्वितीय कोई रास्ता नहीं है।'' तब से मेरा मन योगविद्या और योगियों के प्रति आकृष्ट हो गया था। ''योग विद्या कहाँ से और किससे मिलती है?''- मैंने पिता जी से सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछा था। इस प्रश्न को सुन कर ही पिता जी घबरा गये। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। केवल माता जी से कह दिया कि लड़के की तरफ कड़ी नजर रखो। लक्षण अच्छा नहीं है। योग और योगियों के बारे में जब स्थानीय पंडित ज्ञानी और साधुओं से शंका-समाधान के लिये इधर-उधर घूमने लगा, उस समय मेरी आयु करीब बीस वर्ष की हो गयी थी। निर्जन स्थान में और एकाकी चिन्तन करना ही मुझे सबसे अच्छा मालूम होने लगा। भीड़-भाड़ अच्छी नहीं लगती थी।

16. काशी भेजने का निवेदनः— उस समय मेरे पिता जी के बन्धुओं ने सलाह-परामर्श दिया कि देर नहीं करना, लड़के का विवाह कर दो, नहीं तो फिर पश्चात्ताप करोगे। लड़का संन्यासी बनने वाला है। माता-पिता को यह परामर्श अच्छा लगा। मेरे लिये कोई अच्छी लड़की ढूँढ़ने के लिये जगह-जगह बन्धुओं को पत्र भी लिखे गये थे। जगह-जगह से मेरे विवाह के लिये पत्र आने लगे। कोई कोई मुझको देखने के लिये और पूछताछ के लिये भी आने लगे। मैंने पिता जी से अति विनीत भाव से निवेदन और प्रार्थना की थी कि मेरा अध्ययन अब तक असम्पूर्ण ही है। विवाह के प्रश्न को अभी बन्द रखिये। अभी तक उपनिषद् और वेदान्त दर्शन पढना बाकी है। वेदान्तदर्शन पढ़ने के लिये काशी ही सर्वोत्तम स्थान है। आप हमें अनुमति प्रदान करें। हम वेदान्त पढ़ने के लिये

काशी चले जायें। इस प्रस्ताव को सुन कर मेरी माता जी रोने लगीं। काशी साध ु-संन्यासियों का स्थान है। मेरा लड़का वहाँ जाकर साधु-संन्यासी बन जायेगा। फिर घर को वापस नहीं आयेगा। पिता जी ने गम्भीर होके सोचा और मुझको कह दिया- ''तुमको काशी नहीं जाने दूँगा। मेरी जमींदारी और कृषि-व्यापार कर्म की कौन देखभाल करेगा?'' पिता जी का आदेश उल्लंघन करना मेरे लिए कठिन हुआ।

17. जमींदारीं के गाँव में अध्ययनः— मैंने दूसरा प्रस्ताव पिता जी के सम्मुख रख दिया। हमारे वास स्थान से तीन कोस दूरी पर एक प्रसिद्ध पंडित का नाम बताया। वे हमारे पिता से सुपरिचित थे। उनसे वेदान्त पढ़ने के लिये प्रस्ताव रखा। पिता जी ने सोच विचार करके स्वीकृती दे दी। मैं वेदान्त पढ़ने के लिये वहाँ पहुँच गया । माता और पिता करीब-करीब निश्चिन्त हो गये कि काशी जाना तो बन्द हो गया। यही परम लाभ है। वहाँ जा के मनोयोग के साथ वेदान्त पढ़ने लगे। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति, वासना-कामना, आसक्ति-अनासक्ति आदि विषय पर आलोचना के समय मेरे मुख से निकल गया था कि ''मैं विवाह नहीं करूँगा।'' इस बात को सुनकर ही पंडित जी ने मेरे पिता जी को मेरे भाव के बारे में सूचना दे दी थी।

18. विवाह की अन्तिम चर्चाः— इस सम्वाद को सुनते ही पिता जी ने इस कठोर आदेश के साथ घर से एक नौकर भेज दिया था- ''तुम एक मुहूर्त के लिये भी वहाँ नहीं ठहरना। तुम तुरन्त घर आ जाओ।'' इस जरूरी आदेश के पाते ही गुरु जी के साथ मैं पिता जी के सम्मुख उपस्थित हो गया था। पिता जी बहुत ही दुःख के साथ गुरु जी से कहने लगे- अति शैशव में इस हतभाग्य पुत्र को जेवरों की लालसा से नौकरानी नदी में फेंक देने वाली थी। किन्तु अलंकारों सहित इसको घर पर पहुँचा कर वह चली गयी। दो वर्ष की उम्र में फिर उन्हीं अलंकारों की लालसा से चोर इसको चुरा के कहीं ले गये और दो रोज के बाद अलंकारों को रख कर इसको घर पर ही छोड़ गये थे। मानो भगवान् इसको अपने माता-पिता से पृथक् करना नहीं चाहता। हर्ष के कारण हमने इसके

शरीर के वजन के समान सोने का दाम ब्राह्मण-भोजन, पूजा-पाठ, हवन यज्ञादि कराये थे। मेरे प्रति धाय और चोरों को भी दया आई थी, लेकिन इस निष्ठुर पुत्र में हम माता-पिता दोनों के प्रति दया का लेश-मात्र भी नहीं है। अब से कभी इसको घर से बाहर नहीं रखेंगे। इसका विवाह ठीक हो गया है। लेकिन सुनते हैं कि वह नहीं करेगा। किसी रोज घर छोड़कर संन्यासी बन जायेगा। हमारे लिये यह असहनीय है। इसको छोड़कर हम दोनों माता-पिता जीवन-धारण नहीं कर सकेंगे।

माता जी ने कहा- इसके विवाह के लिये किसी कन्या के पिता को वचन दिया गया है । लड़की रूपवती, गुणवती और सुशीला है। अब कन्या अरक्षणीया हो गयी है। विवाह के लिये एक महीने का और समय भी लिया गया है। विवाह के लिये तो सब कुछ प्रयोजनीय सामग्री संगृहीत हो गयी है। इस महीने के अन्दर ही विवाह करना जरूरी है।

माता जी ने कहा- बेटे! तुमने बहुत कुछ पढ़ लिया है। ज्यादा पढ़ने की जरूरत ही क्या है? हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं है।

फिर पिता जी ने कहा- इसके अन्दर बाल्यकाल से ही परलोक की चिन्ता आ गयी थी। मेरे घर पर जो साधु, संन्यासी, भिक्षुकादि आते थे, उनसे पूछा करता था-''मैं मृत्यु के बाद क्या बन जाऊँगा? पशु, पक्षी, कीट-पतंगादि भी मरने के बाद क्या बन जायेंगे? तुम लोग नहीं बोलोगे तो मैं किसी प्रकार से मर कर ही जान लूँगा।''

एक दिन इसने इस बात को जानने के लिये लड़कपन से वस्त्रों में आग लगा ली थी। लेकिन भगवान् ने इसको बचा दिया था। आज यह हम सबको छोड़ना चाहता है। वह अकेला नहीं जा सकेगा। हम साथ-साथ चलेंगे। बेटे! मेरी जमींदारी, धन दौलत, व्यापार, घर-बार यह सब कुछ तुम्हारे लिये हैं। तुम्हारे छोटे-छोटे भाई-बहनों का पालन-पोषण और शिक्षा दीक्षा भी तुम्हारे ही जिम्मे है। तुम सब कुछ ग्रहण करो । मेरी आयु तो साठ वर्ष से भी ऊपर हो गयी है। हम थोड़े रोज के बाद ही काशी जाकर श्री विश्वनाथ जी की शरण में पड़े रहेंगे।

तुम विवाह कर लो। तुम्हारी विवाहित स्थिति को देखकर ही हम दोनों शान्ति के साथ मर सकेंगे।

पिता जी बोलते-बोलते रोने लगे। माता जी भी रोने लगीं। मैंने बहुत ही कष्ट के साथ आँसुओं को आँखों में ही रोक रखा। अपनी स्थिति को सम्हालने के लिये तीन रोज मैं घर में ही रहा। माता पिता के वचनों को मैंने धीर, स्थिर और शान्तभाव से ही सुन लिया था। लेकिन मेरे सिर पर मानो वज्रपात होने लगा था। मेरे अन्दर घर-बार छोड़ने के लिये वैराग्य का भाव अत्यन्त प्रबल हो गया था। पितामह बहन और चाचाजी की मृत्यु के दृश्यों ने मुझको नया जीवन दिया था। मैंने पण्डितों से बहुत बार पूछा था- ''मृत्यु से बचकर-अमृत लाभ करने के लिये रास्ता क्या है?'' सब ही ने एक ही बात बोल दी थी-'योग विद्या का लाभ, योगियों से उपदेश ग्रहण और तदनुसार साधना करने से मृत्यु पर विजय-लाभ होता है।''

''मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर योगियों की संगति में रहूँगा और योगविद्या प्राप्त करके मनुष्य समाज में इसका प्रचार करूँगा।'' मेरे अन्दर यह संकल्प दृढ हो गया था। मेरी आयु उस समय इक्कीस वर्ष की थी।

माता-पिता से मैंने बहुत ही शान्त भाव से बोल दिया था कि मैं विवाह नहीं करूँगा। मेरे एक और भाई हैं। आप लोग उन सब पर सब आशा रखिये। घर में रहना मेरे लिये कठिन है।''

गुरु जी ने पिता जी से कह दिया- आप लोग लड़के पर कड़ी दृष्टि रखें । धीरे-धीरे इसकी बुद्धि ठीक हो जायेगी। मेरी रक्षा के लिये पिता जी ने रक्षक नियुक्त कर दिया। माता-पिता ने मुझको संसार-धर्म के बारे में उपदेश सुनाये। लेकिन मेरे मन का संकल्प घर-बार छोड़ने के बारे में अचल अटल था।

माता जी ने मेरे मन को पिघलाने के लिये मेरे साथ विवाह के सम्बन्ध वाली लड़की को और उसकी माता को मेरे सम्मुख बुलवा लिया था। उन लोगों ने मुझे कुछ जेवर उपहार में दिये थे। मैंने बहुत ही नम्रता के साथ उस उपहार को वापस दे दिया था। नमस्कार करके कन्या को और उसकी माता को बोल

दिया था-"आप लोग हमारे जीवन के व्रतसाधन में बाधा मत डालिये । मेरे व्रत-साधन के लिये आप लोग हमें आशीर्वाद दीजिये।" विवाह का प्रसंग उस रोज से ही बंद हो गया था।

19. गृहत्याग:- मैं अब घर छोड़कर चला जाने के लिये सुयोग ढूँढने लगा था। मेरा रक्षक एक दिन सायंकाल अन्यमनस्क हो रहा था। मैं भी जाने के लिये तैयार हो गया। उसने पूछा- "कहाँ जाते हैं ? हमने कुछ भी नहीं कहा। उसने संदेह भी नहीं किया। मेरे शरीर पर एक ही कपड़ा था। दो हाथों की चार अंगुलियों में सोने की चार अंगुठियाँ थीं। कानों में और हाथों में दो-दो अलग-अलग अलंकार थे। मेरे कपड़े के आँचल में सौ रुपया बँधा हुआ था। नंगे पैर मैं घर से निकल पड़ा। सदा के लिये माता-पिता, भाई-बहन, घर-बार छोड़ के एकमात्र भगवान् के आश्रय ही अपने को सौंपकर अतिद्रुत गति से कृष्ण पक्ष के अंधेरे में सायंकाल नदी के किनारे-किनारे चलने लगा था। कहाँ जा रहा हूँ? यह मुझे भी पता नहीं था। लगभग 4 कोस जाने के बाद मैंने एक छोटे गाँव के अन्त में नदी के किनारे श्मशान घाट देखा। वहाँ एक छोटी निर्जन कुटिया थी। उसमें विश्राम के लिये प्रवेश किया। वहाँ सारी रात जगा हुआ निश्चिन्त होकर मैं भविष्य की कार्यसूची सोचने लगा था। आधी रात बीतने के बाद कई ठग (दस्यु) अचानक उस घर में प्रवेश कर मुझको सरकारी गुप्तचर समझकर मुझ पर कटारों से चोट पहुँचाने के लिये तैयार हो गये थे। मैंने अपना सच्चा परिचय दिया। सब ही ने हमको पहचान लिया। सब ही ने मुझको अपने दल में सम्मिलित होने के लिये कहा। मेरे राजी न होने पर उन लोगों ने मेरी अंगुलियों से दो अंगुठियाँ लेकर मुझको छोड़ दिया और बटमारी से उन लोगों ने जो कुछ संग्रह किया था सब वहाँ बैठकर आपस में बाँटा और वहाँ से चल दिये। प्रभात होने पर, मैंने अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी।

*

भ्रमण और संन्यास ग्रहण

योगियों के सन्धान में मैंने भ्रमण किया था। भ्रमण करना मेरे लिये कष्टकर नहीं था। पिता जी की प्रेरणा से परिश्रम करने की आदत, पान-आहार का संयम, शारीरिक और मानसिक व्यायाम, क्षुधातृष्णा का सहन आदि का अच्छा अभ्यास मेरे अन्दर विद्यमान था। भ्रमण के पहले दिन रात को ठग-डाकुओं से भी मैंने पूछा था- योगविद्या सीखने के लिए योगी कहाँ मिलते हैं? उन लोगों ने मेरी दो अंगूठियाँ लेने के बाद बताया था कि सिद्धपुर के मेले में जाने से बहुत से योगी मिलेंगे। अन्य साधुओं से भी सिद्धपुर जाने के लिए मुझे परामर्श मिला था। दूसरे दिन अति सवेरे श्मशान की कुटिया से रवाना होकर पन्द्रह कोस से भी अधिक रास्ता पार करके चला गया था। कोई मुझको पहचान न सके, इसलिये प्रधान-प्रधान मार्गों को छोड़कर मैदान, जंगल आदि निर्जन स्थानों से अग्रसर होने लगा, अगर कहीं मन्दिर मिल गया तो वहाँ विश्राम और जलपान भी कर लेता था।

किसी राजकर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया था और मेरी तलाशी भी ली थी। किसी आदमी ने कह दिया कि ''यह अवधूत साधु है, यह किसी मठ मन्दिर या आश्रम में नहीं रहता। केवल मनमाना भ्रमण करता है।'' मेरे पास रुपये थे। कानों में और हाथों में जेवर थे। इसका भी किसी ने ख्याल नहीं किया। राज-कर्मचारी ने मुझको छोड़ दिया था। उनसे पता लगा था कि एक नवजवान घर से भाग गया है। उसके सन्धान में उसके पिता कई एक अश्वारोही सैनिकों के साथ घूम रहे हैं। मैंने अनुमान कर लिया कि मेरे पिता जी ही मेरे संधान में घूम रहे हैं। मैंने निरुपाय होकर समीप के किसी श्मशान से कुछ भस्म लेकर वदन में लगा लिया जिससे झट मेरी पहचान न हो सके। चिन्ता रही केवल अलंकार और रुपये के लिये। मन में इस बन्धन के कारण उद्वेग और अशान्ति बढ़ने लगी थी।

थोड़े क्षण के बाद एक भिक्षुक-ब्राह्मणों के झुण्ड से साक्षात् हुआ। सब के सब मंत्रपाठ के साथ आशीर्वाद देने लगे और बोलने लगे-'बच्चा! कितने दिन

से साधु बन गया है। देखने में राजपुत्र सा मालूम पड़ता है। अरे! कुछ त्याग होना चाहिये। बिलकुल मुक्त हो जाओगे, शान्ति मिलेगी, दो नावों में पैर मत रखो। अलंकार रुपये आदि तुम्हारे पास जो कुछ है, भगवान् की सेवा में अर्पण कर दो। हम लोगों ने ऐसे ही किया है। भगवान् की सेवा के लिये हम लोग भिक्षा माँगते हैं। तुम भी हमारे साथ सम्मिलित हो जाओ। शान्ति मिलेगी। उनके उपदेश का प्रथमांश अच्छा ही मालूम पड़ा। हमने शेष दो अंगूठियाँ, कान-हाथों के अलंकार और सौ रुपये भिक्षुक ब्राह्मणों को वितरण कर दिये। उनके झुण्ड में सम्मिलित होने के लिये मैं राजी नहीं हुआ। अब अपने को बहुत हल्का समझने लगा।

1. शैला नगर में:— यहाँ हमने सर्वप्रथम शैलानगर के अधिवासी लाला भगत नाम के प्रसिद्ध विद्वान् और योगी के विषय में सुना था । भ्रमण करता हुआ उन्हीं की सेवा में पहुँच गया। मुझे देख कर वे सन्तुष्ट भी हुए थे। उनके पास मैं योग-साधना सीखने लगा। शरीर और मन की शुद्धि के लिये उन्होंने आसन और मुद्राओं की शिक्षा दी थी। मैं उत्साह से उनके साथ योगचर्या सीखने लगा। एक दिन उन्होंने कहा-"योगी बन जाना या योगसाधना में सिद्धि आदि का लाभ करना मानसिक और शारीरिक स्थिति पर ही है, तुम किसी आश्रम में नहीं हो। तुम न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थ और न संन्यासी हो। उन्होंने मुझको ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश के लिये परामर्श दिया। वहाँ निर्मल चैतन्य नाम के किसी ब्रह्मचारी के साथ मेरा आलाप तथा परिचय हुआ था। मैंने उनसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। वे राजी हो गये।

ब्रह्मचारी निर्मल चैतन्य ने मुझको समझा दिया था-"आचार्य शंकराचार्य प्रतिष्ठापित चार मठ हैं-

1. हिमालय में जोशी मठ,
2. दाक्षिणात्य में शृंगेरी मठ,
3. पूर्व में श्रीक्षेत्र में गोर्वधन मठ और
4. पश्चिम में द्वारिका में शारदा मठ

चारों मठों में ब्रह्मचारियों की उपाधियाँ पृथक्-पृथक् हैं। जैसे- उत्तर मठ की आनन्द, दक्षिण मठ की चैतन्य, पूर्व मठ की प्रकाश और पश्चिम मठ की स्वरूप। मैं दक्षिण मठ के अन्तर्गत निर्मल चैतन्य ब्रह्मचारी हूँ।'' दीक्षा लेने के लिये किसी निश्चित तिथि में मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करके 'शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी' नाम ग्रहण कर लिया था। मेरे पास जो जेवर और रुपये थे वह सब दान कर दिये थे। घर का एक मात्र चिन्ह एक वस्त्र था। अब उसको भी छोड़ दिया और गैरिक कपड़े पहन लिये। घर का दिया हुआ नाम और निशानी वस्त्र को छोड़कर मैंने बाह्य बन्धनों को तोड़ दिया है। मैं दक्षिण मठ का ब्रह्मचारी हूँ- यह ही मेरा एकमात्र परिचय हुआ। अब मेरे अन्दर योगविद्या सीखने की स्थिति ,योग्यता और अधि कार आ गये थे। अब अच्छे गुरु चाहिये । योगी लाला भगत ने मुझको सिद्धपुर मेले में जाने के लिये प्रेरणा दी थी। कोठकांग में भी सिद्धपुर मेले के बारे में सुना था।

2. सिद्धपुर के मेले में:– कार्तिक महीने का समय था। कार्तिक महीने में ही सिद्धपुर में मेला लगता है। ''वहाँ भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से योगी और योगसिद्ध पुरुषों का आगमन होता है'' इस बात को सुन कर सिद्धपुर जाने के लिये मुझमें भी उत्साह आ गया था। सिद्धपुर का प्राचीन नाम था ''श्रीस्थल''। यह प्राचीन काम्यक वन के अन्तर्गत है। यहाँ महर्षि कर्दभ का आश्रम था। सांख्यदर्शन सूत्रकार कपिल का यह जन्मस्थान था। गुर्जर देश के राजा मूलराज सोलंकी का कार्य यहाँ सिद्ध होने से इसका नाम सिद्धपुर पड़ा था। यह तीर्थ स्थान सरस्वती नदी के किनारे पर है। गुर्जर राज मूलराज सोलंकी और सिन्धुराज जयसिंह ने यहाँ सरस्वती नदी के किनारे पर सिद्धपुर नामक तीर्थ स्थान में रुद्र-महालय नाम का विशाल मन्दिर बनवाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने इसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अब वह मस्जिद के रूप में है । सिद्धपुर में पुराने-पुराने बहुत मन्दिर हैं। वहाँ नाना देशों से योगी योगसिद्ध साधक लोग मेले में आते हैं। सिद्धपुर जा कर योगी पुरुषों से मिलने से मृत्यु जय करने के बारे में मन की शंकाओं का समाधान हो जायेगा, इस आशा से मैंने वहाँ जाने के लिये संकल्प धारण किया था।

इससे पहले एक दुर्घटना घटी थी। मेरे जन्म स्थान के समीप बहुत से वैरागियों का वास है। एक दिन जब मैं ब्रह्मचारी के रूप में योगियों के सन्धान में घूम रहा था, तब हमारे परिवार से सुपरिचित किशोरी वैरागी से अहमदाबाद के समीप मेरी भेंट हो गयी थी। मुझे देखते ही वह दौड़कर मेरे पास आ गया था। उसने पूछा- ''तुमने गैरिक वस्त्र क्यों पहन लिया? कहाँ जा रहे हो? घर कब जाओगे? अपने माता-पिता कर समाचार कुछ जानते हो कि नहीं?'' मैंने जबाब दिया-''मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर लिया है। इसलिये गैरिक वस्त्र मैंने पहन लिया है। मैं सिद्धपुर मेले में जाऊँगा वहाँ योगियों से मिलूँगा। घर नहीं जाऊँगा। माता-पिता के समाचार नहीं जानता हूँ ।'' उसने कहा- ''जैसे पिता दशरथ ने राम के अदर्शन के कारण देह छोड़ दिया था, तुम्हारी माता ने भी शोक के कारण देह छोड़ दिया है। तुम सिद्धपुर नहीं जाकर पिता के पास चले जाओ।'' मैं माता की मृत्यु के समाचार का विश्वास नहीं कर सका। मैंने उसे कह दिया-योग के सन्धान करने के पुण्यकार्य में तुम बाधा मत डालो।''

मैं सिद्धपुर मेले में पहुँचा और वहाँ नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में रहते हुये योगी, साधु और महात्मा लोगों का संग करने लगा और साथ-साथ योग विद्या के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करता था किशोरी वैरागी ने मेरा सब हाल पत्र के द्वारा पिता जी को सूचित कर दिया और सिद्धपुर मेले में जाने के लिये सनिबन्ध अनुरोध किया । पिता जी मेरे बारे में सूचना पाते ही चार सिपाहियों के साथ लेकर सिद्धपुर मेले में पहुँच गये थे। मुझको ढूँढ़ते हुए वहाँ नीलकंठ शिव मन्दिर में उन्होंने मुझे देख लिया। मैं वहाँ साधु और सन्यासियों के साथ शास्त्रार्थ और सत्संग कर रहा था, वे अचानक वहाँ चार सिपाहियों के साथ पहुँच कर मुझे डपटने लगे। ''तू मेरे कुल में कलंक रूप में पैदा हुआ है, तूने मातृ-हत्या की है और भाग कर साधु-सन्यासियों के अन्दर बैठ गया है। तुझको पकड़ने के लिये मैं यहाँ तक पहुँच गया हूँ'' इस बात को सुनते ही चारों तरफ शोरगुल मच गया। मैं भाग न जाऊँ इसलिये एक साधु ने मुझको पकड़ लिया था। किशोरी वैरागी से मैंने माता जी का मृत्यु संवाद सुना था, लेकिन विश्वास

नहीं किया था, अब पिता जी की बात से विश्वास हो गया। साधु मुझको ''खूनी खूनी'' पुकार कर मारने के लिये तैयार हो गये। पिता जी ने घोषणा कर दी ''मैं इसका पिता हूँ। यह घर से भाग कर लापता हो गया था। पुत्रशोक के कारण इसकी माता की मृत्यु हो गयी है। यह ज्येष्ठ पुत्र और श्राद्धाधिकारी है। अगले चौथे दिन में इसको श्राद्ध करना है। इस बात को सुनकर ही साधु-संन्यासी लोगों ने मुझको छोड़कर पिता जी को घेर लिया और चिल्लाहट के साथ बोलने लगे कि इस पर माता-पिता का हक नहीं है। यह माता-पिता और संसार को छोड़कर हमारे साथ मिल गया है। और यह हमारे अन्दर एक बन गया है। सरकारी कर्मचारी ने आकर संन्यासियों के आक्रमण से मुझको बचाया था।

पिता जी के अन्दर भी साहस आ गया। अपने शिर से सफेद पगड़ी को उतार कर मेरे हाथों में देकर बोले- ''इसको पहन लो।'' गैरक वस्त्रों को उन्होंने छीन लिया और टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला। तूम्बे, भिक्षापात्र को भी उन्होंने तोड़ डाला। मैं पिता जी के चरण पकड़ के बोला-''आप चलिये, मैं आप के साथ चल रहा हूँ।'' भीड़-भडक्के से हम दोनों बचकर सिपाहियों के साथ चल दिये। सिद्धपुर मेले से कोस भर दूर आकर पिता जी ने सिपाहियों को आदेश दिया- ''इस पर कड़ी नजर रखो, फिर भाग न जाये।' हमने एक पुराने सिपाही से पूछकर सुन भी लिया था कि मेरे शोक के कारण ही माता जी का देहान्त हो गया और श्राद्ध के लिये मेरा वहाँ पहुँचना जरूरी है । रास्ते में मैं बन्दी के समान जा रहा था। पिता जी का दृढ संकल्प था- मुझको घर संसार के कारागार में कैदी बनवाके ही रखेंगे। मेरा दृढ संकल्प था-'' मैं वहाँ कभी कैदी नहीं बनूँगा। माता जी तो चली ही गयी, पिता जी भी किसी रोज चले जायेंगे और कभी मुझे भी जाना होगा। तब क्यों मैं घर जा रहा हूँ।'' पिता जी जोर जबरदस्ती से घर ले जा रहे हैं। मैंने रास्ते में खाना छोड़ दिया और केवल पानी पीकर और दूध पीकर रहने लगा। सिपाही लोग निश्चिन्त हो गये कि मैं अवश्य ही घर जाऊँगा। लेकिन मैं पिता जी से मुक्त होने के उपाय ढूँढने लगा। एक रोज रात्रि के अन्त में पिता जी और सिपाही लोग गंभीर निद्रा में निद्रित थे। तब मैं पानी भरा हुआ

लोटा लेकर धीरे-धीरे सबों के दृष्टि-पथ से बाहर जाकर द्रुत गति से जाने लगा। गाँवों को छोड़कर किसी बगीचे में घने वृक्ष पर छिपकर बैठ गया वृक्ष के नीचे एक शिव मन्दिर था। भूखा रातभर वृक्ष पर ही रहा। अति सवेरे वृक्ष से उतर कर फिर चलने लगा। सवेरे वृक्ष के ऊपर से मैंने देख लिया कि सिपाही लोग मुझको इतस्ततः ढूँढ रहे हैं। मैं वृक्ष से नहीं उतरा और समस्त दिन और आगे शाम को अन्धेरा होने तक वृक्ष पर ही छिपकर रहा। धीरे-धीरे वृक्ष से उतर कर फिर अति द्रुत गति से चलने के बाद मैं अहमदाबाद पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर मैंने स्नान किया, कुछ चना खा लिया और पेट भर कर पानी पी लिया था अब सोचने लगा कि योगियों के सन्धान में अब कहाँ जाऊँ?

3. अहमदाबाद मेः– अहमदाबाद में आकर मैं योगियों की खोज में ही रहा। वहाँ मन्दिरों की कमी नहीं है। वैष्णव, तांत्रिक और जैनों के विशाल-विशाल मन्दिर हैं। सभी मन्दिरों में आडम्बर अत्यधिक है। साधु और सन्यासियों के भोजन के लिए अभाव और कठिनाइयाँ नहीं हैं। किसी योगी से मिलने के लिए मेरी प्रबल इच्छा थी। सभी मन्दिरों में सन्धान किया, परन्तु मेरी प्रार्थना और इच्छा पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। पास ही साबरमती नदी है। नदी के तट पर बहुत संख्या में एकांत और निर्जन आश्रम या कुटीर देखे। एक आश्रम में योगीराज बाबा जी नाम के एक तांत्रिक साधु मिले। योगविद्या सीखने की इच्छा सुनकर आपने बहुत ही हर्ष प्रकट किया। उन्होंने मेरे स्वल्प भोजन के लिये दूसरे आश्रम में प्रबंध कर दिया और खड्ग धारेश्वर बाबा जी के आश्रम में योग विद्या सिखाने के लिये उनके अधीन मुझे छोड़ दिया। वहाँ मैं लगभग एक मास तक रहा। वहाँ मुझे पता लगा कि वैषयिक कार्यों के लिये योग तेरह प्रकार के हैं और पारमार्थिक कार्यों के लिये चतुर्विध हैं।

4. वैषयिक योगः– ये त्रयोदश प्रकार के वैषयिक योग हैं :–

1. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्तित करना।
2. दुर्लभ वस्तु को चिन्ता द्वारा जान लेने के उपाय जानना।
3. प्राप्त वस्तु का संरक्षण करना।

4. कौशल से कार्यलाभ करना।
5. शब्दों की अर्थ-बोध-शक्ति को जानना।
6. शब्दों का यथा योग्य विन्यास करना।
7. देह को स्वस्थ रखना।
8. वस्तुओं के प्रकृत तत्वों को छिपाना।
9. युक्ति पूर्वक वाक्यों का प्रयोग करना।
10. अस्त्र धारण करने के कौशल जानना।
11. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ मिलान करना।
12. एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व को मिलान कर देना।
13. कार्य के कारणों को एक साथ जान लेना।

वैषयिक योग के आदि उपदेष्टा थेः- उशना, बृहस्पति, इन्द्र, पुनर्वसु और अग्निवेश।

इन तेरह प्रकार के वैषयिक योगों के अवलम्बन से आठ शास्त्रों की रचना हुई हैः-

1 नीति, 2 धनुर्वेद, 3 आयुर्वेद, 4 गांधर्ववेद, 5 शिल्प, 6 कृषि, 7 वाणिज्य और 8 कला-कौशल।

पारमार्थिक योग के आदि उपदेष्टा थे- हिरण्यगर्भ, महेश्वर, शिवानी, कपिल, पंचशिख, जनक, वसिष्ठ, दत्तात्रेय, जैगीषवव्य, याज्ञवल्क्य और पतञ्जलि।

चार प्रकार के पारमार्थिक योगों के अवलम्बन से अध्यात्म शास्त्रों की रचना हुई है। पारमार्थिक योग- साधन के लिये चार प्रकार के पथ आविष्कृत हुए हैंः—

1. मन्त्रयोग 2. लययोग 3. राजयोग 4. हठयोग।

5. पारमार्थिक योगः— ये चार प्रकार के हैंः—

1. चित्त को एकतान यानी एकाग्र करना,
2. सबकी सब मनोवृत्तियों को रोक देना,
3. वस्तुविषयक चिन्ता प्रवाह को उद्दीप्त करना ,

4. आत्मा को आत्मा के साथ या परमात्मा के साथ संयोग कर देना।

राजयोग के लिये ऋषि पतञ्जलि का योगसूत्र सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

खड्ग-धारेश्वर बाबाजी से मुझको योग-विद्या के सम्बन्ध में बहुत ग्रन्थों का परिचय मिला था। इसलिये उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। लेकिन वहाँ बहुत दिन हम नहीं रह सके। बाबा जी मुझको योगविद्या की साधना के प्रथम पाठ सिखाने के लिए अति सवेरे नदी के किनारे ले गये और मेरे हाथ में 'सिद्धि' नाम की वस्तु को खाने के लिये दिया। पूछने से पता लगा कि मंत्र से शुद्ध की हुई भंग ही सिद्धि है। मेरे सिर पर मानो वज्रपात हुआ। मुझको मालूम था कि भंग नशा है। मैं तत्काल ही दौड़कर भागने लगा और गुरु जी भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगे। एक राज कर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया और थाने में बन्द करके रखा। गुरु जी पहले ही भाग गये थे। मेरी सब बातें सुनकर मेरे प्रति थानेदार को दया आई। उन्होंने मुझे डाँटा और अहमदाबाद के नशाखोर साधुओं के कुसंगों को छोड़कर बड़ौदा जाने के लिये सलाह दी, क्योंकि वहाँ अच्छे-अच्छे मठ हैं। मैं 'तथास्तु' बोलकर थाने से चला आया और योगिराज बाबा जी की सलाह के अनुसार बड़ौदा चला गया।

6. बड़ौदा में:– अहमदाबाद से बड़ौदा पहुँच गया। रास्ते में किसी गृहस्थ के घर पर नहीं गया। मठ- मन्दिरों में जाने से ही प्रसाद के नाम पर भोजन मिला करता था। रास्ते में तीन रुद्राक्ष और त्रिशूलधारी मेरे साथ मिल गये थे। विदेश भ्रमण की विद्या में ये बहुत ही दक्ष थे।

बड़ौदा पहुँच कर हम लोगों ने वहाँ के चैतन्य मठ में आश्रय लिया। चैतन्य मठ वेदान्त प्रचार का प्रसिद्ध केन्द्र है। भोजन के लिये पूरा प्रबन्ध है। अधिकांश संन्यासी वहाँ शंकराचार्य के एकान्ताद्वैतवादी हैं, लेकिन वहाँ सभी सम्प्रदाओं के संन्यासियों और सिद्धान्तों से मेरा परिचय हुआ था। मुझे वहाँ बहुत गुरु मिल गये थे। सब ही गुरु मुझको पुत्र-दृष्टि से देखते थे। सभी ने मुझको वेदान्त के भिन्न-भिन्न भाष्य पढ़ाये। स्वामी मुक्तानन्द से आचार्य शंकर का शारीरिक भाष्य विवरण टीका, भामती टीका मंडन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि, अभिमुक्तात्मा की

इष्टसिद्धि, विद्यारण्य की पंचदशी, सदानन्द का वेदान्तसार, आनन्दगिरि का न्यायनिर्णय, गोविन्दानन्द की रत्नप्रभा, प्रकाशानन्द की सिद्धान्त मुक्तावली और मधुसूदन सरस्वती की अद्वैत सिद्धि पढ़ने के लिये मुझे पूरा अवसर मिला था।

स्वामी जीवानन्द ने मुझे वेदान्त दर्शन पर भास्कराचार्य का भेदाभेदवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद और श्री कृष्णचैतन्य का अचिन्त्यभेदाभेदवाद पढ़ाये थे। वेदान्त दर्शन पढ़ने के लिये चैतन्य मठ में मेरा लगभग एक वर्ष का समय लग गया था। मेरे साथ तीस और ब्रह्मचारी वेदान्त पढ़ते थे। निर्मलानन्द, ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द, विपुलानन्द, कृपानन्द, विश्वानन्द, विभानन्द, प्रेमानन्द और अभेदानन्द। ये सब हम सबके गुरु थे। ये लोग हम सब ब्रह्मचारी लोगों को वेदान्त पढ़ाते थे और वेदान्त के विभिन्न विषयों पर आपस में आलोचना के लिये मौका देते थे। जीव और ब्रह्म के एकत्व विषय पर ही अधि क आलोचना होती थी।

गौरी देवी (काशी की रहने वाली एक साधु माता) द्वारिका से वापस जाती हुई चैतन्य मठ में आयी थीं। तीन रोज वहाँ रहते हुए उन्होंने वेदान्त पर आलोचना सुनी थी। उन्होंने जाने के रोज हम सब ब्रह्मचारियों से कहा था कि यहाँ वेदान्त पर आलोचना नाममात्र ही होती है। काशी में वेदान्त के दिग्गज पंडित लोग हर महीने वेदान्त पर आलोचना करते हैं। आगामी वार्षिक सभा में भारत के विभिन्न प्रान्तों से पंडित लोग और विभिन्न मठों से साधु-संन्यासी लोग आयेंगे। वहाँ जाना चाहिए हम चारों ब्रह्मचारी- उत्तर मठ के विभवानन्द, पूर्व मठ के कृपाप्रकाश, पश्चिम मठ के भक्तिस्वरूप और दक्षिण मठ का मैं शुद्ध चैतन्य वाराणसी की ओर रवाना हो गये और यथासमय वहाँ पहुँच गये थे। चैतन्य मठ में केवल वेदान्त पर ही मेरा एक वर्ष का समय बीत गया था। किन्तु किसी योगसिद्ध साधु पुरुष का सन्धान नहीं मिला था। वाराणसी में इनका सन्धान अवश्य मिल जायेगा, इस आशा पर ही मैं बनारस पहुँच गया था।

7. वाराणसी में:— वाराणसी में आकर हम लोग दशाश्वमेध घाट के निकट साधु-आवास में ठहरे थे। भोजन का प्रबन्ध जयपुराधीश के राज-गृह में

था। वेदान्त विषय पर आलोचना भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। उन सब आलोचनाओं से मैंने समझ लिया था कि दूसरे-दूसरे दर्शन शास्त्रों में भी अधिकार रखना चाहिये और व्याकरण शास्त्र को और अच्छी तरह पढ़ना चाहिये और यह भी देख लिया कि वाराणसी में तीर्थयात्रियों का भी अन्त नहीं है, पंडितों का अन्त नहीं है और साधु-सन्यासियों का भी अन्त नहीं है, मैं और तीनों ब्रह्मचारी यहाँ रहकर उपनिषद्, दर्शन और व्याकरण पढ़ने लगे। पं. रामनिरंजन शास्त्री से वैशेषिक और न्याय, पं. विश्वम्भर तर्करत्न से सांख्य और योग, पं. हरप्रसाद विद्यारत्न से पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा और पं. रासमोहन सिद्धान्तवागीश से भी व्याकरण पढ़ने लगे।

मेरे तीनों साथी मुझ को छोड़कर प्रयाग चले गये। मैं अकेला ही काशी में रहकर पंडितों से भिन्न-भिन्न व्याकरण के पाठ पढ़ने लगा। पं. श्री निखिलेश शास्त्री से मैंने कात्यायन का वार्तिक, पं. श्री रुद्रदेव विद्यालंकार से वाक्यपदीय, पं. श्री सोमदेव तर्करत्न से वामन और जयादित्य की काशिका, पं. श्री महादेव शास्त्री से जिनेन्द्र बुद्धि का न्यास, पं. श्री विमलेन्दु काव्यनिधि से हरदत्त की पदमंजरी, पं. श्री शशिकान्त भट्ट से रामचन्द्र की प्रक्रिया कौमदी, पं. श्री अखिलानन्द भट्टाचार्य से भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्त कौमदी और पं. श्री महावीर शर्मा से बोपदेव का मुग्धबोध पढ़ा था।

व्याकरण दो या तीन बार भिन्न-भिन्न पंडितों से पढ़ लिया था। मैं ब्रह्मचारी के वेश में ही रहता था। गृहस्थ पण्डित लोग मुझ को स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पं. श्री विमलेन्दु काव्यनिधि और पं. श्री रामनिरंजन शास्त्री मुझको दर्शन शास्त्र पढ़ाने के लिये बड़े ही उत्सुक थे। मैंने उन दोनों से न्याय और वैशेषिक दो बार तथा सांख्य और योग तीसरी बार भी पढ़ा था। काशी के बहुत पण्डित हमसे शंका-समाधान के लिये भी आते थे। मैं पं. श्री हरदेव शास्त्री से मनस्तत्व के बारे में भी पाठ पढ़ा करता था।

मेरा मन इन सब विद्याओं को पढ़ने में रहा करता था और रात्रि को शय्या ग्रहण करने के समय योगियों के संधान करने के लिये मेरे मन के अन्दर दूसरे

भाव जागृत हो जाते थे। कभी-कभी ख्याल आता था कि पंडितों का भार वहन करने से लाभ नहीं है। यदि मृत्यु को जय करने का कार्य ही बाकी पड़ा रहा तो देश-भ्रमण और विद्या-संग्रह मेरे लिये सब व्यर्थ है। जो घरबार माता-पिता को छोड़कर चला, यह सब किस कार्य में आया? यह चिन्ता मुझे दिन-रात सताने लगी।

इस दुश्चिन्ता के कारण मेरा चित्त चंचल और अशांत हो गया था, काशी छोड़कर अन्यत्र जाऊँगा- इस विचार को मैंने पक्का कर लिया था। काशी के सब ही पण्डितों से मैं विदाई और आशीष माँगने लगा। सुनकर सब ही ने दुःख प्रकट किया था। मैं गुरुओं का प्रिय शिष्य था। परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ही मेरे काशी रहने के एकमात्र आश्रय थे और द्वार बंगाधीश ही मेरे आर्थिक सहायक थे। इन दोनों की कृपा से ही मैंने काशी में रहकर ज्ञानोपार्जन का सुयोग पाया था। मेरे अन्यत्र जाने के विचार से इन दोनों से भी दुःख प्रकट किया था। इन लोगों ने चाहा था कि मैं और कुछ समय काशी में रहूँ और शेष शास्त्रों का अध्ययन करूँ। इन्होंने काशी में रहकर योगसिद्ध साधक को ढूँढने के लिये और प्रेरणा दी थी। मैंने कुछ दिन के लिये काशी छोड़ने का विचार छोड़ दिया और दूसरे-दूसरे शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

8. उपनिषद् पाठः— पं. श्री अच्युतानन्द शास्त्री ने मुझे 11 प्राचीन उपनिषद् और पं. श्री बलदेव शिरोमणि ने उपनिषदों के नवीन 101 ग्रन्थों का पाठ पढ़ाया था।

9. स्मृतियों का पाठः— पं. श्री रत्नाकर शिरोमणि से मैंने प्राचीन स्मृति और पं. श्री महेशचन्द्र स्मृतिरत्न से नवीन स्मृतियों का अध्ययन किया था।

10. बौद्धदर्शनों का पाठः— भिक्षु तथागत धर्मपाल से मैंने महायानी बौद्ध सम्प्रदाय के माध्यमिक और योगवाद सिद्धान्त तथा साधु राहुल मणिभद्र से हीनयानी बौद्ध सम्प्रदाय के वैभाषिक और सौतान्त्रिक के सिद्धान्त पढ़े थे।

11. जैनदर्शनों का पाठः— श्री साधु युगल किशोर पारेख से मैंने दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के उमास्वामिकृत ''तत्त्वार्थाधिगमसूत्र'' और श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के हरिभद्र कृत ''लोकतत्त्वनिर्णय'' आदि ग्रन्थों का विस्तृत पाठ पढ़ा था।

12. तन्त्रशास्त्रों का पाठः— तान्त्रिक साधु बेताल भैरव बाबाजी ने तन्त्र शास्त्रों के योग, क्रिया और चर्या को, शैवों के आगम को, शाक्तों के शक्ति तन्त्र को, वैष्णवों के विष्णु तन्त्र को और बौद्ध-जैनियों के अवैदिक तन्त्र को पढ़ाया था।

13. चार्वाक और बार्हस्पत्यदर्शनों का पाठः— पं. श्री विभूतिभूषण तर्कवागीश से ''सर्वदर्शन संग्रह'' और श्री पं. क्षेमकरण दर्शनशास्त्री से मैंने बृहस्पति और चार्वाक के नास्तिकवाद, संजय के संशयवाद, केशकम्बली के जड़वाद, कश्यप के औदासीन्यवाद, गोपाल के अदृष्टवाद और काकुद-कात्यायन के पंचभौतिकवाद के पाठ पढ़े।

14. मनस्तत्त्वों का पाठः— अन्त में परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी ने मुझे मनस्तत्त्व विषय पर कपिल के सांख्य-प्रवचन सूत्र के ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका और पतञ्जलि के योगसूत्रों के साधनपाद सूत्रों के व्यावहारिक पाठ पढ़ाये थे। इन सब शास्त्रों के अध्ययन से मेरे अन्दर विभिन्न शास्त्रपाठ की प्रबल इच्छा और तुलना-आलोचना की रुचि पैदा हो गयी थी। मेरा चित्त पहले से बहुत शान्त हो गया था। काशी के बड़े-बड़े विद्वान् साधु-साधक तपस्वियों के सत्संग से और विभिन्न शास्त्रों को विचार-धाराओं से परिचय प्राप्त होने से अपने जीवन को मैं बहुत ही धन्य और कृतार्थ समझने लगा। हृदय में सिंह सदृश बल आ गया और ज्ञानालोक से चित्त उद्भाषित हो गया। अब मैं काशी के विभिन्न मठ-मन्दिर, आश्रम-तपो-वनों में योग-सिद्ध पुरुषों का सन्धान करने लगा। तीर्थयात्रियों की भीड़-भाड़ में और विभिन्न साम्प्रदायिक कोलाहलों में योग-सिद्ध पुरुषों को ढूँढ़ निकालना मेरे लिये कठिन था। इस स्थिति में परमहंस सच्चिदानन्द

स्वामी ने योगियों के सन्धान के लिये नर्मदा नदी के तटवर्ती तीर्थस्थानों में जाने के लिये मुझे प्रेरणा दी थी और यह भी बोल दिया था कि चाणोद, कर्नाली और व्यासाश्रमादि स्थानों में अवश्य ही जाना चाहिये। तदनुसार काशी से प्रस्थान करने की तिथि निश्चित की गई।

15. गुरुजनों का आशीर्वाद:– परमहंस सच्चिदानंद स्वामी के प्रबन्धानुसार प्रस्थान से पहले दिन मेरे सब ही ज्ञानदाता गुरु लोग मुझे आशीर्वाद देने के लिये दशाश्वमेध घाट पर इकट्ठे हो गये थे। गुरुओं को दक्षिणा देने के लिये द्वार-बंगाधीश (दरभंगा नरेश) ने मेरे हाथों में 500) रुपये भेज दिये थे। सब गुरुओं ने मेरे ललाट में चन्दन का टीका लगा के और शिर पर हाथ रख के मन्त्रोच्चारण के साथ आशीर्वाद दिया था। मैंने सबके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम किया। उनमें बौद्ध, जैन और नास्तिक गुरु लोग भी थे। मैंने 500 (पाँच सौ रुपये) गुरुओं को दक्षिणा के रूप में समर्पण कर दिये । परमहंस सच्चिदानन्द सरस्वती ने सब गुरुओं की ओर से मुझे आशीर्वाद दिया था। 'ब्रह्मचारिन्! सौम्य! शुद्धचैतन्य! पवित्र काशीधाम से सौभाग्य के कारण तुम बहुत ही मूल्यवान् ज्ञान-सम्पद् को प्राप्त हुये हो। लेकिन तुम्हारे अन्दर योगविद्या सीखने की प्रबल इच्छा उद्दीप्त हो रही है। हम लोग उस आग को बुझाना नहीं चाहते हैं। हम तुम्हें नहीं छोड़ रहे हैं। तुम ही हम सबको छोड़कर जा रहे हो। हम लोग तुम्हारा आध्यात्मिक उत्कर्ष भी चाहते हैं। तुम यहाँ से नर्मदा (रेवा) नदी के किनारे जाने के लिये प्रस्थान करो। वहाँ नदी के दोनों तटों पर आश्रम बनवा के बहुत से योगी पुरुष रहा करते हैं । नर्मदा नदी के स्थान-स्थान में दूसरी बहुत-सी नदियों के संगम स्थल मिलेंगे। भिन्न-भिन्न साधन क्षेत्र और तीर्थ स्थल मिलेंगे। किन्तु हिंस्र पशु जंगलों में विचरण करते हैं। वृक्षों में फल मिलेंगे, सरोवर में जल मिलेगा। वृक्षों के नीचे और ऊपर सोने के स्थान मिलेंग। वनचर मनुष्य तुम को आश्रय देंगे। जैसे वहाँ तपोवन वन और आश्रम हैं, ऐसे ही वहाँ चोर और डाकुओं के भी आश्रयस्थल हैं। अपने साथ में डण्डा रखो और थैली रक्खो और दिल में ईश्वर-भक्ति रखो, विपद् आयेगा लेकिन तुम पार हो जाओगे।'' गुरुओं का

आदेश और आशीर्वाद मैंने शिरोधार्य किया। सब ही गुरुओं के चरण छूकर प्रणाम करके मैं प्रस्थान की तैयारी में लग गया। मैं अपने परम हितैषी द्वारबंगाधिपति से विदाई लेने को गया। वे मेरे प्रति स्नेह और श्रद्धा दोनों ही भाव रखते थे। मेरे प्रस्थान के कारण वे भी सन्तप्त थे। उन्होंने कहा– ''तुम अपने प्रयोजन के अनुसार रुपये-पैसे और सामग्री जो-जो और जितनी चाहो ले जाओ।'' मैंने कहा– ''आप ही की कृपा से काशी से अमूल्य ज्ञान-सम्पद् मुझको मिला है। मेरे लिये वह बहुत है। लेकिन वे माने नहीं। मैंने विवश होकर एक लोटा, एक कम्बल, एक अंगोछा और एक डण्डा लेकर काशी से नर्मदा नदी की ओर प्रस्थान किया।

16. नर्मदा के तटों में:– मैं काशी से रवाना होकर पैदल विन्ध्याचल की तरफ अग्रसर होने लगा। और विलासपुर होता हुआ अमरकण्टक पहुँच गया था। विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों के बीच में महाकाल नाम का पर्वत है। उसके अमरकंटक नामक शृंग के विराट कुण्ड से नर्मदा निकली है। मध्यप्रदेश और गुजरात होती हुई नर्मदा अरबसागर की खाड़ी काम्बे में मिल गयी है। नर्मदा करीब एक सौ योजन लम्बी है। मैं धीरे-धीरे नर्मदा नदी के उत्पत्ति-स्थल की तरफ अग्रसर होने लगा। दोनों तटों में दूसरी-दूसरी बहुत-सी उपनदियाँ आकर मिली हैं। नदियों के संगम स्थलों में बहुत से तीर्थ हैं। प्राचीन काल से ऋषि-मुनियों के नाम पर बहुत से आश्रम बन गये हैं। साधु-तपस्वी लोगों के साधना करने के लिये और साधना शिक्षा देने के लिये वहाँ साधन-क्षेत्र भी बन गये हैं। परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी से यहाँ के चाणोद, कर्णाली, व्यासाश्रम और आबू पर्वतादि साधन-क्षेत्रों के विषय में बहुत कुछ सुना करता था, आबू अर्वली पर्वत का शृंग-विशेष है। उन सब स्थानों के प्रति मेरा विशेष आकर्षण था। घने जंगलों के अन्दर मैं कम-चौड़े छोटे-छोटे रास्तों से जाने लगा। कभी-कभी तो रास्ता समाप्त हो जाता था। वहाँ के स्थानीय आदमी मिल जाते तो वे बता देते थे कि इस रास्ते से किस तरफ जाने से, कौन-सा तीर्थ या आश्रम मिल जाता है। दोपहर के समय भी घने जंगलों में अंधेरा बना रहता था। भूख-प्यास लगने से या शाम हो जाने से अधिक कठिनता होती थी। बीच-बीच में चोर-डाकुओं

का अड्डा भी मिल जाता था। जाते-जाते बड़े-बड़े साँप, हाथी, शेर, रीछ, वराह, जोंक, जहरीले कीट पतंगों के झुंड और बड़े-बड़े मांस-भुक् पक्षी मिलते थे। लेकिन उनमें से किसी ने भी मुझे हानि नहीं पहुँचायी और मैंने किसी को हानि पहुँचाने के लिये सोचा भी नहीं। इस रूप से मैं नर्मदा नदी के इस पार से उस पार आया-जाया करता था। कहीं-कहीं घाट उतराई के लिये नाव का प्रबन्ध नहीं था। एक लकड़ी के टुकड़े के सहारे पर ही नदी पार होना पड़ा। जहाँ कुछ प्रबन्ध नहीं था वहाँ मैं तैर के ही नदी के उस पार चला जाता था, इस रूप से मेरा लोटा, कम्बल, थैली और डंडा बहुत पहले ही खो गये थे। मैं इस रूप से द्वार-बंगाधीश की दी गयी स्नेह, श्रद्धा, प्रेम-प्रीति की निशानी से भी मुक्त हो गया था।

17. नर-बलि:– एक दिन की घटना को मै आज तक भी नहीं भूल सका। शाम होने वाली है। सामने नदी है। अमावस्या की अंधेरी रात आने वाली है। आज मैं किस रूप से रात्रि बिताऊँगा- यही सोच रहा था। देखते-देखते और सोचते-सोचते अन्धेरा हो गया। दूर से आवाज आने लगी हर्षध्वनि की । धीरे-धीरे भीड़ नदी के किनारे पहुँच गयी। मैंने दूर से देख लिया। कि एक दस वर्ष के बालक को लोग नहला रहे हैं। सब पुरुष हर्ष के कारण नाच रहे हैं और स्त्रियाँ गाना गा रही हैं। एक माता बार-बार उस लड़के को पकड़ने के लिये जा रही थी और लोग माता को धकेल देते थे। यह क्या बात है, इसे जानने के लिये मैं वहाँ पहुँचा। मैंने सुना कि ‘आज अति पुण्य तिथि मणि-अमावस्या है। काल भैरव की गुफा में आज मध्य रात्रि को काल-भैरव की सेवा में इस निष्पाप, निर्दोष और शुभ लक्षणयुक्त ब्राह्मण-बालक को बलिवेदी पर चढ़ाया जायेगा। उसके माता-पिता और वंश धन्य हो जायेंगे। ऐसा सौभाग्य सब के लिये नहीं होता है। इस एकमात्र पुत्र बालक के पिता को पुजारियों की तरफ से 50 (पचास रुपये) प्राप्त हुये हैं। पिता काल भैरव की कृपा को अनुभव करके धीर स्थिर शान्त रहा। लेकिन मूर्ख और अभागिनी माता ने काल-भैरव की इतनी बड़ी कृपा को नहीं समझा। हर वर्ष केवल एक बार इस मणि-अमावस्या की पुण्य तिथि में काल

भैरव को इस रूप से एक-एक सुलक्षणयुक्त ब्राह्मण बालक भेंट के रूप में दिया जाता है, इसमें रोने की क्या बात है? आज मध्य रात्रि को ही यह बालक बलिदान के साथ-साथ मनुष्य-देह छोड़कर गन्धर्व लोक को चला जायेगा।'' इस बात को सुनते ही मेरे मन में तीन चिन्तायें उत्पन्न हुईं।

पहली:- ''मेरी माता ने मुझ पुत्र को केवल खोकर ही देहत्याग किया था। अपने पुत्र का बलिदान देख यह माता जीवन कैसे रखेगी?''

दूसरी:- ''इस सामाजिक महापाप के दण्ड भोग के लिये ही हमारी पुण्य-मातृ-भूमि धीरे-धीरे विदेशी वणिकों के कवल में जा रही है।''

तीसरी:- '' धर्म के नाम पर ऐसे-ऐसे महापाप ऋषि-मुनियों के देश में कैसे चालू हो गये?''

मुझसे यह करुण और भयंकर दृश्य सहा नहीं गया। यह कालभैरव का स्थान धर्मपुरी से लगभग दो योजन की दूरी पर जंगल के अन्दर रास्ते के पास वारंगा नाले के साथ-साथ है। धर्मपुरी फलघाट के सम्मुख नर्मदा के उत्तर तट पर है। फतेहगढ़ से कोई एक योजन दूरी पर ही यह स्थान है।

बलिदान की शोभा-यात्रा के अन्दर जाकर रक्त चन्दन से अनुलिप्त रुद्राक्षमाला परिहित प्रधान पुरोहित से मैंने कहा- ''कृपया आप इस बालक को छोड़ दीजिये। इसके बदले मुझ को ले जाइये। मैं भी ब्राह्मण का बालक हूँ।'' पुरोहित ने कहा-''यह सौभाग्य सबको नहीं मिलता। इस बालक को नहीं छोड़ सकता हूँ, क्योंकि यह काल-भैरव को पहले ही उत्सर्ग किया गया है। तुम भी जा सकते हो, वहाँ पुरोहित-राज कापालिक की आज्ञा हो तो बालक को छोड़ दूँगा और तुमको ही बलि पर चढ़ा दूँगा।'' मैं सहर्ष राजी होकर शोभायात्रा में शामिल होकर चला। लड़के की माता के कंठ की आवाज रोने के कारण बन्द हो गयी थी। केवल पगली की तरह शोभायात्रा में शामिल होकर आ रही थी। शोभायात्रा कालभैरव की गुफा के सम्मुख पहुँच गयी, भीड़भाड़ वहाँ भयंकर थी। सात कपड़े की पट्टियाँ सिर पर बाँध कर करीब पचास आदमी कटारी हाथों में लेकर नाच रहे थे। करीब सौ स्त्री-पुरुष शराब पी-पीकर वहाँ गाना गा रहे

थे। मेरे बारे में पुरोहित और कापालि के अन्दर बातचीत हो गयी। उन्होंने मुझको सुझाव दिया था- ''अगर तुम राजी हो तो काल भैरव की सेवा में तुम को ही बलिदान दिया जायेगा।'' मैं राजी हो गया। पुत्र-शोकातुरा जननी को पुत्र वापस दिया गया। पुत्र को पाकर गले से आलिंगन कर के माता बेहोश होकर गिर पड़ी।

मुझको पुरोहितों ने स्नान करवाया, रक्त चन्दन बदन में लगवाया, फूलों की माला पहना पुरोहित मेरे सिर पर हाथ रखकर मन्त्रपाठ करने लगा। कपाल में कुमकुम लगवाया गया। खड्ग की पूजा हुई। काल भैरव की गुफा के सम्मुख काठ की वेदी में मेरे सिर को रखवा कर पुरोहित लोग मिलकर मन्त्रपाठ करने लगे। चारों तरफ से 'कालभैरव बाबा की जय'' का उद्घोष होने लगा। मैंने जनता को एक बार देख कर आँखें बन्द कर लीं और मरने के लिये तैयार हो गया। पुरोहित ने कानों में मुख लगा के मन्त्र पढ़ दिया-

ओम् नर त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ,
प्रणमामि ततस्तवां वै गच्छ त्वं गन्धर्वसदनम्।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम् ,
यज्ञे च मरणे त्वं हि ध्रुवं गन्ता त्रिविष्टपम्॥

इस मन्त्र को पढ़कर पुरोहित ने खड्ग को घातक के हाथों में दे दिया और मेरी आँखों को कपड़े की पट्टी से अच्छी तरह कसके बाँध दिया। अब बलिदान बाकी है, लेकिन साथ-साथ अचानक बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ने की तीन अति भयंकर आवाजें आ गयीं। साथ के आदमी लोग चिल्लाने लगे-'भागो! भागो! भाग जाओ! मरहठी फौज आ गई!'' सब कोई जंगल के अन्दर भाग गये। मैं अकेला बलिदान के लक्कड़ में बँधा हुआ पड़ा रहा। तुरन्त वहाँ चार बन्दूकधारी सिपाही पहुँच गये और उन्होंने मुझको मुक्त कर दिया। मैंने सुना कि ये लोग अमावस्या की रात्रियों में नरबलि बंद कराने के लिये घूमा करते हैं। ये लोग मरहठी फौज के सिपाही हैं। वह माता डर के मारे लड़के को लेकर जंगल के अन्दर छिपी हुई थी। मैंने वहाँ जाकर माता को आशा बंधाई कि अब इन फौजी सिपाहियों से डरने का कोई कारण नहीं है। हमने इन सिपाहियों से सब बातें

आनुपूर्व कह दी थीं। माता से लड़के से और मुझसे इन्होंने सब कुछ सुन लिया। वे लोग वहाँ ही रहे। सवेरे दो सिपाही माता को और लड़के को साथ लेकर उनके घर पहुँचाने के लिये रवाना हो गये। दो सिपाहियों ने निरापदता के लिये साथ लेकर मुझको धर्मपुरी छोड़ दिया। मैं धर्मपुरी से थोड़ी दूरी पर मानधारा में आया। वहाँ नर्मदा नदी का प्रपात है। वहाँ स्नान करके प्रभु के चिन्तन में बैठ गया।

प्रभु को मैंने स्मरण किया- हे प्रभो! हमसे कौन सा कार्य होगा, जिसके लिये तुमने हमको बलिवेदी से भी बचा लिया? देश समाज और धर्म की अवस्था पर मैं सोचने लगा। मैंने समझ लिया था कि देश सेवा, समाज सेवा, जाति सेवा या धर्म सेवा के लिये योग्यता की आवश्यकता है। याद आ गई थी कि मैं इसलिये नर्मदा के किनारे आया हूँ। योगसिद्ध साधकों के सन्धान में मैं दोनों किनारों पर प्रत्येक आश्रम में जाऊँगा। नदी संगम पर आश्रम में योगी लोग रहते हैं। ये ही इनके साधना के लिये सर्वोत्तम स्थान समझे जाते हैं। प्रभु ने मेरी परीक्षा की है और भी परीक्षा सामने हैं।

मैं दृढ़चित्त होकर नर्मदा के प्रवाह के अनुसार पूर्व दिशा की ओर जाने लगा। रास्ते में बहुत साधुओं का संग मिला। उनके अनुभवों को सुन कर पारमार्थिक जगत् के लिये लाभ भी उठाया। प्राकृतिक दृश्यों से मन-बुद्धि-चित्त निर्मल होने लगे। हिंस्र पशु भी साधुओं को पहचानते हैं ये लोग साधुओं को किसी तरह से हानि नही पहुँचाते हैं। शिकारी लोगों को देखने से ही ये लोग बिगड़ जाते हैं। बन्दूक या बारूद के गन्ध को पाकर ही ये लोग शिकारियों को मारने के लिये संघबद्ध हो जाते हैं। जंगल के निवासी भी बहुत ही सरल, अतिथि-सेवा-परायण और कृतज्ञ होते हैं । इस भरोसे पर मैं नर्मदा नदी के आदि से अन्त तक योगियों के सन्धान के लिये तत्पर हुआ।

18. व्याघ्र, हिंस्रपशु और पक्षियों की करुणा:– नर्मदा के तटों पर योगियों के सन्धान में घूमते हुए मुझे व्याघ, हिंस्र पशु और पक्षियों की करुणा भी प्राप्त हुई थी। दो-तीन घटनाएँ मुझे आज तक याद आती हैं। इन घटनाओं के संक्षिप्त विवरण के बाद नर्मदा भ्रमण के पूरे विवरण प्रस्तुत करूँगा।

गहरे वन के अन्दर जाते हुए एक दिन मार्ग दिखाई नहीं दिया, सायंकाल हो गया। निश्चेष्ट होकर धीरे-धीरे जाने लगा। अन्धेरे में गड्डे में गिर गया। दाहिनी टाँग भंग हो गई। गड्डे में ही पड़ा रहा। मेरी कातर आवाज सुन कर वन के रहने वाले व्याध लोगों ने आकर मुझे ऊपर उठाया। तीन रोज उन्हीं के घर पर ही रहा। उन लोगों ने टाँग पर नानाविध औषध जड़ी-बूटी लगाई। भोजन के लिए फलों का प्रबन्ध किया। यथा शक्ति मेरी सेवा की। आरोग्य होने के बाद मुझे ठीक रास्ते तक पहुँचा दिया।

एक दिन क्षुधार्त्त होकर जंगल के अन्दर पेड़ के नीचे बैठा रहा। दो रोज भोजन नहीं मिला। फलवाले वृक्ष भी नजर नहीं आये। किसी आदमी को भी नहीं देखा। तीसरे रोज भूख के कारण अशक्त होकर पेड़ के नीचे लेटा रहा, क्षुधा-पिपासा के कारण प्राण जाने वाले हो गये। धीरे-धीरे दो भालू मेरे पास पहुँच गये। मैंने जीवन की आशा छोड़ दी। दोनों भालू मेरे शरीर को सूँघने लगे और चले गये। कुछ देर बाद एक भालू मुँह में मधुमक्खियों का छत्ता लेकर मेरे पास छोड़कर चला गया। छत्ता मधु से पूर्ण था। मधु को मैंने भर पेट चाट लिया। शरीर में शक्ति आई और धीरे-धीरे मैं वहाँ से आगे चलने लगा।

एक दिन जंगल के रास्ते में चलता हुआ परिश्रान्त होकर किसी पेड़ के नीचे लेट गया और सो गया। किसी आवाज के कारण नींद टूट गयी। देखा कि एक साँप मेरे सिर के पास फन उठाये फुँफकार कर रहा था, मैं क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आया। तुरन्त एक पक्षी (बाज) झपट करके आ गया और साँप को उठा कर ले गया।

इन तीनों घटनाओं से मुझे मालूम हुआ कि भगवान् की करुणा सब ही जीवों के अन्दर विद्यमान है, किन्तु उसकी करुणा चिन्ता से अतीत है।

19. अमरकंटक में:– अमरकंटक में एक बहुत बड़ा कुण्ड है जिससे नर्मदा निकली है। उस कुण्ड का नाम कोटि-तीर्थ है। अमरकंटक में प्राचीन और नवीन मन्दिरों की संख्या बहुत है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि, भृगु ऋषि और कपिल ऋषि के आश्रम प्रसिद्ध हैं। कबीरदास जी का सामयिक विश्राम-स्थान कबीर

चौतरा है। वहाँ से कपिलधारा और दुग्धधारा नाम के दो जल प्रपात समीप ही हैं। ज्वाला नदी का उद्‌गम नीलगंगा का संगम और चक्रतीर्थ भी समीप हैं। थोड़ी दूर जाने से आचार्य शंकर द्वारा स्थापित ऋण-मुक्तेश्वर मन्दिर और कुकरी मठ मिलते हैं। शोणभद्र नदी का उद्‌गम भी यहाँ से अधिक दूर नहीं है। मैं सब ही स्थानों में योग सिद्ध साधकों के सन्धान में गया। सब ही जगह पुजारी लोगों की ही भीड़-भाड़ देखी।

20. अमरकंटक से नन्दिकेश्वर में:– अमरकंटक से मैं मंडला आ गया था। मंडला में भी पुराने मन्दिर बहुत हैं। नर्मदा के उस पार व्यासाश्रम है। वहाँ जाकर वहाँ के महन्त श्रीमान् कर्मानन्द स्वामी से मिला। उन्होंने मुझको सात रोज हठयोग के बारे में उपदेश दिया था। उनके उपदेश का सारांश यह है:-

''हठयोग के अभ्यास से योगी शीत-ऊष्म, क्षुधा-तृष्णा, निद्रा-आलस्य, जरा और वार्द्धक्य पर विजय-लाभ करते है; अटूट स्वास्थ्य, मानसिक बल और आत्म-संयम की शक्ति प्राप्त होती है। हठयोगी का आहार स्वल्प होता है और आहार छोड़कर भी योगी महीनों रह सकते हैं । तुम हठयोग का स्वाध्याय-अभ्यास करो।''

मैंने उनका उपदेश शिरोधार्य किया और उनसे विभिन्न आसन और मुद्राओं का अभ्यास सीखा। त्राटक, नाड़ी-शुद्धि, नेति क्रिया (नासापान), वस्ति क्रिया, धौति क्रिया और प्राणायामादि का भी अभ्यास किया।

मंडला में रहते हुये मैंने हृदय नगर, मधुपुरा घाट, सीता-रपटन, लुकेश्वर और नन्दिकेश्वर-घाट में जाकर भी योगियों की खोज की थी। हृदय नगर बंजर नदी के किनारे है। यह नदी नर्मदा नदी से मिल गयी है और दो नदियाँ सुरपन और माटेयारी बंजर नदी के साथ मिल गयी हैं। इसलिये इसका नाम त्रिवेणी है। मधुपुरा घाट का दूसरा नाम घोड़ा घाट है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम है। योगिनी गुफा नामक स्थान भी इस स्थान के पास है। यहाँ बहुत साधुओं से भेंट हुई । उनमें कोई योगी पुरुष नहीं मिला। नन्दिकेश्वर घाट से थोड़ी दूर पर हिंगना नदी नर्मदा में मिलती है। योगियों के संधान में यहाँ के सब ही स्थानों में मैं कई

बार गया था, लेकिन केवल भक्त साधु पुरुषों को ही देखा। योगी साधक एक भी नहीं मिला। मंडला से मैं देवगाँव, सिंधरपुर और देवकुंड में भी गया। शृंगी ऋषि का आश्रम सिंधरपुर में था और मोहगाँव में जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। देवकुंड में जलप्रपात देखा। बहुत ऊपर से यहाँ जल गिरता है। देवगाँव के पास नर्मदा में बडनेर नदी और देवकुंड के पास नर्मदा में खरमेर नदी मिलती है। इन सब स्थानों में भी योगी साधक नहीं मिले।

21. नन्दिकेश्वर से मुकुट क्षेत्रः— मंडला से मैं जबलपुर आया। इसका दूसरा नाम जाबालि पत्तन है। यहाँ जाबालि ऋषि का आश्रम था। यहाँ से मैं योगियों की खोज में तिलवारा घाटा, मुकुट क्षेत्र, त्रिशूल घाट, लमेटी घाट, गोपालपुर घाट, भेड़ाघाट, जलेरी घाट और बेल पटार घाट आदि स्थानों में गया था। भेड़ाघाट के पास धुआँधार जल प्रपात है। त्रिशूलघाट में त्रिशूलतीर्थ, लमेटी घाट में नर्मदा में सरस्वती नदी का संगम, भेड़ाघाट में भृगु आश्रम और रामनगरा में मुकुट क्षेत्र को देखा। जलेरी घाट में एक साधु से पता चला कि जबलपुर के आसपास कोई योगी पुरुष नहीं है।

22. मुकुटक्षेत्र से ब्रह्माण्डघाट मेंः— जबलपुर से मैं ब्रह्माण्डघाट आया, नर्मदा के अन्दर द्वीप है और सप्तधारा तीर्थ है। वहाँ से मैं पिठेरा-गदारु, पिपरियाघाट, हरणी-संगम, बुधघाट, ब्रह्मकुंड, सहस्रावर्त्त तीर्थ, सौगन्धिक तीर्थ, सप्तर्षि वन, अंडियाघाट, शांकरी गंगा-संगम, कश्यपाश्रम, शक्कर नदी संगम, जनकेश्वर-तीर्थ, धर्मशाला, दुग्धीनदी-संगम, साई खेड़ा और खाँडे नदी का संगम है । इसका नाम केउधान घाट है। इनके अन्दर लगभग सभी तीर्थों में मैंने भ्रमण किया लेकिन अनुभवी योगी पुरुष दीख नहीं पड़े।

23. ब्रह्माण्डघाट से कालभैरव गुफाः—केउधान घाट से होशंगाबाद आया। वहाँ बहुत मन्दिर हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर तवा नदी का संगम है। इसके आगे सूर्यकुंड है। यहाँ से आगे गौघाट में 16 योगिनियों और दो सिद्ध पुरुषों के स्थान हैं। यह तांत्रिक और वाममार्गियों का प्रधान केन्द्र है। नांदनेर में कालभैरव

और महाकालेश्वर शिव के मन्दिर हैं। सुना गया था कि यहाँ कभी-कभी नरबलि होती है। इसके आगे महर्षि भृगु का भृगुकच्छ आश्रम है। इसके आगे मारू नदी के संगम में पाँडवों की तपोभूमि है। इसका नाम पँडुदीप पड़ा। वहाँ से आगे नर्मदा के दक्षिण तट पर कणकमती नदी का संगम है। यह पुरानी यज्ञ भूमि है। आगे नारदी गंगा का संगम है। यह नारद ऋषि की तपोभूमि थी। इससे आगे वरुणा नदी का संगम है इससे आगे आकाशदीप तीर्थ है। इससे आगे कुब्जा नदी का और आगे अंजनी नदी का संगम है। यहाँ शांडिल्य ऋषि का आश्रम और गौरी तीर्थ है। इससे आगे गोमुखघाट है और हत्याहरण नदी का संगम है। वहाँ से आगे नर्मदा के अन्दर पहाड़ पर भीमकुंड है। इसके आगे इंदाना नदी का और गंजाल नदी का संगम है। आगे गोनी नदी के संगम में जमदग्नि ऋषि की तपोभूमि है। आगे बागदी नदी का संगम है। यह स्थान नर्मदा का नाभिस्थान बोला जाता है। यह कालभैरव की तपोभूमि है। कुछ आगे दांतोनी नदी का संगम है। इससे आगे पुनघाट में गौतम ऋषि की तपोभूमि है। गौतम ऋषि की तपोभूमि के समीप ध र्मपुरी है और मानधारा का जल प्रपात है। इसी के आगे जंगल के अन्दर पूर्वोक्त काल भैरव की गुफा है। वहाँ के योगी और सिद्ध पुरुषों की आशा मैंने छोड़ दी थी।

24. काल भैरव की गुफा से मंडलेश्वरः— मंडलेश्वर जाने का सन्ध ान मुझे किसी साधु से मिल गया था। नर्मदा के अन्दर एक टापू है। महाराज मान्ध ाता ने यहाँ तपस्या की थी। इसी से इस टापू का नाम मान्धाता पड़ गया था। इसके एक ओर नर्मदा से निकली हुई काबेरी बहती है। काबेरी आगे जाकर नर्मदा में ही मिल गयी है। इस टापू में बहुत से मंदिर हैं। इस स्थान का नाम ओंकारेश्वर भी है । कोटि तीर्थ और चक्र तीर्थ भी समीप हैं। नौका से पार होके यहाँ आना होता है। नर्मदा पार करके ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी होकर अमलेश्वर आना पड़ता है। योगियों के सन्धान में मैं इन सब स्थानों में आया-गया। लेकिन सफल नहीं हुआ। काबेरी धारा के आरम्भ में पशुपति नाथ तीर्थ है और अन्त में काबेरी नर्मदा के संगम में कुबेर की तपोभूमि है। वहाँ से थोड़ी दूर पर च्यवन ऋषि का आश्रम

है। कुबेर की तपोभूमि से आगे सप्त-मातृका तीर्थ है। वाराही, चामुण्डा, ब्रह्माणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी और माहेश्वरी इन सप्त मातृकाओं के पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। इस सब ही मन्दिरों में तांत्रिक साधुओं से वार्तालाप हुआ था। इनकी पंच-मकार की साधन प्रणाली बहुत ही भयावह और अश्लील मालूम पड़ी। वहाँ 64 योगिनियों और 52 भैरवों के विशाल मन्दिर हैं। मन्दिरों में विशाल-विशाल मूर्तियाँ भी हैं। वहाँ से मैं नर्मदा के सर्वश्रेष्ठ जलप्रपात के पास आ गया था। वहाँ से कोटेश्वर और नीलगढ़ तीर्थ समीप हैं। वहाँ से आगे जाते हुये मैंने नागेश्वर कुण्ड, भस्म टोला, विमलेश्वर, गोमुखघाट और गंगेश्वर तीर्थों में योगियों का सन्धान किया था। वहाँ से आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम है और नर्मदा के साथ चोरल नदी का संगम है। वहाँ से मर्दाना और पिप्लेश्वर होता हुआ मैं मण्डलेश्वर तीर्थ में आया। मण्डलेश्वर में कई एक योगी और वैष्णव साधकों से भेंट हुई। मण्डलेश्वर के प्रमुख योगी आनन्दी बाबा ने मुझे राजयोग सीखने के लिये परामर्श किया था। उन्होंने मुझे धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धि के लिये अति आवश्यक सत्य आदि के सम्बन्ध में उपदेश दिया था और आगे अग्रसर होने के लिये कहा था। मैं मण्डलेश्वर में कई एक दिन रहकर माहिष्मती पुरी की ओर चल दिया।

25. मण्डलेश्वर से धर्मराय तीर्थ में:-

माहिष्मती पुरी का आधुनिक नाम महेश्वर है। महेश्वर नगर से थोड़ी दूर माहेश्वरी नदी नर्मदा में मिलती है। ज्ञानवादी शंकराचार्य से कर्मवादी मण्डन मिश्र का यहाँ ही शास्त्रार्थ हुआ था। प्राचीन काल में चन्द्रवंशीय राजा महिष्मान् ने इस नगर को बसाया था। माहेश्वरी संगम में ज्वालेश्वर शिव का मन्दिर है। इससे आगे सहस्रध ारा नामक स्थान है। वहाँ मेरी मुक्तेश्वर नामक साधु बाबा से भेंट हुयी थी। उन्हीं के साथ मैं बहुत दूर तक घूमता-घामता पर्वत के ऊपर मांडवगढ़ में पहुँचा। साध ु मुक्तेश्वर बाबा के साथ ही पर्वत और वनों के अन्दर जाता हुआ पगारा, धर्मपुरी और खलघाट में गया। कुब्जा नदी का संगम, दधीचि आश्रम, साटक नदी का संगम, कारम और बुटी नदी के संगम, कसरावद, बोधपाड़ा, चिखल्दा,

राजघाट, कोटेश्वर, मेघनाद नाम के स्थान, गोयी नदी का संगम और धर्मराय तीर्थ तक दोनों ने भ्रमण किया था। धर्मराय तीर्थ के पास हिरनफाल तीर्थ के मार्ग की निम्न घटना याद है:-

जंगल के अन्दर दोपहर के समय पेड़ के नीचे दोनों विश्राम कर रहे थे। अचानक वन्य वराहों का विशाल झुण्ड भयंकर गर्जन के साथ हमारे चारों तरफ से पहुँच गया। मुक्तेश्वर बाबा डर के मारे चिल्लाते हुये पेड़ पर चढ गये और मुझको भी अपने पीछे चढ़ने के लिये कहा। शीघ्र पेड़ पर चढ़ना मुझे आता नहीं था। मैं बिलकुल निरुपाय हो गया था। जंगलों के रहने वाले लोग दूर से मेरे लिये चिल्लाने लगे। साधु बाबा पेड़ पर चढ़ गये, लेकिन उनकी बहुत ही मजबूत लाठी पेड़ के नीचे दिखाई दी, मैं उस लाठी को हाथों में लिये हुये साहस के साथ बचने की आशा को छोड़कर ही लाठी खड़ी करके वराहों के सम्मुख अग्रसर हो गया। बार-बार मैं लाठी से मिट्टी पर आघात कर के खड़ा रहा। वराहों का झुण्ड चुपचाप क्षण भर खड़ा रहकर विकृत और भयंकर आवाज के साथ भागकर चला गया। जंगल के रहने वाले स्त्री-पुरुष वहाँ पेड़ के नीचे जमा होने लगे। सब कोई पूछने लगे कि ''आप कौन-सा मंत्र जानते हैं, जिसके कारण वन के हिंस्र पशु भी डर के मारे भाग जाते हैं?'' साधु बाबा धीरे-धीरे पेड़ के ऊपर से नीचे उतर आये और सबसे कहने लगे- ''यह साधु बहुत ही गुणी है।'' इस बात को सुनकर जंगल के सौ-सौ स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भविष्यत् का हाल जानने के लिये, दवाई के लिये और विभिन्न प्रार्थना-पूर्ति के लिये मेरा घेराव करते रहे। मैं अति सबेरे ही किसी तरह यहाँ से भागकर अकेला ही चलने लगा। बहुत देर बाद मैंने देखा कि मुक्तेश्वर बाबा भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ कर आ रहे हैं। हम दोनों फिर एक साथ मिलित हो गये थे।

26. धर्मराय तीर्थ से चाणोद में:– धर्मराय तीर्थ के अति समीप हिरणफाल का जंगल है। जंगल के अन्दर से नर्मदा का प्रवाह है। मैंने और मुक्तेश्वर बाबा ने जंगल के अन्दर प्रवेश किया, और पैदल चलते हुये असुरों की तपोभूमि हिरणफाल में पहुँच गये। वहाँ एक और साधु तपस्वी को देखा। साध

ु ने हम लोगों से कुछ भी बातचीत नहीं की। वे मौनी थे। उन्होंने उस रोज रहने के लिये इशारा कर दिया। खाने के लिये फलवान् वृक्ष और रात बिताने के लिये और भगवान् चिन्तन के लिये एकान्त वृक्ष तल दिखा दिये। हम दोनों ने रात को फल खा लिये थे। आधी रात को उस तपस्वी ने अति जोर से लगातार शब्द करना आरम्भ कर दिया। वहाँ के रहने वाले चार आदमियों ने आकर हम दोनों से कह दिया कि ये मेंढ़क बाबा पुकार रहे हैं, अब पानी बरसने वाला है और शेर भी पुकारने वाले हैं। आप लोग डरना नहीं। बोलकर वे लोग चले गये । थोड़ी देर के बाद प्रबल पानी बरसने लगा, चारों तरफ शेर पुकारने लगे और पानी जब तक बरसता रहा तपस्वी भी पुकारते रहे। पानी जब बन्द हो गया तपस्वी भी मौन हो गये और शेर भी चुप हो गये। दूसरे रोज सबेरे तपस्वी को प्रणाम करके हम दोनों चल दिये थे। वहाँ से हम लोग शूलपाणि तीर्थ में आये थे। शूलपाणि से राजघाट आये। यहाँ से वन और पहाड़ों के कठिन मार्ग पकड़ के नर्मदा के किनारे-किनारे जाने लगे। नजदीक भृगुतुंग पर्वत और मार्कण्डेय गुफा है। थोड़ी दूर बाद नर्मदा के किनारे रणछोड़ जी का प्राचीन जीर्ण मन्दिर है। वहाँ से कपिल तीर्थ, मोक्षगंगा का नर्मदा से संगम, बड़गाँव, पिपरिया, मार्कण्डेय आश्रम, गरुड़ेश्वर, बाल्मीकि आश्रम, वनखोड़ा घाट, इतनी नदी का संगम, मोखड़ी, भोगकुल्या संगम, चक्रतीर्थ, भीमकुल्या संगम और गमोण तीर्थ आ गये थे। यहाँ से एक-एक स्थान पर दो-तीन बार भी गये थे और भिन्न-भिन्न स्थानों में आया-जाया करते थे। यहाँ से मुक्तेश्वर बाबा अलग होकर हमको छोड़कर चले गये। शूलपाणि का वन वहाँ पर समाप्त हो गया। सब ही से मैंने चाणोद जाने के लिये रास्ता पूछा था। चाणोद, कर्णाली, सीनोर, व्यासाश्रम, प्रभृति स्थानों के प्रति मेरा आकर्षण था। हमारे गुरु परमहंस सच्चिदानंद ने काशी में मेरे विदाई-कालीन आशीर्वाद के अन्दर चाणोद, कर्णाली, सीनोर और व्यासाश्रम में योगसिद्ध महापुरुषों के सन्धानार्थ जाने के लिये उपदेश दिया था। मैं पूछ-ताछ करके चाणोद पहुँच गया। मेरी अवस्था उस समय 23 या 24 वर्ष की थी।

27. चाणोद में संन्यास ग्रहणः— चाणोद एक नामी धर्मक्षेत्र नर्मदा

के किनारे है। यहाँ सप्ततीर्थ विद्यमान हैं। सप्ततीर्थ ये हैं- चण्डादित्य, चण्डिका देवी, चक्रतीर्थ, कपिलेश्वर, ऋणमुक्तेश्वर, पिंगलेश्वर और नंदाह्लद, हर एक तीर्थ में साधु, योगी, साधक और संन्यासी देखे गये। हर एक पूर्णिमा और विशेष पुण्य-तिथि में हर एक तीर्थ में मेला लगता है। मैं योगी, मुक्त पुरुष और साध कों का सन्धान करने लगा था। चाणोद में एक वेदान्ती साधु श्रीमत् स्वामी परमानन्द परमहंस से वेदान्त सार, वेदान्त परिभाषा, वेदान्त चिन्तामणि पढ़ने लगा था। उन्होंने कहा ब्रह्म, जीव और जगत् के बारे में पूर्ण निश्चय का अनुभव आ जाने के बाद ही मुक्ति की पिपासा आ जायेगी। तब तक वेदान्त के वास्तव रूप की आलोचना होनी चाहिये। उनसे नव्य वेदान्त के बहुत ग्रन्थ अध्ययन किये। उस समय मुझे भिक्षान्न से या स्वयं रन्धन कर के देह-रक्षा करनी पड़ती थी। दोनों कार्यों में भी समय नष्ट हो जाता था। तब तक शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी ही मेरा नाम था।

परमहंस परमानन्द ने मेरी स्थिति को सोच समझ करके ही मुझको संन्यासाश्रम ग्रहण करने के लिये प्रेरणा दी थी, क्योंकि संन्यासी बनने से खाने के लिये मुझे अपने हाथ से रसोई पकानी नहीं पड़ेगी। हमने संन्यास लेने के लिये ही विचार पक्का कर लिया। संन्यासाश्रम में प्रवेश करना ही उचित समझा था। संन्यास देने के लिये योगदीक्षित संन्यासी का प्रयोजन था। किसी के मतानुसार मेरे संन्यास लेने के लिये महाराष्ट्री साधु चाहिये और किसी के मतानुसार गुजराती चाहिये। ठीक इसी समय चाणोद के समीप जंगल के अन्दर पूर्णानन्द नाम के संन्यासी और शिव चैतन्य नाम के ब्रह्मचारी श्रृंगेरी मठ से आते हुये द्वारिका मठ को जाने वाले थे। बहुत विचार के पश्चात् स्वामी पूर्णानन्द ने मुझे संन्यासाश्रम में आनुष्ठानिक रूप से दीक्षित कर दिया। तब से मेरा नाम हो गया ''स्वामी दयानन्द सरस्वती''। दोनों साधु अपने-अपने स्थान को चले गये थे। मैं वहाँ से व्यासाश्रम में आकर योगविद्या सीखने लगा।

योगविद्या की शिक्षा

1. व्यासाश्रम में योग शिक्षाः— शुकेश्वर तीर्थ नर्मदा के दक्षिण तट पर है और उत्तर तट पर व्यास तीर्थ। यहाँ व्यास जी के नाम पर व्यासाश्रम है। नर्मदा की एक धारा आश्रम के उत्तर की ओर भी बह रही है इसलिए यह आश्रम द्वीप में परिणत हो गया है। इसके लिये अगल-बगल चारों तरफ झंझर, ओरी कोहिबभू, अनसूया आदि तीर्थ हैं। चाणोद से अनसूया तक नौका से आना भी सम्भव है। मैं सब ही तीर्थों में योगियों के सन्धान में घूमा था। निराश होकर मैं व्यास तीर्थ में पहुँच गया। वहाँ पहुँचने के साथ ही एक साधु वहाँ आकर ''तुम दयानन्द सरस्वती हो'' ऐसा बोलकर मुझ को व्यासाश्रम में ले गये।

मैं चकित हो गया। मैं समझ नहीं सका कि कैसे इनको नाम मालूम हो गया। उन्होंने रहने के लिये मुझे एक कुटिया दे दी और खाने के लिए आश्रम के फलवान् वृक्ष दिखा दिये। वहाँ एक अति वृद्ध साधु को दिखाकर उन्होंने कहा -''इनकी सेवा का भार तुम्हारे ऊपर रहा। ये तुम्हें योग विद्या की शिक्षा देंगे और मैं बीच-बीच में तुम्हारी विद्या की परीक्षा लूँगा। मन को शान्त रखो।'' साधु बाबा का नाम था स्वामी योगानन्द। इनके साथ रहता हुआ मैं योगविद्या सीखने लगा।

दिनचर्या- उन्होंने मेरी दिनचर्या का कार्यक्रम इस प्रकार बनवा दियाः-

1. रात्रि के तृतीय प्रहर में शय्या से उठकर सूर्योदय तक धारणा और ध्यान में बैठे रहना।
2. सवेरे नित्यकर्म और नैमित्तिक कर्म के बाद योगशास्त्रों का स्वाध्याय करना और अल्प समय के लिए शंका- समाधान करना।
3. दोपहर में आहारादि के बाद विश्रामान्त में क्रिया योग का अभ्यास करना।
4. अपराह्ण को वन-भ्रमण और वृक्ष-मूल में बैठकर भगवच्चिन्तन।
5. सायं को नित्य और नैमित्तिक समापनान्त में धारणा, ध्यान और क्रिया योग के अनुशीलन।
6. दोपहर का आहार भिक्षान्न से और सायं का आहार फलों के द्वारा

रुग्णावस्था में पूर्ण विश्राम ग्रहण करना।
7. सर्वदा वाक् संयम, सम्पूर्ण बृहस्पतिवार मौन धारण और एकान्तवास।
8. किसी अशुभ इच्छा या कुचिन्ता के आने पर गुरु के पास बोल देना और हर रोज गुरु के निर्देशानुसार आसन-प्राणायाम-मुद्रादि का अभ्यास करना।

2. क्षुधा पर विजय लाभः— दैनन्दिन कार्यक्रम में अभ्यस्त होने के बाद गुरुजी ने मुझे क्षुधा पर विजय लाभ के लिए उपदेश दिया।

क्षुधा मनुष्यों का परम मित्र है, लेकिन क्षुधा को संयत नहीं रखने से वह शत्रु बन जाती है। योगी या योग के शिक्षार्थी को तो इस पर विजय लाभ करना ही चाहिए। क्षुधा एक तरह की इच्छा है इसके द्वारा शरीर के क्षय की पूर्त्यर्थ खाद्य की जरूरत समझी जाती है। इस क्षयपूर्ति के बिना देह यातना भोगता है और शरीर से प्राण निकल जाता है। जिस वस्तु से शरीर का पोषण असम्भव हो, उसके भी ग्रहण से क्षुधा की निवृत्ति देखी जाती है, लेकिन देखा जाता है कि बहुत बीमार आदमी बिना भोजन के मासाधिक काल तक रह जाते हैं। बिना भोजन के बहुत से उन्मादी सुदीर्घ काल तक रह जाते हैं और बहुत शोक-ग्रस्त व्यक्तियों को क्षुधा लगती भी नहीं। खाद्यों से हम लोगों को जो प्राण वायु मिलती है और जिसके द्वारा हम लोग जीवित रहते हैं। वह प्राण वायु मिट्टी, पानी, आग, हवा और आसमान से यथेष्ट मिल सकता है। योगी प्राणायाम के यथावत् साधन से भी शरीर की क्षय-हानि को पूर्ण कर सकते हैं। जितने परिमाण के खाद्य को आदमी ग्रहण करते हैं, शक्ति के अभाव के कारण पाकस्थली उससे सम्पूर्ण प्राण-शक्ति को लिये बिना छोड़ देती है, लेकिन प्राणायाम की शक्ति-वृद्धि होने पर योगी पञ्च भूतों से भी अपनी जरुरतों के अनुसार प्राण-वायु लेकर जीवित रह सकते हैं।

दैनन्दिन श्रमादि के द्वारा देह के उपादानों का क्षय होता है। आहार आदि के द्वारा उसकी पूर्ति हो जाती है। श्रम अल्प होने से आदमी अल्प भोजी होता है। श्रम अधिक होने से अधिक भोजी होता है। श्रमादि की स्वल्पता से शरीर का स्वल्पक्षय और स्वल्पाहार का प्रयोजन होता है। अन्तःकरण सात्विक आनन्द से,

चिर तृप्ति से, मन में सन्तोष रहने से और शरीर निश्चल रहने से देह का क्षय नहीं होता है। सुदीर्घ चिन्ता के द्वारा भी क्षुधा की निवृत्ति होती है। दुश्चिन्ता से शरीर का क्षय ज्यादा होता है और प्रगाढ आनन्द पूर्ण चिन्ता के द्वारा शरीर की वृद्धि ही होती है। आनन्द स्वरूप परमात्मा में अपने को नियमित रूप से उपासना के अन्दर निमज्जित रखने से शरीर और मन अपक्षय से बचकर सदा प्रफुल्लित कमल के रूप में रहते हैं।

यह उपदेश लेने के बाद मैंने अच्छे रूप से इस पर सोचा और कोई एक महीनों के बाद इसको क्रियात्मक रूप से ग्रहण करने के लिए ही इच्छा की थी। गुरु जी ने मुझको रोक दिया। तीन महीनों के बाद शीत ऋतु आने पर गुरु जी ने इसके लिए नियम बनवा दियेः-

1. दिन के अन्दर प्रचुर परिमाण में जल पीना।
2. दिन में पूर्णाहार और रात को स्वल्पाहार का नियम
3. पीछे महीने में दो रोज उपवास रखने का नियम।
4. पीछे सप्ताह में एक रोज उपवास का नियम।
5. पीछे केवल फलाहार या दुग्ध पान का नियम।
6. पीछे क्रमानुसार सप्ताह में एक रोज, दो रोज, तीन रोज केवल ज ल पीकर रहना।
7. पीछे सप्ताह भर ही केवल जल पीकर और वायु सेवन कर प्रबल ध्यान और प्राणायाम के साथ आसन में बैठे रहना।
8. अति अल्प आँगन के अन्दर भ्रमण करने के नियम बनाये गये थे।

मैं उन नियमों पर बहुत दिन प्रतिष्ठित रहा था। आज भी यह क्रिया मेरे आयत्व (दिनचर्या) में ही है। धारणा, ध्यान और समाधि का इन्हीं नियमों के द्वारा मुझे अभ्यास हो गया था। क्षुधा मुझको क्लेश नहीं देती है।

3. दुर्घटनाः— बाद में व्यासाश्रम में जितने योग-शिक्षार्थी आते थे, गुरुजी उनकी शिक्षा का भार मेरे ऊपर छोड़ देते थे। एक घटना मुझे आज तक भी याद आती है।

मध्यभारत के किसी प्रसिद्ध राजा के पुत्र ने पूरे प्रबन्ध के साथ नर्मदा के किनारे सपत्नीक शिकार खेलने के लिए जंगल में प्रवेश किया। दो रोज के बाद किसी कारणवश राजपुत्र और राजवधू के अन्दर मतद्वैध्य अभिमान और रोष पैदा हो गया था। राजा ने अपने सैन्य और भृत्यों में से बहुत थोड़े रख कर शेष सभी को राजधानी जाने के लिए आदेश दे दिया था और थोड़े सैन्य, भृत्य और दासी वधूरानी के साथ कई दिन तक वन के अन्दर ही रहे। बीच-बीच में राजपुत्र और वधूरानी दोनों व्यासाश्रम में उपदेश लेने लगे। एक दिन दोनों ही आपस में झगड़ा करके मध्य रात्रि में मीमांसा के लिए व्यासाश्रम में पहुँच गये थे। गुरु जी ने मेरे ऊपर मीमांसा का भार छोड़ दिया था। मैंने वधूरानी के अन्दर अपराध पाया और राजपुत्र से क्षमा माँगने के लिये उनको विवश किया। इस लिये वधूरानी मेरे प्रति विद्वेष के भाव रखने लगी।

तीन-चार रोज के बाद मेरे चरित्र पर कलंक आरोपण के लिये राजवधू मध्यरात्रि को पाँच दासियों के साथ कई हजार रुपये के जेवरों से भरी हुई पेटिका लेकर मेरी कुटिया में पहुँच गयी और बहुत ही विनीत भाव से उस पेटिका के साथ करीब 17-18 वर्ष की परम सुन्दरी दासी को कई एक रोज आश्रम में रखने के लिए छोड़ कर तुरन्त चली गयी। दासी रोती हुई कहने लगी- ''वधूरानी ने किसी अपराध के कारण मुझे राजपुत्र के तम्बू से निकाल दिया है। इस पेटिका के अन्दर करीब साठ हजार रुपये का जेवर है। आपके चरणों में इस पेटिका के साथ मैं अपने को समर्पण करती हूँ। आप मुझको लेकर किसी दूसरे स्थान को चलिये। एक मूहुर्त भी देर न करें।'' ऐसे बोलती हुई आँखों से आँसू बहाने लगी।

मैंने प्रभु का स्मरण किया और कहा- ''प्रभो! यह मेरे लिए तुमने कौन सी परीक्षा रख दी है? तुम ही मुझे बचाओ।'' मेरी आँखों से भी आँसू बहने लगे। झट गुरुजी को जोर-जोर से चिल्लाकर पुकारने लगा।

गुरुजी भी दूसरी कुटिया से चिल्लाने लगे ''मा भेतव्यं मा भेतव्यम् एषोऽहमागतः'' डरो मत, डरो मत, मैं आ रहा हूँ। गुरुजी आ गये। जेवर की

पेटिका वहाँ ही पड़ी हुयी है। लेकिन दासी वहाँ नहीं है। दासी वहाँ से अचानक भाग गई। मैं गुरुजी को सब वृत्तान्त बताने लगा।

तुरन्त चार बन्दूकधारी पलटन के साथ राजपुत्र भी वहाँ पहुँच गये और बोलने लगे- हम इन महात्मा दयानन्द संन्यासी को वधूरानी के कलंक-चक्र से बचाने के लिए आए हैं।

मैंने कहा- हाँ राजकुमार! दयालु प्रभु ने मुझे बचा लिया। यह है दासी की पेटिका।

राजपुत्र ने कहा- हाँ महाराज! यह पेटिका मेरी ही है। राजवधू के परामर्श से दासी चोरी से ले आई थी। आप इसको स्वीकार कीजिए।

मैंने इस पेटिका को स्वीकार करके गुरुजी के चरणों में भेंट कर व्यासाश्रम के कार्य के लिए दे दिया। इस घटना के अन्दर प्रभु की अपार लीला का भी सन्दर्शन किया।

4. श्वास और दीर्घजीवनः– गुरुजी ने अनाहार के बारे में कहा-

नाश्नन्ति दर्दुराः शीते फणिनः पवनाशनाः।
कूर्माश्चैवांगगोप्तारो, दृष्टान्ता योगिनो मताः॥

अर्थात् योगी लोग मानते हैं- शीत काल में मेढ़क खाते नहीं, साँप वायु का भक्षण करते हैं और कछुए अपने अंग को छिपा के रखते हैं। योगी लोग इन सब जीवों के अनुकरण से समाहित हो सकते हैं। उन्होंने आविष्कार किया था कि जिन प्राणियों की श्वास-संख्या जितनी कम है और अल्पायत (थोड़ी लम्बी) है, वे प्राणी उतने ज्यादा समय तक जीवित रहते हैं और जिन प्राणियों की श्वास संख्या जितनी ज्यादा है, वे प्राणी उतने अल्प समय तक जीवित रहते हैं। ये लोग इस सिद्धांत पर पहुँच गये थे कि मनुष्य यदि अपने श्वास को कम कर सके तो अपने निर्दिष्ट जीवन काल से भी अधिक काल तक जीवित रह सकते हैं।

5. आसन-शिक्षाः– गुरुजी ने कहा- चित्त स्थिर करने के लिये योग के भिन्न-भिन्न अंगों की साधना करना। शरीर को स्थिर करने में आसन का प्रयोजन है। आसन सिद्ध न होने से धारणा, ध्यान या समाधि कुछ भी सम्भव

नहीं है। शरीर स्थिर होने से चित्त स्थिर होता है। चित्त से शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। चित्त में जिस भाव का उदय होता है, शरीर में वही भाव प्रकट होता है। विभिन्न आसनों की सिद्धि से चित्त के भावों का भी परिवर्तन होता है। जिन आसनों के अभ्यास से चित्त में उच्च भावों का उदय होता है, वे आसन ही योग सम्बन्ध आसन हैं। योग के अनुकूल आसनों के अभ्यास से चित्त में नीच भावनायें प्रकट नहीं होती, अपितु शुद्ध भाव प्रकट होते हैं। शरीर की स्थिरता से चित्त की स्थिरता आती है। चित्त के स्थिर होने से प्राण वायु भी स्थिर हो जाता है। आसन दो प्रकार के हैं:–

प्रथमः- किसी वस्तु से निर्मित आसन। जैसे कुशासन, मृगचर्मासन, व्याघ्रचर्मासन, लोमासन या कार्पास वस्त्रासन। विना आसन के मिट्‌टी पर बैठ कर किसी प्रकार की साधना नहीं करनी चाहिये। मिट्‌टी पर सो जाने से या बैठने से पृथ्वी हमारी शक्ति को खींच लेती है। किसी वस्तु से निर्मित आसन पर बैठने से पार्थिव आकर्षण से हमको कोई हानि नहीं पहुँचती।

द्वितीयः- देह को किसी कौशल से विन्यस्त रखना। दैहिक आसन बहुत प्रकार के हैं। जिस आसन में अभ्यस्त होने से जिस का शरीर निश्चल और सुखकर मालूम होता है, वह आसन ही उसके लिये हितकर है। अधिकांश साधकों के लिये मुक्त-पद्‌मासन ही बहुत अच्छा है। जितनी कम आयु से आसन का अभ्यास होता है, उतना ही अच्छा है। अधिक आयु में आसन का अभ्यास करना कठिन हो जाता है। पैर की हड्‌डी मोटी हो जाने से पैर को मोड़ने में कष्ट होता है।

सभी आसनों में मेरुदण्ड को सीधा रखना होता है। मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी है। उस नाड़ी पथ से शक्ति ऊपर उठती है। मेरुदण्ड के निम्नतम स्थान से शक्ति ऊपर उठकर मस्तक के अन्दर सहस्रधार तक पहुँच जाती है। साधकों की उन्नति के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है। जितनी विषयाशक्ति कम हो जायेगी और वैराग्य की वृद्धि होगी वह शक्ति उतनी ही ऊपर की तरफ जायेगी। साधना की उन्नति इस पर ही निर्भर करती है। मेरुदण्ड सीधा रखने

से सुषुम्ना सीधी और टेढा रखने से टेढ़ी होती है। सुषुम्ना सीधी रहने से शक्ति सीधी यातायात कर सकती है। जिसकी सुषुम्ना टेढ़ी हो, वह उच्च भावना या उच्च धारणा नहीं कर सकता है। समाधि लाभ तो असम्भव ही है।

6. प्राणायाम शिक्षाः— गुरुजी ने उपदेश दिया- आसन का अभ्यास होने पर शीतोष्ण, क्षुधा- तृष्णा, सुख-दुःखादि द्वन्द्व चित्त को प्रभावित और पराभूत नहीं कर सकते हैं। आसन जय होने से प्राणायाम सम्भव होता है। प्राणायाम-शिक्षा के साथ-साथ 'नाड़ीशुद्धि' भी करनी चाहिये।

प्राणायाम के तीन अंग हैं- पूरक, रेचक और कुम्भक। नासारन्ध्र से श्वास वायु का ग्रहण 'पूरक' है । नासारन्ध्र से उस वायु को छोड़ देने का नाम 'रेचक' है और पूरक के बाद रेचक न करके निःश्वास को बन्द रखने का नाम 'कुम्भक' है। कुम्भक दो प्रकार के होते हैं- पूरकान्तक कुम्भक और रेचकान्तक कुम्भक। कुम्भक का दूसरा नाम गति-विच्छेद है।

बाहर श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद करना होता है। अन्दर भी चित्त की गति का विच्छेद करना होता है। चित्त सर्वदा चञ्चल है। चित्त की चञ्चलता ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर हो जाने से प्राण शक्ति का गति-विच्छेद होता है, और चित्त की चञ्चलता दूर होने से चित्त का गति-विच्छेद होता है। चित्त की स्थिरता ही चित्त का गतिविच्छेद है, इसलिये कुम्भक के समय भीतर भी चित्त को स्थिर रखना चाहिये । प्राणशक्ति ही चित्त को चञ्चल करती है, इसलिए चित्त को स्थिर करना और प्राणशक्ति को स्थिर करना एक ही बात है। बाहर कुम्भक के द्वारा प्राणशक्ति को स्थिर करना और अन्दर चित्त को स्थिर करके प्राणशक्ति को स्थिर करना, प्राणशक्ति को दोनों ओर से स्थिर करना है, इसलिये प्रथमतः आसन का अभ्यास करके शरीर को स्थिर करना और इसके बाद ध्यान का अभ्यास करके मन को स्थिर करना।

शरीर और मन को स्थिर करने से ही कुम्भक अभ्यास ठीक होता है। मन और शरीर को स्थिर न करके कुम्भक का अभ्यास करने से अनिष्ट होता है। इसलिये जो लोग अत्यन्त संसारी और विषयसेवी हैं, उनका कुम्भक करना अपने

को खतरे में डालना है। मन के चाञ्चल्य के साथ कभी कुम्भक नहीं करना चाहिये। जो लोग त्रिताप से प्राप्त वैराग्य के साथ और विषयासक्ति छोड़कर चित्त को स्थिर करके कुम्भक का अभ्यास करते हैं, उनको बहुत ही सुफल मिलता है। प्रथम प्राणायाम-शिक्षार्थी को आसन-अभ्यास के साथ नाड़ी शुद्धि भी करनी चाहिये।

नाड़ीशुद्धि किसे कहते हैं? हमारे मेरुदण्ड के अन्दर तीन नाड़ी हैं- इडा, पिंगला और सुषुम्ना। ये नाड़ी आध्यात्मिक हैं, आधिभौतिक नहीं। आध्यात्मिक विषय सूक्ष्मतत्व है, स्थूलतत्व नहीं है। बहिरिन्द्रिय के द्वारा स्थूलतत्व का ज्ञान होता है और अन्तरिन्द्रिय के द्वारा सूक्ष्मतत्व का ज्ञान होता है।

7. नाड़ी शुद्धिः— प्राणायाम से पहले नाड़ीशुद्धि करने का विधान है। आसन में नियमित रूप से बैठकर प्रथमतः दक्षिण नासारन्ध्र को बन्द करके वाम नासारन्ध्र के द्वारा यथाशक्ति वायु को खींचना। जितना ज्यादा वायु खींचा जाये उतना ही अच्छा है। जबरदस्ती वायु खींचने से बीमारी हो सकती है। वामनासारन्ध से यथाशक्ति वायु खींचने के बाद ही दक्षिण नासारन्ध्र द्वारा यथाशक्ति रेचक करना। पूरक करने के बाद ही तुरन्त रेचक करना, बीच में कुम्भक नहीं करना। रेचक समाप्त होने के साथ-साथ ही दक्षिणनासारन्ध्र के द्वारा पूरक करना और वामनासारन्ध्र से रेचक करना। इस प्रकार हर रोज आसानी से जब तक सम्भव हो करना। पूरक और रेचक के समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और धीरे-धीरे छोड़ना। नासारन्ध्र के सम्मुख रुई धरने से रुई न सञ्चालित हो। इस प्रकार धीरे-धीरे वायु को खींचना और छोड़ना। वायु को झट अचानक नहीं खींचना या नहीं छोड़ना। खींचने के समय और छोड़ने के समय समान ताल रखनी चाहिए। इस प्रकार की नाड़ी-शुद्धि के समय दूसरी कुछ चिन्ता नहीं लानी चाहिये। इसी क्रिया में ही मन लगाना चाहिये। श्वास-प्रश्वास में ही मन को निबद्ध रखना चाहिये।

बहुत दिन तक नाड़ी-शुद्धि का अभ्यास करने से आसन जय होता है। शरीर लघु होता है। तामसिक भाव हट जाता है। मन में आनन्द आता है। उच्च

विषय के चिन्तन करने की और धारण करने की शक्ति आती है और दूसरे बहुत प्रकार के उपकार होते हैं। खास करके इससे फेफड़े में बल आने लगता है और फेफड़े प्राणायाम करने के लायक बन जाते हैं। नाड़ी-शुद्धि करने के समय निम्न विषयों के प्रति ध्यान रखना चाहिये:-

1. ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना।
2. सात्त्विक और परिमित आहार करना।
3. निर्जन घर में रहकर अभ्यास करना।
4. कसे कपड़े नहीं पहनना।
5. घर का हवादार व साफ सुथरा होना।
5. यथारीति आसन लगाके बैठना।
7. हवा को यथाशक्ति धीरे-धीरे खींचना व छोड़ना।
8. श्वास-प्रश्वास पर मन को एकाग्र करना।
9. मन में बाहर की चिन्ता को नहीं आने देना।
10. पेट के अन्दर मल व दूषित वायु नहीं रहने देना।

असंयमी, अत्यन्त इन्द्रियभोगी व ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति नाड़ी-शुद्धि क्रिया करने से अति कठिन रोगों से आक्रान्त होंगे। कुम्भक अभ्यास से पहिले आसन स्थिर, मन स्थिर और नाड़ी शुद्धि होने से बहुत अच्छा होता है, क्योंकि आसन-जय, चित्तस्थिरता और प्राणायाम के अन्दर गहरा सम्बन्ध है।

प्राणशक्ति को विश्राम देना भी प्राणायाम है। हमारे अंग-प्रत्यंगों के सदैव कर्मों में लगे रहने के कारण इनको विश्राम न देने से हमें कष्ट होता है। इनको विश्राम देने से हमें सुख होता है। शरीर चंचल रहने से चित्त चंचल होता है। शरीर स्थिर होने से चित्त भी स्थिर होता है। प्राण चंचल रहने से और स्थिर रहने से चित्त भी चंचल और शान्त होता है। प्राण और शरीर के साथ चित्त का निकट सम्बन्ध है। शरीर और चित्त को स्थिर करने से प्राण स्वयं स्थिर हो जाता है। आसन और चित्त सम्यक् स्थिर हो जाने से प्राण की गति का विच्छेद अर्थात् विराम होता है। जो श्वास-प्रश्वास विरामहीन रूप से चला करता है, उसके अन्दर

विराम और विश्राम आ जायेगा। साधारण मनुष्य दिन-रात श्वास-प्रश्वास लेकर रहते हैं, लेकिन साधक दिन रात कुम्भक करके भी रहते हैं। प्राण के विराम होने से कुम्भक होता है। कुम्भक होने से चित्त स्थिर होता है और चित्त स्थिर होने से भी कुम्भक होता है। चित्त को स्थिर करने की साधना आभ्यान्तर साधना है। चित्त को स्थिर न करके जो केवल नाक टीप के (रोक के) ही कुम्भक करता है उसके हृतपिण्ड, फेफड़े, पाकस्थली आदि यन्त्र कठिन रोगों से आक्रान्त हो जाते है।

8. त्रिदेव तत्त्वः— **वात (वायु) पित्त (अग्नि) और कफ (श्लेष्मा या वरुण) ये तीन देवता शरीर के अन्दर रहते हैं। प्राणायाम से सब देवता तुष्ट होते हैं।**

9. वायुतत्त्वः— **प्राणशक्ति को संयत करना भी प्राणायाम है। शक्ति का नाम ही प्राण है। प्राण पाँच अंशों में विभक्त होकर शरीर को चलाता है। पञ्च प्राणों के रहने के पाँच स्थान हैं। यथा-**

1. हृदय में प्राण
2. गुह्यदेश में अपान
3. नाभि में समान
4. कण्ठ में उदान
5. सारे शरीर में व्यान रहता है।

10. प्राणों के कार्यः— **1. प्राण का कार्यः- श्वास का ग्रहण और त्याग, हृदय-परिचालन, खाद्य वस्तुओं को पाक स्थली में प्रेरणा करना, धमनी के द्वारा सारे शरीर में रक्त संचालन, शिरा और स्नायुओं को कर्मिष्ठ रखना आदि।**

2. अपान का कार्यः- प्राणवायु के आकर्षण के साथ श्वास-प्रश्वास क्रिया में सहायता पहुँचाना, मलमूत्रादि को अधोदेश से निःसारित् करना, माताओं के देहों से सन्तान-प्रसव कराना आदि।

3. समान का कार्यः- जठराग्नि को सक्रिय रखना, पाकस्थली से अर्धजीर्ण

खाद्यों को ग्रहणी नाड़ी में ले जाना, जीर्ण खाद्यों का सार और अजीर्ण खाद्यों को पृथक्-पृथक् कर देना। प्राण और अपान वायु की समता, रक्षा करना आदि।

4. उदान का कार्यः- शब्द करना, बातचीत करना, गाना, मन- बुद्धि-स्मृति शक्तियों को बढ़ाना, साधकों के मन को अतीन्द्रिय राज्य में ले जाना आदि।

5. व्यान का कार्यः- शरीर में खून को सर्वत्र शीघ्रता से संचालन करना, शरीर में संकोचन प्रसारण करना, मस्तिष्क में रक्त प्रवाहित करना, देह से पसीना आदि निःसरण करना आदि।

प्राणायाम से ये पाँच प्राण और इनके साथ पाँच उपप्राण-नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय शरीर में सक्रिय और सतेज होते हैं। मन बुद्धि चित्त यथार्थ रूप से तत्पर हो जाते हैं। तन्द्रा, आलस्य व जड़ता का नाश हो जाता है। सदा सर्वदा शरीर निरोग, स्वास्थ्यवान् कर्मठ और मन तेजस्विता से पूर्ण हो जाते हैं।

11.पित्त तत्वः– देहस्थ शरीर-गठनकारी अग्नि ही पित्त नाम से अभिहित है। पित्त पाँच भागों में विभक्त हैः- 1.पाचक पित्त 2. रंजक पित्त 3. साधक पित्त 4. आलोचक पित्त 5. भ्राजक पित्त।

पित्त शरीर में रहता हुआ निम्न कार्य करता है। शारीरिक शक्ति, शारीरिक ताप रक्षा, दृष्टि शक्ति विधान, क्षुधा-तृष्णा को जागृत करना, शरीर की मृदुता की रक्षा करना, शरीर की उज्ज्वलता की रक्षा, मेधा वृद्धि में सहायता और शरीर को मनोरम व सुन्दर बनाना।

12. पित्तों के कार्यः– 1. पाचक पित्त का कार्यः- पाचक पित्त अग्न्याशय में उत्पन्न होता है। खाद्य वस्तुओं को जीर्ण करना, खाद्यों के सार-भाग को रस में परिणत करना, मूत्र-पुरीष, पसीना, थूक, सर्दी आदि, असार अंशों को रसांश से अलग कर देना, शरीर में उचित प्रकार से तापवृद्धि करके रोगविष नष्ट कर देना, ताप की समता की रक्षा करके देह-रक्षाकारी और देह-पोषणकारी जीव कोषों की उत्पत्ति में सहायता करना आदि पाचक पित्त के कार्य हैं। पाचक पित्त के दोषयुक्त होने से अजीर्ण, अम्ल, कोष्ठबद्धता, उदामय

आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

2. रंजक पित्त का कार्यः- रंजक पित्त यकृत् में उत्पन्न होता है। पाचक पित्त जीर्ण अंशों के सारांश रस को समान वायु की सहयता से यकृत् में भेज देता है। यकृत् रंजक पित्त की सहायता से उस रस का शोधन करता है। उस शोधित खाद्य रस में और कुछ रंजक पित्त मिल जाने से खाद्य रस रक्तवर्ण में रंजित होकर खून बन जाता है। खाद्य रस को रक्तवर्ण में रंजित करने से इसका नाम रंजक पित्त पड़ गया है। रंजक पित्त का बाकी अंश उदरस्थ खाद्य वस्तु को जीर्ण करने में लग जाता है। रंजक पित्त दूषित होने से रक्तहीनता, कमला रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

3. साधक पित्त का कार्यः- साधक पित्त के प्रभाव से ही मानव देह में उत्साह और उद्यम की सृष्टि होती है। दुःसाध्य कार्यो को सुसाध्य करने के लिये इससे ही प्रेरणा मिलती है। पाचक पित्त और रंजक पित्त का सूक्ष्मांश ही साधक पित्त के रूप में रूपान्तरित होता है। मन को प्रबल इच्छाशक्ति सम्पन्न करने में यह साधक पित्त ही विशेष रूप से मदद् करता है। यह साधक पित्त ही बुद्धि, धृति और स्मृति के वर्द्धन में सहायता पहुँचाता है। साधक पित्त दोषयुक्त होने से मूर्च्छा रोग, संन्यास रोग, मस्तिष्क-विकृति आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

4. आलोचक पित्त का कार्यः- पित्त का जो सूक्ष्मांश चक्षुओं में रहता हुआ, दृष्टि-शक्ति में रूपान्तरित होता है, उसका नाम ही आलोचक पित्त है। साधकों को अतीन्द्रिय दर्शन या दिव्य दृष्टि लाभ भी इस आलोचक पित्त की सहायता से होता है। आलोचक पित्त दोषयुक्त होने से आँखों की दृष्टि-शक्ति घट जाती है और आँखों में मोतियाबिन्द भी हो जाता है।

5. भ्राजक पित्त का कार्यः- पित्त का जो सूक्ष्मांश या सारभाग देह में दीप्ति के रूप में प्रकाश पाता है, वह शरीर में वर्ण की आभा पैदा करता है, उसका नाम ही भ्राजक पित्त है। यह भ्राजक पित्त ही चर्म में रहता हुआ रोग-विष और रोग-कीटाणुओं के आक्रमण से शरीर के चर्म की रक्षा करता है। इस

भ्राजकपित्त के दोषयुक्त होने से विविध चर्मरोग और गात्र विवर्णता आ जाते हैं।

पित्त अम्ल पैदा करता है। जिस खाद्य को जीर्ण होने में पित्त की सहायता का प्रयोजन होता है, उस खाद्य को जीर्ण करके पित्त खुद भी जीर्ण हो जाता है। पित्त के द्वारा जीर्ण खाद्य ही अम्ल रस में परिणत हो जाता है। देह का स्वस्थ रक्त हमेशा ही लवणाक्त रहता है। इस पर भी कुछ अंश अम्ल रस है। पित्त के द्वारा जीर्ण खाद्य ही रक्त को प्रयोजनीय अम्लरस देकर रक्त की देह-पुष्टि के विधान करने की शक्ति को ठीक रखता है। यह पित्त खाद्य वस्तु को यदि जीर्ण न कर सके तो अजीर्ण खाद्य के साथ यह पित्त खुद भी विकृत हो जाता है। इस विकृत पित्त से देह में अम्लविष पैदा होता है और देह रोगाक्रान्त हो जाता है।

13. श्लेष्मा तत्त्वः— रस प्रधान पंचभूतों का सारांश ही श्लेष्मा है। देह की सब ग्रन्थियों को और देह के सब धातुओं को यह श्लेष्मा ही पोषण करता है। यह श्लेष्मा ही विशेष रूप से जीर्ण होकर लवण रस में परिणित हो जाता है। श्लेष्मा ही देह के बलस्वरूप ओजः धातु नाम के अभिहित है। श्लेष्मा ही देह रक्षण, देह गठन और देह पोषण करता है। रस, रक्त, माँस, मेदः, अस्थि, मज्जा और शुक्र; इन धातुओं का सारस्वरूप यह ही तेज या ओज है। ओज देहस्थिति का कारण है। देह में ओज की वृद्धि होने से देह की तुष्टि, पुष्टि, बल का उदय होता है। श्लेष्मा भी पाँच भागों में विभक्त होकर देहों को धारण कर रहा है। श्लेष्मा के पाँच भाग ये हैं:-

1. क्लेदन श्लेष्मा
2. अवलम्बन श्लेष्मा
3. रस श्लेष्मा
4. स्नेहन श्लेष्मा
5. शोषण श्लेष्मा

14. श्लेष्मा के कार्यः— 1. क्लेदन श्लेष्मा का कार्यः- क्लेदन श्लेष्मा अन्नों को रस से जारित करके उसको क्लिन्न अर्थात् चूर्ण और गन्धित

करता है। खाद्य वस्तुओं को उदर में प्रविष्ट करने के साथ-साथ पाकस्थली के धमनी गात्र की क्षुद्र-क्षुद्र ग्रन्थियों से यह रस निकल कर खाद्य वस्तुओं को जारित करता है और फेनमय करता है। यह क्लेदन श्लेष्मा ही पाक स्थली का पाचक रस है। अग्निताप से जल उत्तप्त होकर अन्न को जिस रूप में सिद्ध करके कोमल और नरम करता है, ठीक उसी तरह पाचक पित्त के ताप से यह पाचन रस या क्लेदन श्लेष्मा उत्तप्त होकर अन्न को क्लिन्न और आर्द्र करता है और अन्त को रस के रूप में परिणत होने में सहायता करता है। अन्न से भी एक प्रकार का पाचक रस निकल कर अजीर्ण या अर्धजीर्ण अन्न को जीर्ण करने में सहायता करता है। यह ही क्लेदन श्लेष्मा है। यह क्लेदन श्लेष्मा दूषित होने से अजीर्ण अग्नि-मान्द्य और रक्त की कमी आदि रोगों को उत्पन्न करती है।

2. अबलम्बन श्लेष्मा का कार्यः- लौहयन्त्र तैल चर्चित न होने से गतिमान नहीं होता है। तैल चर्चित रहने पर ही लौहतन्त्र के एक अंग के साथ दूसरे अंग का घर्षण नहीं होता है । अवलम्बन श्लेष्मा का शैत्यगुण पित्त के उत्ताप से भी देह यन्त्रों को बचाता है। अवलम्बन श्लेष्मा सम्पूर्ण शरीर में रहता है। लेकिन वक्षः स्थल ही उसके रहने का प्रधान स्थान है। हृदय-यन्त्र और फेफड़ा इस अवलम्बन श्लेष्मा से सिक्त रहता है। इसलिये वक्ष- अस्थियों से इन का संघर्षण नहीं होता है। वायु ही इस अवलम्बन श्लेष्मा को देह के सर्वांशों में भेज देता है। और देह-यन्त्रों को सिक्त करके संचालन करता है। अवलम्बन श्लेष्मा दूषित होने पर शरीर में अलसता और जड़ता आ जाती है।

3. रसन श्लेष्मा का कार्यः- रसना-स्थान अर्थात् जिह्वा को केन्द्र करके जिस श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है, उसी का नाम रसन श्लेष्मा है। इसका दूसरा नाम ''बोधक श्लेष्मा'' है। साधारण भाषा में इसका नाम ''लार'' या ''लाल'' है। यह लाला ग्रन्थि-निःसृत रस है। यह रसन श्लेष्मा ही जिह्वा में रसस्वादन को जगाता है। यह अन्न की परिपाक क्रिया में मदद करता है। दूषित होने से अक्षुध ा की सृष्टि होती है। सब खाद्य ही स्वादहीन मालूम पड़ता है।

4. स्नेहन या तर्पक श्लेष्माः- यह श्लेष्मा अपने रसस्राव द्वारा सब इन्द्रियों

की तृप्ति , तुष्टि और पुष्टि करती है। देह की ग्रन्थियाँ रक्त के सारांश रस को जीर्ण करके ही सुपुष्ट होती है । इन सुपुष्ट ग्रन्थियों से ही स्नेहन या तर्पक श्लेष्मा क्षरित होती है। यह तर्पक श्लेष्मा ही सब देहयन्त्रों की पुष्टि करती है। इस तर्पक श्लेष्मा के आंशिक अभाव से भी देह का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। सब देह-यन्त्रों पर ही तर्पक श्लेष्मा का विशेष प्रभाव है। चक्षु और कर्णेन्द्रियादि तर्पक श्लेष्मा से अपनी-अपनी पुष्टि ले लेते हैं। इस श्लेष्मा के अभाव हो जाने से दृष्टि-शक्ति और श्रवण आदि का ह्रास हो जाता है। तर्पक श्लेष्मा का प्रधान केन्द्र या कर्मस्थान मस्तिष्क है। तर्पक श्लेष्मा को ही सोमधारा या अमृतधारा बोला जाता है। मस्तकस्थित और मस्तकक्षरित इस सोमधारा के द्वारा ही देहस्थ सब धातु सदा प्राणवान् रहते हैं। यह स्नेहन या तर्पक श्लेष्मा ही सूक्ष्म रूप से सब चर्मस्थानों में व्याप्त रहकर स्थानों को निरोग रखती है। श्लेष्मा के दोषयुक्त होने से स्मृति-शक्ति और श्रवण-शक्ति ह्रास को प्राप्त होती है।

5. शोषण श्लेष्मा का कार्यः- देह की सब अस्थि-सन्धियाँ या अन्य सन्धि यों जिस रसधारा से सदा प्लावित रहती हैं, उसी का नाम शोषण श्लेष्मा है। इसके रहने से अस्थि-अस्थियों में संघर्षण नहीं होता है। यह शोषण श्लेष्मा अस्थियों के सन्धि स्थानों में स्नायु और मांस पेशियों को सबल, स्वस्थ और सरस रखता है। इसलिये अंग-प्रत्यंग वगैरह यथोचित रूप से सञ्चालन करने में असुविधा नहीं होती। इस शोषण श्लेष्मा के दूषित होने से अस्थि-सन्धि स्थानों में रोगविष सञ्चित होता है और वहाँ वातरोग का आक्रमण होता है।

15. त्रिदोषः– केवल वायु, केवल पित्त या केवल श्लेष्मा के दूषित होने से जिस रोग की उत्पत्ति होती है, वह एकदोषज रोग है। इसकी चिकित्सा सहज है। वायु-पित्त, वायु-श्लेष्मा या पित्त-श्लेष्मा के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है, उसका आरोग्यलाभ एक दोषज से कठिन होता है। त्रिधातु के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है, वह बहुत ही मारात्मक होता है।

16. श्वास-प्रश्वास व आयुः– गुरुजी ने कहा था- मनुष्येतर प्राणी पशु, पक्षी, सर्प आदि भी प्राणायाम करते हैं। मनुष्यों ने उनसे ही प्राणायाम

को सीखा है। श्वास-प्रश्वास के साथ जीवों की आयु का निकट सम्बन्ध है। श्वास-प्रश्वास जिस प्राणी का जितना कम है, उसकी आयु उतनी ही अधिक हो जाती है और श्वास-प्रश्वास जितना अधिक होगा उतनी ही आयु कम हो जाती है। प्राचीन योगियों ने समय का परिमाण और श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुपात से आयु का हिसाब निकाला था। आधुनिक योगियों ने एक मिनिट समय लेकर हिसाब प्रकाशित किया है:-

प्राणी	मिनट	आयु
1. कछुआ	4/5	150/155
2. सर्प	7/8	120/122
3. हस्ती	11/12	100/120
4. मनुष्य	12/13	100/150
5. घोड़ा	18/19	48/50
6. बिल्ली	24/25	12/13
7. छाग	23/24	12/13
8. कुत्ता	28/29	13/14
9. बन्दर	31/32	20/21
10. कबूतर	37/38	8/9
11. शशक	38/39	8/9

मनुष्य एक दिन-रात में 18 हजार 7 सौ 20 बार श्वास-प्रश्वास निर्वाह करता है । प्रति मिनिट में 13 बार श्वास-प्रश्वास के हिसाब से 24 घण्टे-1440 मिनट में-18720 श्वास-प्रश्वास लेता है। इससे कोई-कोई योगी कहते हैं कि प्राचीन काल में मनुष्यों के श्वास-प्रश्वास का परिमाण आज कल से कम था। इसलिये आयु अधिक होती थी। आज कल श्वास प्रश्वास का परिमाण अधिक होने के कारण आयु का परिमाण कम होता जा रहा है। आजकल भी प्राणायाम का अभ्यास मनुष्यों में जितना होता रहेगा, उतनी ही आयु बढ़ती रहेगी।

17. सीनोर, पुनः चाणोद और अहमदाबाद में:– गुरु स्वामी

योगानन्द सरस्वती के साथ व्यासाश्रम में रह कर योगविद्या के विभिन्न अंगों के बारे में शिक्षा ग्रहण की थी। व्याकरण के जटिल प्रश्नों के समाधान के लिये किसी अच्छे वैयाकरण के पास जाना जरूरी समझ कर गुरुजी ने मुझे सीनोर में पं० श्री कृष्ण शास्त्री के पास भेज दिया था। वहाँ रहकर मैं व्याकरण की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करता रहा था। सीनोर में प्रसिद्ध वैयाकरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्री से व्याकरण शास्त्र का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के बाद और क्रियात्मक रूप से योगविद्या सीखने के लिये मैं चाणोद में पहुँच गया था। पता लगा था कि वहाँ स्वामी श्री ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि नाम के दो योगी पुरुष रहते हैं। दोनों ने मुझे योगविद्या सिखाने के लिये शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया । पहले स्वामी ज्वालानन्द ने मुझे वचनात्मक रूप से हठयोग की शिक्षा दी थी, और स्वामी शिवानन्द ने मुझे क्रियात्मक रूप से राजयोग की शिक्षा दी थी। आज तक भी उन दोनों की योग-शिक्षा के पाठ पर ही मेरा यौगिक जीवन चालू है। उन दोनों का मैं आभारी हूँ। उन्होंने मुझे कठोर परीक्षाओं में रखा और उत्तीर्ण होने पर शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया।

18. योगाभ्यास में छः वर्षः— सीनोर से आकर मैंने तीन वर्ष का काल चाणोद और अहमदाबाद में योग-शिक्षा के लिये बिताया था। तत्पश्चात् और तीन वर्ष का काल आबू पर्वत में रह कर योग-सिद्ध पुरुषों की संगति में बिताया था। इस छः वर्ष के काल को मैं अपने जीवन का सर्वोत्तम अंश समझता हूँ, योगविद्या की शिक्षा और अनुभव के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देना मेरी इच्छा के प्रतिकूल है, तो भी कलकत्ते के शिक्षित ज्ञानी और भक्त लोगों के ऐकान्तिक मनोभाव और आग्रह को देखकर मैं इसका संक्षिप्त वर्णन अवश्य ही करूँगा। मेरी मृत्यु-काल तक उसका प्रकाशन नहीं होना चाहिये।

19. योग के प्रकारः— यह पहले ही बता दिया गया था कि योग चार प्रकार के हैः—

1. हठयोग
2. राजयोग

3. मन्त्रयोग
4. लययोग

1. हठयोगः– इनमें हठयोग से शरीर और मन स्वस्थ और सतेज होकर दूसरे योगों के लिये उपयोगी बन जाते हैं। हठयोग के साधन से योगी क्षुधा-तृष्णा, निद्रा-आलस्य, शीतोष्ण, आधि-व्याधि, रोग-शोक, जरा-वार्धक्य आदि द्वन्द्व-समूह पर विजय लाभ करते हैं। हठ-योगी 'त्राटक योग' के अभ्यास से दूर दृष्टि, सूक्ष्म दृष्टि और अव्याहत दृष्टियों को बढ़ाते हैं। 'कुम्भक योग' के द्वारा योगी लोग बहुत दिन तक निराहार तथा निरोग होकर रह सकते हैं। इन सब यौगिक विभूतियों का मैंने स्वयं अनुभव किया है। हठयोग दो प्रकार का हैः-

1. गोरक्ष मुनि का छः अंग वाला योग।
2. मार्कण्डेय मुनि का आठ अंग वाला योग। उभय प्रकारों का उद्‌देश्य कैवल्यलाभ ही है।

हठ-योग के पाठः- शरीर को नीरोग और दृढ रखने के लिये गुरुजी ने मुझे इन सब प्रक्रियाओं की शिक्षा दी थी। धौति, नेति, वस्ति, श्वासपरिवर्तन, आतपस्नान, जलस्नान, नासापान, जलपान, कुम्भक योग, त्राटक योग, आसन और मुद्रा।

1. धौतिक्रियाः- धौति से शरीर को पूर्णतया नीरोग और स्वास्थ्यवान् किया जा सकता है। वायुधौति, अग्निधौति, जलधौति, और वस्त्रधौति के अभ्यास साध ारणतः प्रचलित हैं। रोगी या भोगियों के लिये इसका अभ्यास करना कठिन है। इससे उदर और वक्षः स्वच्छ होते हैं।

2. नेतिक्रियाः- नासा के द्वारा नेतिक्रिया की जाती है। नेतिक्रिया से कंठ और ललाट निर्मल होते हैं।

3. वस्तिक्रियाः- योगी लोग जलवस्ति, स्थलवस्ति आदि के द्वारा पाक-स्थली के और अन्त्र के दूषित और संचित मल को निकाल देते हैं।

4. श्वासपरिवर्तनः- किसी रोग का आक्रमण समझने के बाद इड़ा नाड़ी के श्वास को पिंगला नाड़ी और पिंगला नाड़ी के श्वास को इड़ा नाड़ी में लाने से ही आक्रमणकारी रोग बन्द हो जाता है। वाम नासारंध्र से इड़ा नाड़ी को और

दक्षिण नासारंध्र से पिंगला नाड़ी को सूक्ष्म प्राण पहुँचता है।

5. आतपस्नानः- धूप में अनावृत शरीर को परिमित और नियमित रूप से रखने से चर्मरोगादि और कुष्ठ जैसी व्याधियों तक का विनाश हो जाता है।

6. जलस्नानः- जलाशय में विशेष कर के स्रोतस्विनी नदी में नियमानुसार अवगाहन स्नान करने से शरीर नीरोग स्वच्छ और स्निग्ध हो जाता है।

7. नासापानः- ऊषा-काल में प्रशस्त और गम्भीर पात्र में जल रखकर जल पात्र को मुख के समीप रखकर नासारन्ध्रों को उसमें डुबा के नासारन्ध्रों से ही धीरे-धीरे जल आकर्षण कर भीतर को लेना और पी लेना ही नासा-पान है। इससे शरीर के अन्दर रोगों के बीजाणु नासारन्ध्र तक टिक नहीं सकते हैं और शरीर निरोग रहता है।

8. जलपानः- सवेरे निद्रा-भंग होने के साथ ही साथ मुख धोकर यथाशक्ति केवल पानी ही पी लेना, पिपासा हो तो दोपहर के खाना खाने से कुछ पहले पानी लेना, खाना खाने के कुछ देर बाद पानी पी लेना और रात को भी सोने से पहले नियमित पानी पी लेना ही जलपान है । इससे भी शरीर निरोग रहता है।

9. त्राटकयोगः- उदयकालीन चन्द्र-सूर्य के प्रति, प्रतिबिम्ब में अपनी आँखों के प्रति, दूसरे की आँखों की दृष्टि के प्रति पलकहीन और अविच्छिन्न दृष्टि रखना ही 'त्राटक योग' है। इससे एकाग्रता, धारणा शक्ति और दृष्टि-शक्ति की वृद्धि होती है। गुरुजी ने मुझे इसी प्रकार सम्पूर्ण हठ योग की शिक्षा दी थी।

10. आसनः- योगाभ्यास और रोगनिवारण के लिये आसन बहुत प्रकार के हैं। योगाभ्यास के लिये प्रधान आसन चौरासी या बत्तीस प्रकार के हैं। इन में से पद्मासन और सिद्धासन सहज योगाभ्यास के लिये उपयोगी हैं। धारणा, ध्यान और समाधि के लिए पद्मासन, सिद्धासन और अर्धपद्मासन ही ग्रहणीय हैं।

गुरुजी से मैंने इस प्रकार सौ प्रकार के आसन सीख लिये थेः- अर्धकूर्मासन, गोमुखासन, चक्रासन, जानुशीर्षासन, त्रिकोणासन, धनुरासन, पादहस्तासन, पद्मासन (मुक्त और बद्ध) पवनमुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, वज्रासन, भुजंगासन, मत्स्येन्द्रासन,

मयूरासन, शवासन, शयनपश्चिमोत्तानासन, शलभासन, शशांगासन, सुप्तवज्रासन, हलासनादि। इनसे मन अचंचल होता है।

11. मुद्राः- मुद्रायें स्वरूपतः आसनों के ही प्रकार-भेद हैं। शरीर के स्नायु तन्तु और मांसपेशियों को सबल बनाना आसनों का काम है और अतःस्रावी और बहिःस्रावी ग्रन्थियों को सक्रिय और सबल रखना मुद्राओं का काम है। मुद्रा भी बहुत प्रकार की हैं। गुरुजी ने मुझको लगभग पचास प्रकार की मुद्रायें सिखाईं थीं। उनमें ये प्रधान हैंः- अश्विनी मुद्रा, उड्डयन मुद्रा, उड्डयनबन्ध मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, मत्सस्य मुद्रा, शीर्षासन मुद्रा (मस्तक मुद्रा) महाबन्ध मुद्रा, महामुद्रा, मूलबन्ध मुद्रा, योग मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, सर्वांगासन मुद्रा और सहजशीर्षासन मुद्रा। मुद्राओं से शरीर-साधना के लिये उपयोगी बन जाता है।

12. कुम्भक योगः- राजयोग के अनुसार प्राणायाम के तीन अंग हैंः- पूरक, रेचक और कुम्भक। हठयोग में कुम्भक स्वतन्त्र क्रिया के रूप में ही गिना गया है। प्राण-शक्ति को कैवल्य लाभ के साधन में उपयोगी बनाना ही कुम्भकयोग है। प्राण शक्ति की वृद्धि और मन के नियन्त्रण का भी कुम्भक योग से सम्बन्ध है। गुरु जी के उपदेश, निर्देश और नियन्त्रण में रहते हुये मैंने कुम्भक योग का अभ्यास किया था। प्राणायाम सुसिद्ध होने से शरीर रोगमुक्त रहता है।

गुरु के पास रहकर नियमित रूप से प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करने से अतिद्रुत प्राणायाम का फल मिल जाता है। निःश्वसित वायु का स्वाभाविक परिमाण और प्रश्वसित वायु का भी स्वाभाविक परिमाण जानना आवश्यक है। भीतर गये हुये वायु को आबद्ध रखने का भी परिमाण साथ-साथ जानना जरूरी है। अन्यथा नितान्त अस्वाभाविक रूप से पूरक, रेचक या कुम्भक करने से प्राणशक्ति की वृद्धि के स्थान में प्राण के नाश का ही भय रहता है। देह से द्वादश अंगुलि तक श्वास जाय तो यह स्वाभाविक है। चलने के समय षोडश अंगुलि तक, भोजन के समय विंश अंगुलि तक, दौड़ने के समय चतुर्विशति अंगुलि तक, निद्रा के समय 30 अंगुलि तक ही प्राणवायु की स्वाभाविक गति है। इसमें अस्वाभाविक गड़बड़ी होने से आयुक्षय होता है। प्रथम सिद्धार्थी का इस पर ध्यान

रखना जरूरी है।

योगाभ्यास के समय प्रातः-स्नान, उपवास, अतिरिक्त शारीरिक परिश्रम, एक कालीन आहार और स्वल्पाहार; यह योगियों के लिये निषिद्ध है, लेकिन ध्यान और समाधि सीखने के समय निषिद्ध नहीं है। शुद्धचेता और एकाहारी होकर कोई-कोई योगी प्रतिदिन केवल जल-मिश्रित दुग्ध का पान करने से भी बल प्राप्त करते हैं। मैं योग-शिक्षा के सुदीर्घ काल में दुग्धापान करके ही सबल और स्वस्थ रहा था। योगी के लिए सब प्रकार का नशा सर्वथा वर्जनीय है। नशाबाज योगियों ने तीन बार बिभिन्न स्थानों में मुझको नशाबाज बनाने के लिये प्रयत्न भी किया था। लेकिन मैं इस पर बहुत ही कठोर हूँ। मैंने उनकी संगत को ही छोड़ दिया था। योग-शिक्षार्थी और योगियों के लिये आमिष आहार भी सम्पूर्णतया वर्जनीय है। गुरुजी ने मुझको दिनरात साथ-साथ रखकर ही हठ-योग की शिक्षा दी थी। पितृगृह से आने के बाद मेरा देह और मन; गुरुओं के प्रभाव से योग-शिक्षा और योग साधन के लिये सर्वथा उपयोगी बन गया था। इसलिये उन के प्रति मैं चिर-ऋणी हूँ। गुरुजी हर रोज मेरे श्वास की गति की भी जाँच करते थे।

2. मन्त्रयोगः– गुरुजी ने मुझको मंत्रयोग की शिक्षा दी थी। प्रणवादि मन्त्रों के नियमित और दीर्घकाल तक जप करने से मन लीन हो जाता है। मन्त्र-योग का यह ही उद्देश्य है। इससे भी मोक्ष-लाभ होता है। भृगु, कश्यपादि ऋषि लोग इस मंत्रयोग के उपदेष्टा हैं। मैं बहुत दिन तक हर रोज दो बार छः हजार-छः हजार करके गायत्री मंत्र जप करके तब खाना खाता था।

3. लययोगः– वेदव्यासादि कई एक ऋषि लययोग के उपदेष्टा हैं। इनके कथन के अनुसार हमारे शरीरों में तीन मुख्य शक्तियाँ हैं:- ऊर्ध्वशक्ति, मध्यशक्ति और अधःशक्ति। ऊर्ध्वशक्ति के निपातन से और अधःशक्ति के संकोचन से मध्य शक्ति का उद्बोधन होता है। इस प्रक्रिया से सात्विक आनन्द का प्रवाह उपलब्धि में आता है। इस उपलब्धि के लिये शरीर के इन चक्रों में ध्यान करना होता है। स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कण्ठचक्र, तालुचक्र,

भू:चक्र, ब्रह्मरन्ध्रचक्र और अन्तिम ब्रह्मचक्र। इनमें ध्यान से आनन्द मिलने लगता है। इसके अभ्यास से भी मोक्षलाभ होता है। गुरुजी ने मुझे इस लय योग के बारे में साधन-विषयक बहुत गुप्त रहस्य का भी उपदेश दिया था। मुझे स्नायविक शक्ति-केन्द्रों का पता लग गया था।

लेकिन मुझे केवल राज-योग पर ही पूर्ण विश्वास था। दूसरे योगों को मैंने आनुषंगिक योग ही समझ लिया था। मंत्रयोग, लययोग, राजयोग और हठयोग इन चार प्रकार के योग-पथों का भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न महायोगी लोगों ने आविष्कार किया था। इस प्रकार के योग में ही लय का सम्बन्ध है । लय के विना योग होता ही नहीं। किस का लय? चित्त का लय। पतंजलि ने चित्त के लय पर बहुत ही जोर दिया है। योग का सुफल और अलौकिक क्षमता नि:सन्दिग्ध है। योगी लोग बहुज्ञ, दीर्घजीवी और सदा प्रसन्नचित्त होते हैं। निराहार से या श्वास-रोध से भी इनकी जीवन-रक्षा होती है। यह सब बातें नितान्त अविश्वसनीय नहीं है। हठ-योग की सभी क्रियाओं को गुरुजी ने मुझे सिखाया था।

4. राजयोग:– हठयोग-शिक्षा के बाद मेरे गुरु स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने मुझको राजयोग की शिक्षा के लिये स्वामी शिवानन्द गिरि को समर्पित कर दिया । मैंने सफलता के साथ उनसे राजयोग का पाठ आरम्भ कर दिया था। राजयोग आठ अंगों में विभक्त है:- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। ऋषि पतंजलि ने इसके पाठों को चार भागों में विभक्त किया है। समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। इन सबका परिचय मुझे पहले से ही था।

इससे पहले मैंने काशी में बड़ौदा से आकर विभिन्न दर्शन-शास्त्रों और विभिन्न सिद्धान्तों को बिना ग्रन्थों के मौखिक-रूप से सुनकर ही और आलोचना-शंका- समाधानों के द्वारा ही कुछ-न-कुछ समझ लिया था।

अब मेरे गुरु ने पतञ्जलि के राजयोग और उसके साथ व्यास भाष्य, वाचस्पति की तत्त्ववैशारदी टीका, भोज की राजमार्त्तण्डवृत्ति, विज्ञानभिक्षु का

योगवार्तिक भाष्य आदि ग्रन्थों के सारांश को समझा दिया। मैंने विशेष रूप से उनसे कैवल्य, मोक्ष या मुक्ति लाभ के लिये उपदेश मांगा था। उन्होंने तदनुसार मुझको योगदर्शन के क्रियात्मक रूप की ही शिक्षा देनी आरम्भ कर दी थी।

20. आहार:— सर्वप्रथम उन्होंने आहार के सम्बन्ध में उपदेश दिया और मेरे लिये परिमित हितकर और पवित्र वस्तुओं के आहार के लिये प्रबन्ध करवा दिया था। साथ-साथ योग के लिये निर्जन कुटिया में रहने का प्रबन्ध भी कर दिया था। गुरु जी मेरे ऊपर तीव्र दृष्टि रखने लगे। बिन्दुमात्र भ्रम और प्रमाद होने से वे उसका संशोधन करवा देते थे। अब से उन्होंने मेरे पथ्य के लिये केवल दुग्ध का प्रबन्ध करवा दिया और अन्य सब स्वल्पाहार बन्द करवा दिये। मैंने अति शीघ्र उत्साहपूर्वक इस को सहन कर लिया और वर्षो के लिये दुग्धपान मात्र को अपने अभ्यास के अन्दर डाल लिया था और इस पर ही जीवन-धारण किया था। गुरुजी हर सप्ताह श्वास-प्रश्वास के अनुसार शरीर की परीक्षा लेते थे। योग विद्या की शिक्षा के बारे में गुरु जी का द्वितीय उपदेश था:-

21. स्थान और आसन:— योग साधना के लिये कुटी, कानन, पर्वत-गुफा वा किसी मठ का ही आश्रय लेना होगा, यह बात नहीं है। ये सब स्थान अनुकूल हैं, इसमें सन्देह नहीं है, लेकिन मन के अनुकूल कोई निरुपद्रव स्थान मिलने से ही वहाँ भी योगाभ्यास किया जा सकता है। कुशा के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर कपड़ा रखकर उसके ऊपर सिद्धासन या पद्मासन लगाकर अभ्यास करना चाहिये। केवल मिट्टी पर कभी योगासन नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि पृथिवी माता हर क्षण शरीर की शक्ति को खींच रही है। आजतक भी आसन के बारे में मेरा यह नियम चालू है। ग्रीवा, मस्तक और मेरुदण्ड को समान रूप से सरल रख के बैठे हुये धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास प्रतिदिन नियमित समय पर ही होना चाहिये।

22. बहिरंगयोग साधना और अन्तरंगयोग साधना:— अष्टांग योग के पहिले पाँच अंग 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. प्रत्याहार

बहिरंग साधना हैं और बाकी तीन अंग 1. धारणा 2. ध्यान 3. समाधि अन्तरंग साधना है। बहिरंग साधना के द्वारा चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त जितना निर्मल होगा, सिद्धि उतनी ही शीघ्र होगी। मलिन चित्त से ध्यान होना ही असम्भव है, चित्त में रजोमल रहने से चित्त चंचल होता है और तमोमल से ध्यान के समय निद्रा आ जाती है। प्रथम धारणा है। धारणा अधिक समय स्थायी होने से उसका नाम ध्यान है और ध्यान के गाढ़ और गम्भीर होने से उसका नाम समाधि है।

यम पाँच हैं:- 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह।

नियम भी पाँच हैं:- 1. शौच 2. सन्तोष 3. तप 4. स्वाध्याय 5. ईश्वरप्रणिधान।

ये दोनों यम और नियम मानवधर्म की भित्ति हैं। सब ही के लिये इन दोनों की आवश्यकता है। जब पाँच यम जाति, काल,स्थान के उपलक्ष्य से आहत और विच्छिन्न नहीं होते हैं, तब उसका नाम सार्वभौम महाव्रत है।

शारीरिक और मानसिक शौच यानी पवित्रता के साधन से शरीर स्वस्थ होता है और चित्त प्रसन्न होता है। योग साधन के लिये यह भी आवश्यक हैं। मैं गुरुजी के उपदेशानुसार इनके अभ्यास के लिये तत्पर हो गया था।

23. क्रिया योग:– महर्षि पतंजलि के राजयोग के अनुसार क्रियायोग का विधान है। गुरु जी ने मुझे इसके रहस्य के विषय में उपदेश दिया था। क्रियायोग तीन हैं:- 1. तप 2. स्वाध्याय और 3. ईश्वरप्रणिधान। इनके अभ्यास से हमारे तीनों शरीरों की शुद्धि होती है। हमारे शरीर तीन हैं:- 1. स्थूल शरीर 2. सूक्ष्म शरीर और 3. कारण शरीर।

तप के द्वारा हमारे शरीर व इन्द्रियों की परिशुद्धि होती है स्वाध्याय के द्वारा हमारे मन, अहंकार और बुद्धि की परिशुद्धि होती है और ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा चित्तशुद्धि होती है। यानी चित्त के रजस्तमोमल विदीर्ण हो जाते हैं। मैं प्राणपण से इस शुद्धिकार्य में लग गया था। गुरुजी ने कहा- हम लोगों ने जिन उपकरणों के साथ जन्म लिया है, उन सबकी परिशुद्धि न होने से सम्यक् ज्ञान या अपरोक्ष अनुभूति नहीं होगी। प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलेगी। इस

साधना में जिनकी चेष्टा जितनी प्रबल होगी, उनकी सफलता उतनी ही द्रुतगति से होगी। इस साधना का नाम क्रिया योग है।

हमारे तीन शरीरों में पाँच कोष हैं। अन्न द्वारा निर्मित स्थूल शरीर अन्नमयकोष है। प्राण मन बुद्धि द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीर में क्रमानुसार प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष हैं। अस्मिता द्वारा निर्मित कारण देह का नाम ही आनन्दमयकोष है। जीवात्मा इन पाँच कोषों के आवरण से आबद्ध है। पंचकोषों से मुक्ति ही जीवात्मा की मुक्ति है। सर्वोपरि अन्नमयकोष है। उसके अन्दर प्राणमयकोष, उसके अन्दर मनोमयकोष, उसके अन्दर विज्ञानमयकोष है और उसके अन्दर आनन्दमयकोष है।

1. तपः– स्थूल शरीर के संस्कार के लिये तप, सूक्ष्म शरीर के संस्कार के लिये स्वाध्याय और कारण शरीर के संस्कार के लिये ईश्वरप्रणिधान का प्रयोजन है। केवल धर्मानुष्ठान के लिये ही इसकी आवश्यकता नहीं है। सभी कार्यों में सब को ही इस संस्कार या तप का प्रयोजन है, क्योंकि इस संस्कार पर ही सबके शरीर और मन का स्वास्थ्य निर्भर करता है। क्रियायोग ही इस संस्कार कार्य का एकमात्र उपाय है। इसके अभाव के कारण मनुष्य संस्कारहीन शरीर और मन के द्वारा पाप कार्य करते हैं । असंस्कृत जीवन अतीव दुर्बल और पापिष्ठ है । तप ही संयम, कठोरता, सहिष्णुता और दृढ संकल्प है, इसी के द्वारा स्थूल देह शुद्ध होता है।

2. स्वाध्यायः– स्वाध्याय के द्वारा सूक्ष्म देह संस्कृत या शुद्ध होता है। इससे प्राण, मन और बुद्धि की मलिनता दूर होती है। वेदादि मोक्षशास्त्र पाठ, गायत्री प्रणवादिमन्त्रों का नियमित पाठ ही स्वाध्याय है। प्राण, मन और बुद्धि की गति साधारणतः बाहर की तरफ है। इनकी आसक्ति बाहर के विषयों में अधिक है। इस विषयासक्ति का नाम ही मलिनता है, इसलिये इनकी गति को अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता है। स्वाध्याय ही इस कार्य में एकमात्र उपाय है। चित्त को अन्तर्मुखी करने के लिए स्वाध्याय रूप क्रियायोग की परम आवश्यकता है।

3. ईश्वर प्रणिधानः– ईश्वर प्रणिधान के द्वारा सांसारिक बन्धन से चित्त मुक्त होकर परमात्मा की तरफ धावित होता है। परमात्मा में सर्वकर्मों के फल अर्पण करके निष्कामभाव से कर्म करना ही ईश्वर प्रणिधान है। इससे चित्त के

संस्कारसमूह का नाश हो जाता है। असंख्य जीवनों के असंख्य कर्मसंस्कार चित्त में जमा रहते हैं। हमारे विभिन्न शरीरों में आबद्ध होकर सुख और दुःख के भोग इसी से होते हैं। ईश्वरप्रणिधान के द्वारा हमारे संचित कर्मसंस्कार दुर्बलता और क्षय को प्राप्त होते हैं। साधना के लिए ईश्वरप्रणिधान जरूरी है। इसके द्वारा साधक कर्मसंस्कारों की मलिनता से मुक्त हो जाते हैं और परमानन्दप्राप्ति के लिए परमात्मा की तरफ आकृष्ट हो जाते हैं।

क्रिया योग के द्वारा चित्त में किसी नई शक्ति की सृष्टि नहीं होती है। हमारे अन्दर असीम शक्ति छिपी हुई रहती है। क्रियायोग से इसका उद्‌बोधन होता है और आत्मविश्वास की सृष्टि होती है । जिस शक्ति से हम लोग शुभ कार्य करते हैं, उसी शक्ति से ही हम लोग अशुभ कार्य भी करते हैं। साधारणतः मनुष्य प्रतिदिन अशुभ कार्यों के द्वारा अपने को अधःपतित करता है । इन अशुभ कार्यों के संस्कार विनष्ट करने के लिए क्रिया योग जरूरी है। गुरुजी ने मुझको क्रिया योग के प्रति प्रेरणा दी थी, आज भी मैं उसका अनुसरण कर रहा हूँ।

24. नाड़ीशुद्धिः— गुरु जी ने मुझे कहा कि राजयोग में भी नाड़ी-शुद्धि का प्रयोजन है। मेरुदण्ड के अन्दर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी हैं। इनकी शुद्धि ही नाड़ीशुद्धि है। प्राणायाम करने से पहले नाड़ी-शुद्धि कर लेनी चाहिए। आसन में यथाविधि बैठकर पहले दाहिनी नासा की श्वासक्रिया रोक के बायें नासा से यथाशक्ति वायु को खींच लेना चाहिये। वायु को जितना अधिक खींचोगे, उतना ही अच्छा है। लेकिन ज्यादा जबरदस्ती खींचने से बीमार पड़ जाओगे। साथ-साथ बायीं नासा की श्वासक्रिया को बन्द करके दाहिनी नासा से यथाशक्ति वायु को छोड़ते रहना, इसी का नाम पूरक के बाद रेचक है। पूरक के साथ-साथ ही रेचक करना, कुम्भक नहीं करना अर्थात् भीतर बन्द करके नहीं रखना। रेचक पूरा होने के बाद ही दाहिने नासा के द्वारा पूरक करना और बायें नासा से रेचक करना। इसी प्रकार हर रोज आराम से जब तक कर सकते हो, करो। पूरक और रेचक के समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना। नासा के सम्मुख रुई रखने से भी उसका संचालन नहीं हो। वायु को झट एक ही दफा

वेग के साथ नहीं खींचना और नहीं छोड़ना। खीचने के समय और छोडने के समय धीरे-धीरे ताल से खींचना और छोड़ना। इस नाड़ी शुद्धि के समय दूसरे किसी विषय की चिन्ता नहीं करना। श्वास और प्रश्वास में ही मन को संलग्न रखना और चित्त को आबद्ध रखना। इस नाड़ी शुद्धि के अभ्यास को बहुत दिन तक करने से आसन जय होगा अर्थात् एक आसन में बहुत देर तक आराम से रह सकोगे। तमोभाव नष्ट हो जायेगा अर्थात् आलस्य और तन्द्रा नहीं सतायेंगी। इससे शरीर लघु होगा, मन में आनन्द आयेगा, चित्त प्रसन्न रहेगा, उक्त विषय पर चिन्ता और धारणा की शक्ति बढ़ जायेगी। इससे फेफड़े में बल आयेगा और फेफड़े में प्राणायाम के लायक शक्ति आ जायेगी। नाड़ीशुद्धि के समय इन विषयों पर ध्यान रखना जरूरी है। अन्यथा कठिन रोगों के शिकार बन जाओगे। इन नियमों का उल्लंघन करने से पीछे पश्चाताप करना पड़ेगा। वे नियम ये हैं:-

1. पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य रक्षित हो।
2. साधना का अभ्यास एकान्त में हो।
3. साधना का घर वायुसंचालन युक्त हो, साफसुथरा हो।
4. आहार सात्विक और परिमित हो।
5. साधना का घर एकान्त और निर्जन हो।
6. देह में कपड़े कसके पहने हुए नहीं हों, ढीले हों।
7. बैठने का आसन ठीक हो।
8. नासारन्ध्रों से वायु को धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना हो।
9. नासारन्ध्रों से वायु खींचना और छोड़ना ताल के साथ हो।
10. मन की एकाग्रता श्वास-प्रश्वास पर ही रहे।
11. मन में दूसरी चिन्ता न रहे।
12. उदर में दूषित मल या वायु जमा न रहे।
13. ब्रह्मचर्य हीन व्यक्ति नाड़ी शुद्धि की प्रचेष्टा न करें, अन्यथा विविध रोगों से आक्रान्त हो जायेगें।
14. कुम्भक के अभ्यास के लिए इससे पूर्व ही आसन को स्थिर रखना, मन को

स्थिर करना और नाड़ीशुद्धि का अभ्यास जरूरी है।

25. राजयोग के प्राणायामः– राजयोग के अनुसार प्राणायाम चार प्रकार के हैं:-

1. बाह्यवृत्ति,
2. आभ्यान्तरवृत्ति,
3. स्तम्भवृत्ति और
4. बिषयाक्षेपी ।

1. बाह्यवृत्ति प्राणायामः– प्राणवायु को प्रश्वास के साथ बाहर धारण करके रखना बाह्यवृत्ति प्राणायाम है।

2. आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायामः– प्राणवायु को श्वास के साथ भीतर धारण करके रखना ही आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम है।

इन दोनों प्राणायामों को नाड़ीशुद्धि अच्छे रूप से होने के बाद ही करना चाहिए और इन प्राणायामों को अच्छे रूप से करने के बाद ही स्तम्भवृत्ति प्राणायाम करना चाहिये।

3. स्तम्भवृत्ति प्राणायामः– श्वास-प्रश्वास को रोककर कुछ धीरे-धीरे पूरक और कुछ रेचक के साथ फेफड़े के कार्य को रोकने से स्तम्भवृत्ति हो जायेगा। स्तम्भक वृत्तिक प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे होना चाहिये। गुरु जी अपने अत्यन्त समीप बिठा कर मुझको सर्व प्रकार की प्राणायाम शिक्षा देते थे।

4. विषयाक्षेपीप्राणायामः– देश, काल और संख्या के प्रति दृष्टि रखकर बहुत दिन प्राणायाम करते करते जब साधक अभ्यस्त हो जाते हैं तब देश,काल और संख्या के प्रति दृष्टि न रखने से भी प्राणायाम सुचारु रूप से साधित होता है। इसी का नाम विषयाक्षेपी प्राणायाम है।

26. प्राणायाम परिदर्शनः– बाह्य, आभ्यान्तर और स्तम्भ; इन तीन प्राणायाम वृत्तियों को ध्यान में रखकर इनकी स्थिति को क्रमशः दीर्घ से सूक्ष्म की तरफ ले जाना और इसके कौशल को देश (स्थान), काल और संख्या के अनुसार उत्कर्ष की तरफ ले जाना; इसी का नाम प्राणायाम परिदर्शन है।

1. देशपरिदर्शनः— देश दो प्रकार के हैं:- बाह्यदेश और आभ्यान्तरदेश। बाह्य देश का दूसरा नाम आधिभौतिक देश और आभ्यान्तर देश का नाम दूसरा नाम आध्यात्मिक देश। स्वाभाविक प्रश्वास के समय प्रश्वास-वायु नासिका से करीब 12 अंगुली तक बाहर जाता है। नाड़ीशुद्धि के अभ्यास से प्रश्वास वायु क्रमशः 12 अंगुली से 11, 10, 9, 8 .... और इसी रूप से अन्त में नासिका से बाहर आयेगा ही नहीं। नासिका के अन्दर ही प्रश्वास वायु समाप्त हो जायेगा। इसी रूप से प्रश्वास में वायु के प्रति दृष्टि रखने का नाम बाह्यदेश परिदर्शन है। फिर श्वास लेने के समय जब श्वास वायु हमारे वक्षःस्थल की तरफ आता है, उस पर ध्यान रखने से उसी का नाम आध्यात्मिक परिदर्शन है।

2. कालपरिदर्शनः— प्रणवमन्त्र या गायत्रीमन्त्र का जप करते हुए जो काल का परिमाण हिसाब में रखा जाता है, उसी का नाम कालपरिदर्शन है। पूरक में 4 बार, कुम्भक में 16 बार और रेचक में 8 बार मन्त्र जप करना या पूरक में 6 बार, कुम्भक में 24 बार और रेचक में 12 बार मन्त्र जप करना। इसका अनुपात है 1:4:2। साधक अपनी शक्ति के अनुसार जप करें। जप पूरक में जितने बार होगा, कुम्भक में उसके चार गुणा होगा, और रेचक में उसका द्विगुणा जप होगा। इसी का नाम काल-परिदर्शन हैं।

3. संख्यापरिदर्शनः— यह काल-परिदर्शन के ही अनुरूप है । इसमें जप की संख्या नहीं रखनी है। इसमें श्वास-प्रश्वास की संख्या रखनी है।

गुरुजी ने मुझको सावधान कर दिया था कि प्राणायाम का अभ्यास बहुत ही सावधानी से और धीरे-धीरे करना चाहिए। सद्गुरु के उपदेश के अनुसार इसका अभ्यास होना चाहिए, जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। यथाशक्ति धीरे-धीरे पूरक, कुम्भक और रेचक करना और धीरे-धीरे इनकी संख्या और काल को बढ़ाना। इस रूप से धीरे-धीरे दीर्घ काल के अन्दर अभ्यास करने से जो प्राणायाम की सिद्धि होती है उसका नाम दीर्घ प्राणायाम है। प्राणायाम में जब क्रमशः श्वास-प्रश्वास बाहर आता ही नहीं, नासिका के अन्दर ही रहता है और कुम्भक करने में अधिक कष्ट नहीं होता है, तब उसका नाम सूक्ष्म प्राणायाम है।

27. प्राणायाम से लाभः— गुरुदेव ने प्राणायामशिक्षा के प्रारम्भ में ही प्राणायाम की उपकारिता को वर्णित किया था। तमोगुण के आधिक्य के कारण सत्वगुण के प्रकाश और रजोगुण की कर्मशीलता पर आवरण आ जाता है। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और इन्द्रियों का जाड्य और आलस्य छूट जाता है। तमोगुण का कार्य तन्द्रा और निद्रालुता भी नष्ट हो जाती हैं। स्वल्प निद्रा के कारण तब कष्ट नहीं होता है। देह कर्मपटु होता है, मन मोह-शून्य होता है और बुद्धि स्वच्छ होती है। विचारशक्ति और विवेकशक्ति की वृद्धि होती है, विवेकशक्ति की वृद्धि से तत्त्वज्ञान और सूक्ष्मदर्शन का उदय होता है, मिथ्या और विषम ज्ञान का लोप होता है और शुद्धज्ञान का उदय होता है।

28. चित्त की निर्मलताः— स्वर्णादि धातुओं में मल या खोट मिश्रित रहने से उसकी उज्जवल आभा आवृत हो जाती है और देखने में मलिन लगती है और उसको अग्नि में दग्ध करने से मल दग्ध हो जाता है और सुवर्णादि धातुओं की स्वाभाविक उज्जवलता प्रकाशित होती है। ठीक इसी प्रकार हमारा विवेक मोह के आवरण से आवृत होकर आभाशून्य हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा मोह का आवरण नष्ट हो जाता हैं। प्राणायाम से हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन और चित्त की मलिनता और अशुद्धि भी कट जाती है और विशुद्धि के भाव का उदय होता है। स्वाभाविक स्थिति में हमारी इन्द्रियों में मलिनता रहती है, इसलिए ये इन्द्रियाँ दुर्बल हैं। यह मलिनता कट जाने पर ये प्रबल हो जाती हैं और इनको प्रकृति के सूक्ष्म उपादान दर्शन करने की शक्ति मिलती है। तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धादि के तन्मात्रादि दर्शन करने की शक्ति भी मिलती है। दूरदर्शन और दूरश्रवणादि की शक्ति भी उत्पन्न होती है। जब तक मलिनता रहेगी, तब तब दूरदर्शनादि अतीन्द्रिय शक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। प्राणायाम के द्वारा यह मलिनता क्षीण हो जाती है और सूक्ष्म तत्त्वों का दर्शन होता है। गुरुदेव की कृपा से मुझे इसका फल प्राप्त हुआ था।

29. गतिविच्छेदः— नासिका के द्वारा श्वास को भीतर लेने का नाम

''पूरक'' और उसको छोड़ने का नाम ''रेचक'' है। पूरक के बाद रेचक न करना या रेचक के बाद पूरक न करना , इसका नाम गति विच्छेद है। गति विच्छेद में श्वास-प्रश्वास बन्द किया जाता है। एक का नाम ''पूरकान्तक कुम्भक'' और दूसरे का नाम ''रेचकान्तक कुम्भक'' है। श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद बाहर होता है और चित्त का गति-विच्छेद भीतर होता है। चित्त सर्वदा चंचल है। चित्त की चंचलता का नाम ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर होने से प्राणशक्ति का गतिविच्छेद होता है और चित्त स्थिर होने से चित्त का गतिविच्छेद होता है। जिस समय कुम्भक होगा, ठीक उसी समय भीतर चित्त को भी स्थिर रखना है। प्राण-शक्ति ही चित्त को चंचल करती है। चित्त को स्थिर करना और प्राणशक्ति को स्थिर करना एक ही बात है। बाहर कुम्भक के द्वारा प्राणशक्ति को स्थिर किया जाता है और भीतर चित्त को स्थिर करके प्राणशक्ति को स्थिर किया जाता है। ध्यान के द्वारा चित्त को स्थिर रखना या चित्त को बिल्कुल शून्यवत् रखना जरूरी है। कुम्भक के समय अगर चित्त में चंचलता रहे अर्थात् चित्त चारों तरफ घूमता-फिरता रहे तो विविध चिन्ता आकर चित्त पर आक्रमण करती हैं, इसलिये इससे सुफल के बदले कुफल ही होगा और इससे अनिष्ट की सम्भावना है। इसलिये बाहर जैसे कुम्भक करना ऐसे ही भीतर भी चित्त को पूर्णतया स्थिर रखना है। तब ही योगांग प्राणायाम हो जायेगा । प्राणशक्ति को दोनों तरफ से ही रोकना- गतिहीन करना पड़ेगा। गुरुदेव के निर्देशानुसार साध ना से मुझे सुफल मिला।

इसलिये पहले आसन-स्थिर करके शरीर स्थिर करने का और ध्यान अभ्यास करके मन स्थिर करने का नियम है। शरीर को और मन को स्थिर करके तब कुम्भक अभ्यास करने का नियम है। शरीर और मन को स्थिर न करके अगर कुम्भक किया जाय तो अनिष्ट होता है। मन की चंचलता में कभी कुम्भक नहीं करना चाहिये। बहुत आदमी इस विषय में बहुत ही भूल करते हैं। वे लोग समझते हैं कि किसी उपाय से बहुत समय तक कुम्भक करके रहने से ही सर्वसिद्धि मिल जायेगी। लेकिन चित्त स्थिर करने के बिना कुम्भक करके बहुतों

को विपरीत फल ही मिलता है।

30. यम नियमों की साधनाः– पाँच यम और पाँच नियमों को गुरुजी ने मनुष्य धर्म की नींव बताकर वर्णन किया था। फिर उन्होंने यम और नियमों को तपस्याओं के अंगीभूत कह कर उनका वर्णन किया था। यम और नियम के साधन से मन की स्वेच्छाचारिता की निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति होती है। इनकी साधनाओं की बाधायें भी बहुत हैं। बाधाओं के निवारणार्थ उपाय भी बहुत हैं। यम साधना इस प्रकार की हैं:-

1. अहिंसासाधनाः– मन, वचन, कर्म द्वारा किसी को हानि नहीं पहुँचाना और किसी के प्रति द्रोहभाव न रखना ही अहिंसा है। सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अद्रोह अहिंसा के सहायक हैं। मैत्री सुखी के प्रति, करुणा दुःखी के प्रति, मुदिता पुण्यवान् के प्रति और उपेक्षा पापी के प्रति की साधना से अहिंसासाधना की उन्नति होती है। अहिंसा साधना करने में स्वार्थत्याग की आवश्यकता है। दूसरे के शरीर के माँस को खाकर अपने शरीर की पुष्टि करने से अधिक दूसरी हिंसा नहीं है। जो दूसरे के प्रति हिंसा करता है, दूसरे लोग भी उसकी हिंसा करेंगे। उसको बन्धु नहीं मिलेगा। सब कोई उसके शत्रु बन जाते हैं। ''अहिंसा परमोधर्मः।'' अहिंसा पालन करके चित्त को शुद्ध करना चाहिये।

हिंसा तीन प्रकार की हैः- कृता, कारिता और अनुमोदिता। क्रोध, लोभ और मोह से हिंसा सम्पन्न होती है। हिंसा अनन्त दुःख और अज्ञानता का कारण है। हिंसा के इन दोषों को सोच कर हिंसा को त्याग देना चाहिये।

1. कृताहिंसाः- जिस हिंसा को आदमी खुद करता है। जैसे पशुवध, पक्षिवध आदि।

2. कारिताहिंसाः- खुद न करके जो हिंसा दूसरे के द्वारा कराई जाती है। जैसे अपने नौकरों के द्वारा पशुवध, पक्षीवध आदि।

3. अनुमोदिताहिंसाः- दूसरे की हिंसा की प्रशंसा करना। जैसे कसाईखाने या मन्दिर में पशुवध को देख प्रसन्नता प्रकट करना।

इन तीन प्रकार की हिंसाओं में प्रत्येक हिंसा भी तीन-तीन प्रकार की हैः–

क्रोधपूर्वक, लोभपूर्वक, मोहपूर्वक जैसे क्रोध से किसी का वध करना, धनैश्वर्य के लालच से किसी को जान से मार देना और पुण्य के मोह से मन्दिर में बकरी, भैसों का बलिदान देना।

देखा जाता है कि कोई कोई आदमी वृद्धावस्था में कठिन असाध्य रोग से आक्रान्त होकर छटपटाते हैं। ये लोग प्रतिक्षण मृत्यु को ही चाहते हैं, किन्तु इनके प्रति मृत्यु देवता की दया नहीं होती है। दीर्घकाल तक ये लोग असहनीय रोग यन्त्रणाओं को सहन करके भी जीवित रहते है। इस जीवन में हो या पूर्वजीवनों में हो, ये लोग घोरतर हिंसा कार्य करके इस स्थिति को प्राप्त होते हैं। हिंसा का फल भोग जब तक पूरा नहीं होता, तब तक इनकी मृत्यु नहीं होती। अहिंसा प्रतिष्ठित होने से सब प्राणी योगी के प्रति वैरभाव को छोड़ देते हैं। व्याघ्रादि हिंस्र पशु भी उनके प्रति हिंसा भाव को छोड़ देते हैं। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में हरिणशिशु और व्याघ्रशिशु एक साथ खेलते हैं। अहिंसा साधना की सिद्धि के कारण योगी के आश्रम का वातावरण अहिंसामय हो जाता है।

2. सत्यसाधनाः– मन, वचन-आचरण से सत्य के पालन से ही सत्य-साधना होती है। सत्य प्रतिष्ठित होने से योगी वाक्‌सिद्ध होते हैं। उनके वाक्य अमोघ होते हैं। सत्यप्रतिष्ठ योगी अन्याय से शक्ति के बाहर व्यर्थ संकल्प भी नहीं करते हैं। उनके आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही सफल होते हैं अर्थात् जिस प्राणी को कर्म फलानुसार दुःख मिलेगा योगी के मुख से उसके प्रति अभिशाप ही निकलता है और जिस प्राणी को कर्मफलानुसार सुख मिलेगा। योगी के मुख से उसके प्रति आशीर्वाद ही निकलता है। मिथ्या वाक्य भी अगर दूसरे के लिये हितकर हो, तब वह मिथ्या वाक्य भी सत्य बन जाता है और सत्य वाक्य भी अगर दूसरे के लिये अहितकर होता है, तो वह सत्य वाक्य भी मिथ्या बन जाता है। योगी आशीर्वाद से दूसरे को शुभ फल दे सकते हैं। योगी इच्छा करने से बीमारों की कठिन पीड़ा भी दूर कर सकते हैं। महापापी के अन्दर शुभ इच्छा के द्वारा पुण्य का संचार कर सकते हैं। योगी सर्वदा विचारपूर्वक दूसरे के लिये हितकर वाक्य ही बोलते हैं, अल्प वाक्य प्रयोग करते हैं और कभी कभी मौन

भी धारण करते हैं। सत्य प्रतिष्ठित योगी ज्यादा वाक्य नहीं बोलते हैं और वाचालता भी छोड़ देते हैं। सत्यस्वरूप परमात्मा के ध्यान में ही योगी अधिक समय बिताते हैं, सत्य धर्म के प्रचार में भी अपने जीवन को समर्पित करना चाहते हैं; ऐसे योगी का सब कोई विश्वास करते हैं।

3. अस्तेय साधनाः– लोभ के कारण दूसरे की किसी वस्तु को चोरी करके लेना ''स्तेय'' है और इसके विपरीत ''अस्तेय'' है। अधर्म से उपार्जित अर्थ से धर्मोपार्जन नहीं होता है। बिना बताये दूसरे की वस्तु को ग्रहण करना भी 'स्तेय' है। जिस वस्तु में अधिकार नहीं है उस वस्तु को किसी उपाय से लेना भी 'स्तेय' है। इस रूप से पुरोहित या यजमान का एक-दूसरे को प्राप्ति के विषय में धोखा देने से दूसरे की नौकरी करते हुये नौकर का स्वामी के कार्य को ठीक रूपसे न करने से व्यवसायी का व्यवसाय में धोखा देने से, चिकित्सक का रोगी को चिकित्सा कार्य में धोखा देने से, शिक्षक-छात्रों गुरु-शिष्यों में एक दूसरे को धोखा देने से भी स्तेय हो जाता है। इन सब में विपरीत प्रतिकूल व्यवहार ही अस्तेय है। स्तेय का फल अविश्वास और भीति है और अस्तेय प्रतिष्ठित होने से प्रकृति के सब रत्न ही साधक के सम्मुख उपस्थित होते हैं। काय, मनः, वाक्य से दूसरे के धन के अपहरण की मनोवृत्ति न रहने से जगदीश्वर साधक को सर्व आवश्यक वस्तु ही प्रदान करते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होने से साधक को देख कर ही दाता दान करके अपने को धन्य समझते हैं। अस्तेय-साधक सब के विश्वासपात्र और प्रियपात्र बन जाते हैं और स्तेय के द्वारा आदमी दूसरे के अविश्वासमय और घृणा के पात्र बन जाते हैं।

4. ब्रह्मचर्य साधनाः– कामभावना के साथ कुछ कुछ स्मरण करना, बात करना, देखना, गुप्तमंत्रणा करना, संकल्प करना, श्रवण करना और व्यभिचार कर्म करना; यह सबके सब ब्रह्मचर्य-विरोधी हैं। इसके विपरीत शुद्ध भाव से और काम वर्जित भाव से सब कुछ करना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से शारीरिक और मानसिक बललाभ होता है और धर्मभाव वर्द्धित होता है। सत्त्व, आयुः, यशः, कीर्ति, उत्साह, उद्यम, उच्चाशा, त्याग, शान्ति और आनन्द की

वृद्धि होती है। अन्यथा इन सब गुणों के विपरीत दुर्गुणों की वृद्धि से मनुष्यता का लोप और पशुत्व की वृद्धि होती है। सब ही घृणा और अवमानना का व्यवहार करते हैं। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से साधक महाशक्तिशाली होते हैं। साधक के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की वृद्धि होती है। इन्द्रियों की तेजोवृद्धि होने से सूक्ष्म और अलौकिक विषयों का प्रत्यक्ष होता है। प्रकृष्टरूप से तत्त्वज्ञान की उपलब्धि होती है। ब्रह्मचर्य-हीन मानवों के शरीर कमजोर और विभिन्न रोगों के गृह बन जाते हैं। इनके मन, निस्तेज, उत्साह-हीन, उच्चाशाहीन और अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य-हीनता से जीवन पशुओं के स्तर से भी नीचे उतर जाता है। व्यक्ति अर्द्धमृत और अन्त में विनष्ट ही हो जाता है।

5. अपरिग्रह-साधनाः- केवल शरीरादि की रक्षा के लिये जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, तदतिरिक्त वस्तुओं का त्याग करना अपरिग्रह है। अधिक वस्तुओं की इच्छा अच्छी नहीं है। प्रयोजनातिरिक्त वस्तुओं के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। अधिक भोग्य वस्तु सम्मुख रहने से योगसिद्धि नहीं होती है। आवश्यकता से अतिरिक्त वस्तुओं का संचय करना महापाप है। स्तूपीकृत धन और योग्य वस्तु दूसरे अभाव-ग्रस्त व्यक्तियों को दे देना चाहिये, क्योंकि जगत् की सब वस्तु ही भगवान् की हैं। दूसरे को वंचित करके किसी वस्तु का भोग और अपव्यवहार महापाप है। अर्थ के तुम रक्षक हो, भक्षक नहीं हो। प्रभु के अर्थ को प्रभु के कार्यों में खर्च करो। जिसका अभाव है, उसके अभाव को मिटा दो। तब अपरिग्रह-सिद्धि होगी। मुमुक्षु लोग प्रयोजनातिरिक्त विषयों को सर्वतोरूप से छोड़ देते हैं। इस से भोग्य वस्तुओं के मानसिक बन्धन से मुक्त होकर वे लोग चित्त को निर्मल बना लेते हैं। चित्त के निर्मल होने से उनके चित्त में पूर्व-पूर्व जीवन और भविष्य जन्मों का ज्ञान जागृत होता है।

नियमों की साधना इस प्रकार हैः-

1. शौच-साधनाः- शौच दो प्रकार के हैं- आभ्यान्तर शौच और बाह्य शौच । शौच का तात्पर्य शुचिता है, पवित्रता है। बाह्य शौच से शरीर शुद्ध और स्वस्थ रहता है और आभ्यान्तर शौच से मन शुद्ध और स्वस्थ रहता है। मिट्टी

और जल से बाह्य शौच साधित होता है और शुद्ध आहार, सत् चिन्ता और पवित्र-मनोभाव ग्रहण करने से आभ्यान्तर शौच साधित होता है। पवित्र वस्त्रों के परिधान, सज्जनों के संग और सत् वातावरण में साधकों को रहना चाहिये। राजसिक और तामसिक आहार और वातावरण का परित्याग करना चाहिये। किसी प्रकार के उत्तेजक या मादक द्रव्य का सेवन नहीं करना चाहिये। अनेक साधु भ्रान्ति के कारण चित्त-स्थिर करने के नाम पर मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं । इससे चित्त अपने वश में कभी नहीं रहता है। चित्त को अपने वश में रखना ही तो योग का उद्देश्य है, इसलिये मादक द्रव्य योगसाधन के लिये सम्पूर्ण विघ्नकर हैं। भूल से भी मादक द्रव्यों का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

शौच साधन से मल मूत्र, स्वेद, श्लेष्मा से परिपूर्ण शरीर से आसक्ति ध ीरे-धीरे हट जाती है। शौच-साधन से शारीरिक मल के साथ मानसिक मल भी धीरे-धीरे विदूरित होते हैं। चित्त-मल दूर होने से मन भी शान्त होता है। मन में शान्ति न रहने से किसी कार्य में मन निविष्ट नहीं रह सकता। मन शान्त रहने से चित्त एकाग्र होता है। शुद्ध और एकाग्र चित्त होने से ही इन्द्रिय-जय सम्भव है। जितेन्द्रिय नहीं होने से चित्त धारणा, ध्यान और समाधि-लाभ की योग्यता प्राप्त नहीं करता। इन तीनों से ही आत्मदर्शन की योग्यता आती है।

2. सन्तोष साधना:- सन्तोष से उत्कृष्ट सुख-लाभ होता है। तृष्णा-क्षय नहीं होने से सन्तोष-साधन नहीं होता है। सन्तोष परम धन है। लाखों रुपयों से भी इसको खरीद नहीं सकते हैं। सन्तोषी भिक्षुक जीर्ण वस्त्र पहनता हुआ, एक टुकड़ा रोटी खाता हुआ और भग्न कुटीर में रहता हुआ जिस शान्ति की उपलब्धि कर सकता है। राज-राजेश्वर केवल भोगसुख में वेष्टित होता हुआ ऐसी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। सन्तोष, तृप्ति और आसक्ति-हीनता ही सन्तोष ला सकती है और सन्तोष ही शान्ति को ला सकता है। विषयासक्त धनी या गरीबों के लिये सन्तोष और सुख स्वप्नवत् हैं। विषयासक्ति सर्वसुख का कण्टक है। अपनी स्थिति में सन्तुष्ट रहते हुये उत्कर्ष-लाभ के लिये कोशिश करनी चाहिये। पूर्व जीवन के संस्कार के अनुसार इह जीवन की स्थिति मिल गई है। पूर्व जीवनों में हमने जिनके

उपकार किये हैं आज वे लोग हमारा उपकार कर रहे हैं। जिसको हमने प्रतारित किया है, वे लोग हमको प्रतारित कर रहे हैं। पूर्व जन्मों में जिसके ऋण को नहीं चुकाया आज उन्होंने ही ऋण आदाय के लिये हमारे घर में सम्बन्धी रूप से जन्म लिया है। मेरे पूर्वजन्म-कृत कर्मों के फल के अनुसार मुझको इस जन्म में सब कुछ मिल गया है। संस्कारानुयायी कर्मफल सुख या दुःख मुझको भोगना ही पड़ेगा। फल की कामना के साथ कर्म करने से सुख के या दुःख के संस्कार लेकर ही जन्म ग्रहण करूँगा। भोग रहने से तदनुसार देह और सुख-दुःख मिलेगा। प्राणपण से और यथाशक्ति कर्त्तव्यपालन करना और चित्त में सन्तोष रखना ही परम कल्याण है। सन्तोष महामूल्यवान् वस्तु है। जिनके अन्दर सन्तोष है, उनको अभाव नहीं है। वे सर्वदा सुखी हैं। विषय-तृष्णा ही सन्तोष का परम शत्रु है। सन्तोष की परम यत्न से रक्षा करनी चाहिये।

3. तपः साधनाः- भोगवृत्ति ही शरीर और इन्द्रियों में मलिनता लाती है। वैराग्य-वृत्ति ही इस की शुद्धि करती है। बाहर की दृष्टि से सबके शरीर और इन्द्रिय एक से मालूम पड़ते हैं। लेकिन इसके अन्दर सात्त्विक, राजसिक, तामसिक संस्कार छिपे हुये हैं। इन संस्कारों के अधीन होकर हम लोग मन, वचन, देह से कार्य करते हैं। तामसिक प्रकृति को राजसिक बनाना और राजसिक प्रकृति को सात्विक बनाना ही तप है। सात्त्विक संस्कार-युक्त आदमी देव-प्रकृति के होते हैं, राजसिक प्रकृति के आदमी मनुष्य-प्रकृति के होते हैं और तामसिक प्रकृति के आदमी पशु प्रकृति के होते हैं। पशु-प्रकृति के मनुष्यों को मनुष्य प्रकृति का होना और मनुष्य प्रकृति को देव-प्रकृति कर होना ही परम तप है। आत्म-शुद्धि के लिये तप जरूरी है। सबसे अच्छा तप मन और ज्ञानेन्द्रियों का निग्रह करना ही है। इन्द्रियों का स्वेच्छाचार निवारण करना, शीत-ग्रीष्म, क्षुधा-तृष्णा, सुख-दुःख, सम्पद्-विपद्, जय-पराजय आदि को सहन करना तितिक्षा है। यह तितिक्षा परम तप है। भोग-विलास, आलस्य-तन्द्रा, सुख-स्वाच्छन्द्य के प्रभाव से अपने को मुक्त रखना परम तप है और असंयत इन्द्रियों को संयत बनाना परमोत्कृष्ट तप है। षड् रिपुओं को वश में रखना सर्वोत्कृष्ट तप है। इनकी साधना से मानव देवत्व

का लाभ करते हैं।

4. स्वाध्याय-साधना:– नियमित रूप से वेदाध्ययन, मोक्ष-शास्त्रों का पाठ और आत्मानुसन्धान करने के लिये गुरुजी का कठोर आदेश था। उन्होंने कहा था कि दो-एक रोज खाना नहीं खाने से ज्यादा हानि नहीं होगी, लेकिन जिस स्वाध्याय के द्वारा आत्मपुष्टि होती है, उसको एक रोज किसी कारणवश बन्द रखने से तुम्हारी ज्यादा हानि हो जायेगी। स्वाध्याय से इष्ट देवता का दर्शन होगा। इष्ट देवता परमात्मा तुम्हारे अन्दर छिपे हुये हैं। स्वाध्याय के साधन से तुम उनका स्वरूप-ज्ञान प्रज्ञालोक से कर सकोगें। प्रमाद से एक रोज के स्वाध्याय से भी अपने को वंचित न करो। अभ्यास का गुण असाधारण है। चित्त में जो कुछ अभ्यास करोगें, चित्त उसी में प्रतिष्ठित हो जायेगा। निरन्तर जिसका संग करोगे वह तुम्हारा अपना बन जायेगा। स्वाध्याय के द्वारा तुम परमात्मा का संग करते रहो, तो सत्यद्रष्टा ऋषि-मुनियों का संग भी कर सकोगे। निरन्तर स्वाध्याय के द्वारा उन सबको और भगवान् को अपना संगी-साथी बना लो। जीवन सार्थक हो जायेगा। मनुष्य सामाजिक जीव है। इसलिये मनुष्य दूसरे के संग को ढूँढते हैं। तुम्हारे चिर साथी भगवान् तुम्हारे लिये अनन्त ज्ञान और आनन्द का भण्डार लेकर बैठे हुये हैं। धर्म ग्रन्थ वेद के अन्दर उनके अनन्त अपार ज्ञान की विभूति के दर्शन करते रहो। ज्ञानामृत पान करते रहो। असंख्य जीवनों की क्षुधा-तृष्णा मिट जायेगी। शास्त्रग्रन्थों के अन्दर रहते हुये ऋषि-मुनि लोग तमसावृत जगत् के अन्दर भटकते हुये तुमको गन्तव्य स्थान का सन्धान बतला देंगे। दु:खी अन्त:करण को सान्त्वना देंगे। शोकार्त, दु:खार्त निराश-जीवन को अमृतधारा से संजीवित कर देंगे।''

गुरुदेव के ये अमूल्य उपदेश आज भी मेरे कानों में और अन्त:करण में प्रतिध्वनित हो रहे हैं । वह उपदेश आज भी जीवित, जागृत हैं, प्रेरणा देने वाले हैं। त्यागी-भोगी, संसारी-ब्रह्मचारी, बालक-बालिका, युवक-युवती, वृद्ध-वृद्धा; सब ही के लिये स्वाध्याय परम साधना है । यह परम कल्याणकर है । योग-शास्त्र के क्रिया योग ये हैं:– तप: स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। स्वाध्याय क्रिया; तप: और ईश्वर-प्रणिधान के बीच में है। स्वाध्याय दोनों को पुष्ट करता है। प्राण, मन

और बुद्धि की गति सर्वदा ही बाहर की तरफ है । बाहर के विषयों के प्रति ये बड़े ही आसक्त रहते हैं। यह विषयासक्ति ही मलिनता है। तुम स्वाध्याय के प्रभाव से ही मन, बुद्धि और प्राण को अन्तर्मुखीन कर सकते हो। सूक्ष्म देह के संस्कार के लिये स्वाध्याय बहुत ही उपयोगी है। बाहर का सुख अस्थाई और मलिन है और भीतर का सुख स्थाई और निर्मल है। भीतर के सुख का सन्धान एकमात्र स्वाध्याय के द्वारा ही मिल सकता है।

मन्त्र-जप भी स्वाध्याय का एक अंग है। प्रणव अर्थात् ओंकार का और गायत्री मन्त्र का अर्थभावना के साथ जप करना ही जप है। जप करते करते ध्यान की स्थिति आ जाती है और आगे समाधि की तन्मय स्थिति भी आ जाती है। यह तन्मय अवस्था ही समाधि की सूचना है। जिस के चित्त में रजोगुण अधिक है, उसकी तन्मयस्थिति अल्पक्षण स्थायी होती है। जप में अभ्यास होने से रजोगुण की मात्रा कम हो जाती है, सत्वगुण की मात्रा बढ़ती है। अभ्यस्त योगी का जप श्वास-प्रश्वास के साथ भी चल सकता है। इससे भी समाधि का रास्ता खुल जाता है। स्वाध्याय के अंग ग्रन्थपाठ और जप दोनों ही समान उपयोगी हैं। एक दूसरे का परि-पूरक है। यह स्वाध्याय मेरे लिये चिर-साथी है। स्वाध्याय से प्राण, मन, बुद्धि की मलिनता कट जाती है।

5. ईश्वरप्रणिधान साधना:- सब कार्यों के फल को भगवान् में अर्पण कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि होती है । छोटा शिशु जैसे स्नेहमयी जननी की गोद में लेटकर निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। साध क उसी प्रकार अपनी अहंकार-भावना को छोड़कर सब भगवान् में समर्पण कर के पूर्णतया निश्चिन्त और निर्भय हो जाता है। संग हमारी उन्नति और अवनति के कारण है। स्थूल विषय का संग करने से हम स्थूल विषय में आकृष्ट होकर प्रवृत्तिपथ में धावित होते हैं। सूक्ष्म विषय का संग करने से हमारा मन प्रवृति के पथ को छोड़कर निवृत्ति के पथ पर पहुँच जायेगा। भगवान् परम सूक्ष्म तत्त्व है, इसलिये समाधि योग से उनका संग करने से भगवान् की उपलब्धि होगी। इस समाधि-लाभ का प्रथम सोपान ईश्वर-प्रणिधान है। ईश्वर-प्रणिधान से सामयिक

उद्वेग, अशान्ति, दुश्चिन्ता एक क्षण के लिये भी ठहर नहीं सकते, यह मेरा अनुभव है।

31. प्रत्याहार साधनाः— पाँच ज्ञानेन्द्रिय चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् – अपने-अपने विषय रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के साथ स्वाभाविक रूप से ही संयुक्त होते हैं । जब यह संयोग बन्द हो जाता है और इन्द्रिय चित्ताकार हो जाते हैं, तब इसका नाम प्रत्याहार है। चित्त के इच्छानुसार ही इन्द्रियगण विषयों से संयुक्त होते हैं। चक्षु रूप से, कर्ण शब्द से, नासिका गन्ध से, जिह्वा रस से और चर्म स्पर्श से संयुक्त होते हैं। केवल मन जब चाहता है, तब मन एक ही समय में केवल एक ही इन्द्रिय को विषय में संयुक्त कर सकता है। दूसरे इन्द्रिय तब अपने-अपने विषयों से वियुक्त रहते हैं। इस प्रकार सब इन्द्रियों (अर्थात पाँचों इन्द्रियों) के विषयों से वियुक्त होने पर प्रत्याहार सम्भव होता है। इन्द्रियगण के जब निष्कर्म की स्थिति में आ जाने से चित्त में इन्द्रियाँ लय को प्राप्त हो जाती हैं, तब इन्द्रियगण का मन के स्वरूप को प्राप्त हो जाती है ओर इनके लिये अलग कोई कार्य नहीं रहता। इन्द्रियगण के विषयों से प्रत्यावर्तन करने का नाम ही 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार बाहर से भी होता है और भीतर से भी होता है।

चित्त में धारणा-शक्ति प्रबल होने से हम लोग किसी एक विषय पर दीर्घ समय तक एकाग्रता के साथ रह सकते हैं। बाहर से प्रत्याहार का साधन होने से अधिक फल लाभ नहीं होता है। चक्षु बन्द करने से रूप दर्शन क्रिया बन्द होती है। यह कच्चा प्रत्याहार है। क्योंकि उस समय भी मन से तुम दर्शन कर सकते हो। लेकिन मन से दर्शन क्रिया बन्द करना यह पक्का प्रत्याहार है। कच्चा प्रत्याहार टूट जाता है। लेकिन पक्का प्रत्याहार टूटता नहीं। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार का साधन सम्भव होता है। प्रत्याहार-सिद्धि से इन्द्रिय संयम की सिद्धि होती है। इन्द्रिय संयम के बिना सर्व प्रकार की साधना ही विफल हो जाती है। मैंने गुरुदेव के उपदेश से प्रत्याहार साधना शुरु कर दी थी और यथासमय इसकी सिद्धि मिल गई थी। इस की सिद्धि में सब ही को देर लगती है। मुझे भी काफी

देर लगी थी।

इस रूप से मेरे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी गिरि ने राजयोग की शिक्षा प्रत्याहार तक क्रमानुसार दी थी। मेरे दोनों गुरुदेव स्वामी ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि ने मुझ पर असीम कृपा की थी। दोनों का ही मैं आभारी हूँ। दोनों ने एक महीने भर आबू पर्वत में रहने के लिये मेरे ऊपर आश्रम का भार छोड़ दिया और चाणोद से प्रस्थान किया। यहाँ एक महीने एकान्त में रहकर साधना के लिये समय मिला। गुरुओं का आदेश था कि एक महीने की समाप्ति पर स्वामी धर्मानन्द के यहाँ आने पर उनके ऊपर आश्रम का भार छोड़ कर अहमदाबाद में वहाँ के दुग्धेश्वर मन्दिर में जाकर हम दोनों से मिलना। वहाँ हम लोग धारणा, ध्यान और समाधि के विषय में शिक्षा मिल जायेगी।

मैं तदनुसार चाणोद आश्रम में ही रहा और एकान्त जीवन पाकर हठ-योग और राज-योग के अनुसार साधना करने लगा। एकान्त साधना से बहुत ही उपकार हुआ। महर्षि पतंजलि की उक्ति ही ठीक है। जिनके संगत में हम लोग हमेशा रहते हैं उन्हीं के दोष या गुण हमारे अन्दर आने लगते हैं। निरन्तर भगवत्-चिन्तन करने से चित्त भगवत्-भाव में रूपान्तरित हो जाता है। मन्त्रों की अर्थ चिन्ता कर के निरन्तर जप और ध्यानादि करने से हमारी बुद्धि विषयों को छोड़ कर ईश्वराभिमुखीन होती है। इस बुद्धि या चेतना का नाम प्रत्यक् चेतना है। इस प्रत्यक् चेतना के आने पर योग- साधना के अन्तराय और विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

32. योगसाधना के अन्तरायः– योग साधना के अन्तराय नव प्रकार के हैंः- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। ये अन्तराय साधना में विघ्न डालते हैं। चित्त में विक्षेप लाते हैं और चित्त को स्थिर होने नहीं देते हैं। चित्त को स्थिर करना ही साधना है। ये नव प्रकार के अन्तराय रहने से चित्त स्थिर नहीं हो सकता। अपितु चंचल होता है। इन अन्तराय और विघ्नों को हटाने के लिए मैंने बहुत प्रकार से सोच-विचार करके कुछ उपाय ठीक कर लिये थे। ये उपाय बहुत ही

उपयोगी मालूम पड़े।

1. व्याधिः- शारीरिक अस्वस्थता का नाम व्याधि और मानसिक अस्वस्थता का नाम आधि है। व्याधि के साथ आधि का निकट सम्बन्ध है। शरीर अस्वस्थ होने पर मन भी अस्वस्थ हो जाता है। शरीर और मन अस्वस्थ होने पर साधना असम्भव है। स्वास्थ्यकर, पुष्टिकर और सुस्वादु आहार परिमित रूप से ग्रहण करने से शरीर स्वस्थ होता है और भगवत्-संगति और स्तवन-स्तुति से मन स्वस्थ होता है।

2. स्त्यानः- साधना कर्तव्य है और आवश्यक है। इसको जानते हुए भी साधना में बहुत आदमी तत्पर नहीं होते हैं। क्योंकि साधना के लिए इच्छा पैदा नहीं होती है। इसी का नाम स्त्यान है। कठोर पुरुषकार, अध्यवसाय और मानसिक बल के प्रयोग से स्त्यान को हटाना चाहिए।

3. संशयः- जिस कार्य में संशय है, उस कार्य को उत्साह और उद्यम के साथ करना कठिन है। इसलिए प्रथमतः संशयभंजन की आवश्यकता है। शास्त्रों के उपदेश, गुरु के आदेश, विवेक बुद्धि से आलोचना आदि के द्वारा संदेह भंजन होता है ।

4. प्रमादः- सामाधि-लाभ के लिए गुरु से जो कुछ साधन प्रणाली जानी जाती है वह सब कुछ भूल जाना, साधना को छोड़ देना और पुनः पुनः विषय-भोग में लिप्त हो जाना, इसी का नाम प्रमाद है। ऐसी भूल फिर नहीं हो, आत्म-विस्मृति न हो, इसलिए अनुताप आने से ही साधना-भंग के कारण कौन-सा सर्वनाश हुआ इस पर बार-बार चिन्तन करना और इसके प्रायश्चित के लिए दो दिन उपवास के बाद दृढ़ संकल्प के साथ साधना का अभ्यास आरम्भ कर देना कर्तव्य है।

5. आलस्यः- शरीर में दोष होने से ही आलस्य आ जाता है। शरीर साधना करना नहीं चाहता है। आसन आदि के अभ्यास में अप्रवृत्ति आती है। लेटे हुए रहना ही अच्छा मालूम पड़ता है। मन में भी ऐसे आलस्य का आ जाना, भगवत् विषयक चिन्तन करना कठिन होना, ध्यानादि में भी अप्रवृत्ति आना,

तमःगुण की वृद्धि से शरीर और मन की इस रूप की अवस्था हाने से तमःगुण के प्रभाव और आलस्य को हटाने के लिए किसी निर्जन स्थान में बैठकर एक हजार बार गायत्री मन्त्र का जप करना पर्याप्त है।

6. अविरतिः- विषय-भोग से विरति न होना अविरति है। विषय-भोग में मग्न हो जाना भी अविरति है। अविरति त्याग करने के लिए विषय का विषमय फल बार-बार चिन्तन करके साधन में व्रती हो जाना चाहिए। विषय भोग के संकल्प छोड़ने से विषयासक्ति कम हो जाती है।

7. भ्रान्ति-दर्शनः- भूल का अनुभव होना ही भ्रान्ति-दर्शन है। सत्य को मिथ्या समझना और मिथ्या को सत्य समझना भ्रान्ति-दर्शन है। शरीर को आत्मा समझना, नश्वर शरीर को चिरस्थायी समझना, दूसरे सम्बन्धी जनों को चिर साथी समझना भ्रान्ति-दर्शन है। साधना करने से अन्तर्दृष्टि का लाभ होता है और इससे ही भ्रान्ति दर्शन दूर होता है।

8. अलब्धभूमिकत्वः- योग-साधना करते करते किसी उच्चतर स्थिति में पहुँचने में असमर्थ होना अलब्ध- भूमिकत्व है। पुरुषार्थ और अध्यवसाय व्यर्थ नहीं होता है। इस पर पूर्ण विश्वास रखकर ही साधना में लगे रहने से ही यथासमय उत्कर्ष समक्ष आ जायेगा।

9. अनवस्थितत्वः- किसी उच्चतर स्थिति के लाभ करने पर भी उसमें दीर्घ काल तक चित्त उन्नत और स्थिर नहीं रहता। उससे फिर नीचे आ जाता है। अध्यवसाय के साथ फिर उच्च स्थिति में ले जाने के लिए दृढ़ संकल्प धारण करने से यह हट जायेगा।

मैंने आश्रम में एक महीने तक एकान्तवास का सुयोग पाकर इन सब साध न-विरोधी स्थितियों पर बहुत गम्भीर रूप से चिन्तन किया था। ये सब रजः और तमः प्रभाव से ही आते हैं और चित्त को इतस्ततः विक्षिप्त कर देते हैं और चित्त को एकाग्र होने नहीं देते। मैंने अच्छी तरह समझ लिया था कि ईश्वरोपासना और योगांगों के सम्यक् अनुष्ठान से ही साधक इस स्थिति से पार हो सकता है।

33. योग-साधना के विघ्नः– इन 9 अन्तरायों के अलावा चित्त

में विक्षेप उत्पादनकारी 4 प्रकार के विघ्न हैं । ये विघ्न भी साधक को उत्कर्ष से वंचित रखते हैं। ये 4 विघ्न इस प्रकार हैं:- दु:ख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व और श्वास-प्रश्वास।

1. दु:ख:- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आभिौतिक इन तीन दु:खों का नाम ही त्रिताप है। शारीरिक और मानसिक पीड़ा का नाम ही आध्यात्मिक दु:ख है। दूसरे प्राणी से प्राप्त दु:ख का नाम ही आधिभौतिक दु:ख और प्राकृतिक दुर्योग से प्राप्त दु:ख का नाम आधिदैविक दु:ख है।

2. दौर्मनस्य:- त्रिविध दु:ख या ताप से पीड़ित होकर साधक कभी कभी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं । चित्त दु:ख के कारण अभिभूत हो जाता है। इसी का नाम दौर्मनस्य है।

3. अंगमेजयत्व:- त्रिविध दु:ख या ताप के कारण साधक का शरीर कभी कभी कम्पित होने लगता है। मन अस्थिर हो जाता है, शरीर भी अस्थिर हो जाता है। इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार के कम्पन साधक को अभिभूत करते हैं।

4. श्वास-प्रश्वास:- दु:ख के कारण साधक के श्वास-प्रश्वास भी चंचल हो जाते हैं। इनके चंचल होने से योगसाधना चल हो जाती है। प्राणायाम के द्वारा यह श्वास -प्रश्वास का क्लेश दूर हो जाता है।

34. उपाय समूह:– इन सब अन्तराय और विघ्नाों को दूर करने के लिये बहुविध उपाय हैं। ऋषि पतंजलि ने एक तत्व के अभ्यास का आदेश सर्व प्रथम दिया है।

35. एक तत्व का अभ्यास:– इन दोनों अन्तरायों और विघ्नों के निवारण के लिये किसी अभिमत मनोरम या प्रीतिकर तत्व का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के समय मन दूसरी किसी वस्तु के प्रति धावित न हो। इसको ध्येय वस्तु में ही आबद्ध रखना चाहिये। इन्द्रियों के किसी (विषयवस्तु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) पर ध्यान करना निरापद नहीं है। इससे विषय वस्तु के प्रभाव के कारण मन चंचल भी हो सकता है। भगवान् के गुणों पर ध्यान जमाना ही निरापद् है। लेकिन स्थूल से सूक्ष्म की तरफ जाने का ही विधान है। भगवान् द्वारा

रचित इस विराट्, विशाल और विस्मयकर विश्व के समग्र स्थूल रूप में ध्यान करने का विधान है। मनुष्य रचित किसी वस्तु पर ध्यान से विपरीत फल होता है। एक तत्त्वाभ्यास में भगवत्तत्व ही सर्वोत्तम है। इससे शरीरिक यन्त्र और क्रियायें एकतान में आती हैं। शरीर और इन्द्रियों के द्वारा भगवान् के आदिष्ट कर्म करने से और उनके प्रति लक्ष्य रखने से एकतत्त्वाभ्यास हो जायेगा। आसन, मुद्रा और प्राणायामादि के द्वारा साथ-साथ शरीर, मन और श्वास-प्रश्वासादि को स्थिर करने से चित्त का विक्षेप नष्ट हो जाता है। भगवान् के प्रति श्रद्धा भक्ति नहीं रखने से ईश्वर तत्त्व या एक तत्त्व लाभ करना कठिन है। जो कुछ हो, ईश्वर में एक तत्त्वाभ्यास करना ही सर्वोत्तम है।

36. चित्त की प्रसन्नता:– चित्त की प्रसन्नता आने से भी मन स्थिर हो जाता है। चित्त की प्रसन्नता के लिए ऋषि पंतजलि ने विधान किया है:- मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करो। इससे मन एकाग्र होकर स्थिर हो जाता है। दूसरे के सुख से अपने अन्दर सुख बोध करना मैत्री है। दूसरे का दु:ख देखकर अपने अन्दर दु:ख का बोध करना करुणा है। दूसरे के पवित्र कार्य को देख कर आनन्द का अनुभव करना मुदिता और दूसरे के पाप कार्य को देखकर उपेक्षा करना मानो तुमने देखा ही नहीं। इस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से भी मन सुस्थिर हो जाता है। इनके अभ्यास से चित्त धीरे- धीरे शान्त और सुस्थिर होता है।

37. प्रच्छर्दन और विधारण:– भीतर के वायु को कौशल से बाहर कर देना प्रच्छर्दन है। इससे और प्राण को संयत करने से चित्त स्थिर होता है। प्रच्छर्दन का कौशल यह है:-

1. श्वास को धीरे-धीरे भीतर लेना।
2. प्रश्वास को धीरे-धीरे छोड़ते रहना।
3. उस समय शरीर को सम्पूर्ण स्थिर और शिथिल रखना।
4. मन के अन्दर कोई चिन्ता न रखना।
5. मन को संकल्प हीन रखना और मन में शून्यवत् भावना रखना। इसी का नाम

रेचन है।

रेचन के बाद वायु को झटपट पूरण न करना, बाहर ही कुछ समय धारणा करना, मन को शून्यवत् रखना, इसी का नाम विधारण है। सहज भाव से पूरण करना, धारण करना और रेचन करना ही कौशल है। इससे भी मन की स्थिरता आ जाती है।

38.ज्योतिध्यानः— मन के अन्दर स्वच्छ अनन्त आकाश के सदृश्य विराट् और विशाल ज्योति का ध्यान करना। मेरी सभी दिशायें ज्योति से परिपूर्ण हैं। इस भावना में दृढ़ रूप से अभ्यस्त होने से मन में परम शान्ति का आविर्भाव होगा और उसके प्रभाव से मन शान्त और सुस्थिर हो जायेगा।

39. महापुरुषों का चिन्तनः— वीतराग महापुरुषों के पवित्र मनोभावों की धारणा करने की प्रचेष्टा से चित्त अनासक्त हो जाता है और इस भाव के ध्यान करने से भी चित्त सुस्थिर हो जाता है।

40. चित्त का वशीकरणः— जब योगी अपने चित्त को परमाणु से लेकर महतत्व तक किसी वस्तु में स्थापन करने के लिए समर्थ हो जाता है, तब उसे वह असाधारण क्षमता प्राप्त होती है, मानो सब वस्तुओं पर उसका अधिकार हो गया हो।

चित्त को सुस्थिर करने से 9 प्रकार के अन्तराय और 4 प्रकार के विघ्न दूर हो जाते हैं, जो सब साधना को नष्ट कर देते हैं। इसलिए इनके विनाश के लिए इन सब प्रणालियों और पद्धतियों का ऋषियों ने आविष्कार किया है। आज तक भारतीय आध्यात्मिक साधना इन सब नियमों पर ही चल रही है।

41. चित्तपाठः— साधकों के लिए अपने और दूसरे के चित्तों का पाठ करना आवश्यक है। चित्तों में नाना प्रकार के संस्कार पड़े हुए हैं। उन संस्कारों से ही कामना और वासना की उत्पत्ति होती है। जिसने पूर्व जीवनों में बहुत असत् कार्य या सत् कार्य किया है, उसके चित्त में उन सत् या असत् कार्यों का संस्कार जमा हुआ है। उनके मन में उन सत् या असत् कार्यों की वासना उठेगी। हर एक

मनुष्य के मन में जो-जो वासनायें हैं, वे सब चित्त के संस्कार से आती हैं। जिसने पूर्व जीवन में चोरी के संस्कारों का संग्रह करके रखा है, इस जन्म में उसमें चोरी की इच्छा जमा होगी और वह चोर बनेगा पूर्व जन्मों में जिन्होंने दान किया था, उनके चित्त में उस दान का संस्कार जमा हुआ है और इस जन्म में उसमें दान का संस्कार जागेगा और वे दान करेंगे। चित्त के संस्कार के अनुसार बाध्य होकर लोग विभिन्न कार्य करते हैं। हम लोग यदि इस जीवन में सत् कार्य करते हैं तो पर जीवन में हमारे अन्दर सत् कार्य करने की वासना उत्पन्न होगी।

योगी साधकों को चाहिये कि चित्त में जब-जब, जिन-जिन वासनाओं का उदय हो, तब-तब उनके प्रति ध्यान रखें। इस रूप से धीरे-धीरे उनके अन्दर चित्त-दर्शन का अभ्यास आ जाएगा । तब वे आसानी से समझ सकेंगे कि पूर्व जन्म में हम कौन सी प्रकृति के जीव थे। इस रूप से चित्त पाठ करना बहुत आनन्ददायक है। अपने चित्त के पाठ के साथ ही दूसरे के चित्त का पाठ भी करते जाना चाहिये। ऐसे चित्त-पाठ में अभ्यस्त हो जाने से तब कौन किस प्रकृति का है, उसको आसानी से समझ सकोगे और उसके प्रति यथायोग्य व्यवहार कर सकोगे। इस जन्म के कार्यों का विचार करके हम अगले जन्म में क्या होंगे, इस बात को भी समझ सकेंगे।

42. भगवत्-तत्त्वः– साधना के लिये ईश्वर-विषयक किसी तत्त्व को लेकर अभ्यास करने से हमारे सब के सब विक्षेप नष्ट हो जायेंगे और चित्त निर्मल और एकाग्र हो जायेगा। चित्त की स्थिरता और एकाग्रता ही साधना की मूल वस्तु है। प्रतिक्षण चित्त की संस्कार-वृत्ति के उदय के प्रति ध्यान रखने से एक तत्त्वाभ्यास सुगम हो जाता है। यह भी उत्तम साधना है। भगवत्तत्त्व सर्वतत्त्वों से ऊपर है। प्रकृति के चतुर्विंशति तत्त्वों के किसी एक तत्त्व को लेकर साधना करने से ही तत्त्वाभ्यास का फल मिलेगा। लेकिन भगवान् के असंख्य तत्त्वों या स्वरूप को लेकर योग-साधना करने से चरम फल अतिशीघ्र मिल सकता है। इस प्रकार प्रकृत-भोगी और प्रकृत-भक्त एक ही पथ के पथिक बन जाते हैं।

43. योग-विद्या का गुरुत्वः– मेरे गुरुदेव श्रीमत्स्वामी ज्वालानन्द

पुरी ने मुझको योग विद्यार्थी शिष्य के रूप में प्राप्त कर जो उपदेश दिया था, वह आज तक मेरे हृदय में उज्ज्वल रूप से विद्यमान है। उन्होंने कहा थाः-

''चित्तवृत्ति का निरोध करना ही योग है।'' यह योगसाधन ही मानव-जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। योगसाधन के लिये ही हमको मनुष्यजीवन मिला है। पशुवृत्ति चरितार्थ करने के लिये मनुष्यजीवन नहीं है। मनुष्यजीवन अति दुर्लभ है। अनेक सुकृतों और भगवान् की कृपा से हमको मनुष्यजीवन मिला है, अतः मानवदेह से मानवोचित कार्य करना ही आवश्यक है। पशुवृत्ति से पशुवृत्ति की तृप्ति नहीं होती है, अपितु इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती है, जिससे अधिक से अधिक कष्ट मिलता है।''

''चित्तवृत्ति क्या है? चित्त के स्रोत का नाम ही चित्तवृत्ति है। कामना ही चित्तवृत्ति है। जिसका चित्त जितना चंचल है उसको उतना ही कष्ट मिलता है। जिसके चित्त में कामना नहीं है, वह ही सुखी है। विषय वासना ही दुःख का मूल हेतु है। जिसमें जितना वैराग्य है, वह उतना ही सुखी है। विषयों में आसक्ति-हीन होना ही वैराग्य है। विषयाक्ति से ही संस्कार बनता है। संस्कार ही दुःख-कष्ट का मूल है। हम लोग अनादि काल से संस्कारों का संचय कर रहे हैं। संस्कार के अनुसार अनादिकाल से हम लोगों ने लाखों प्रकार के देहों को धारण किया है और कर रहे हैं। संस्कारों को दूर करने के लिये ही साधना की आवश्यकता है और इस साधना का नाम ही योग साधना है। योग-साधना के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करना ही मूल साधना है।''

''विषयासक्ति ही पाप है। विषयासक्ति ही हमको पाप की तरफ ले जाती है। विषयासक्ति के कारण रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध हमारे अन्दर चित्त में छाप दे देते हैं और वह छाप अनन्तकाल के लिये रह जाती है। वह छाप ही संस्कार है। अनन्तकाल से यह छाप संचित हो रही है। इसी का नाम कर्माशय, हृदयग्रन्थि या अविद्या का बन्धन है। इस कर्माशय से ही वासना का उद्रेक होता है। उस वासना के अधीन होकर ही हमारी इन्द्रियाँ परिचालित होती हैं। इस वासना का प्रतिरोध करना साधना का विशेष अंग है। संस्कार के क्षय होने से ही चित्त-शुद्धि

होती है और चित्त-शुद्धि होने से ही चित्तवृत्ति का निरोध होता है। इसी का नाम योग है।

"मानवजीवन योग-सिद्ध न होने से मानवजीवन बेकार बन जाता है। दयानन्द! तुमने योग साधना के द्वारा इस मानव-जीवन को सार्थक और धन्य करने के लिये ही संन्यासाश्रम ग्रहण किया है। तुम्हारा जीवन योगविद्या के द्वारा धन्य हो जायेगा।"

44. योगसाधना की प्रस्तुतिः— मेरे गुरुदेव श्रीमत्स्वामी शिवानन्द गिरि ने मुझे योग शिक्षार्थी शिष्य रूप में पाकर जो उपदेश दिया था, वह भी आज तक मेरे हृदय में उज्ज्वल रूप से विद्यमान है। उन्होंने कहा था:-"दयानन्द! योगविद्या शिक्षा के लिये ही तुमने पितृगृह छोड़ा है। यह तो वैराग्य का परिचय है, लेकिन केवल वैराग्य से ही योग विद्या का लाभ नहीं होता है। इसके साथ अभ्यास भी चाहिये। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही योग अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध होता है। अभ्यास के बिना कोई कार्य सफल नहीं होता। कार्य में जितना कठोर अभ्यास करोगें, उस कार्य की सिद्धि उतनी ही शीघ्र सफल होगी। बार बार निष्ठा और श्रद्धा के साथ कार्य की सफलता के लिये यत्न करना ही अभ्यास है। अभ्यास के ऊपर कार्य की सिद्धि निर्भर करती है। अभ्यास से जो सिद्ध नहीं हुआ हो, ऐसा कोई कार्य नहीं है। जो विद्यार्थी उत्तमरूप से विद्याभ्यास करता है वह उत्तम रूप से विद्यालाभ करता है; इसी प्रकार योग-अभ्यास उत्तमरूप से करने से उत्तम योगी बन जाओगे।"

"योगाभ्यास ही श्रेष्ठ अभ्यास है। योगसाधना के बिना परम सुख-प्राप्ति का दूसरा उपाय नहीं है। धैर्य के साथ अभ्यास करना है। बहुत से शिक्षार्थी कुछ काल तक साधना और अभ्यास करने के बाद धैर्य खो बैठते हैं और योगसाधना छोड़-छाड़ कर चले जाते हैं। योगसाधना चाहे जितना भी कठिन हो, इसको छोड़ना नहीं। कार्य चाहे जितना ही कठिन हो, अभ्यास करते-करते वह सुगम हो जाता है। बालक हो, युवक हो या वृद्ध हो तुमको अष्टांग योगसाधना करना ही पड़ेगा। सुख और शान्ति के लाभ का दूसरा रास्ता नहीं है। जो वृद्ध हो गया है

और अन्त तक व्यर्थ समय नष्ट किया है, उसके लिये भी चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आयु अगर एक दिन के लिये भी बाकी रहे तो भी योगसाधना से विमुख नहीं होना चाहिये। एक दिन के लिये योग साधना करने के बाद भी अगर मृत्यु हो जाय, तो भी वह श्रेयस्कर है, क्योंकि तुम उत्कृष्ट योगी के वंश में जन्म लोगे। मृत्युकाल से भी अगर योग-साधना की प्रबल आकांक्षा रहे तो दूसरे जन्म में तुम निश्चित रूप से ही उत्तम और अनुकूल देह लाभ करोगे। प्रभु तुम्हें ऐसा अवसर दे देंगे कि तुम सत्संग में रहकर योग-साधन में सिद्धि-लाभ करोगे।''

''हताश या निराश नहीं होना चाहिये। भगवान् के ऊपर सब न्यस्त करके योग-साधना में व्रती हो जाओ। वृद्ध के लिये एक ही बात है। इतने दिन आयु को वृथा नष्ट कर दिया है। जीवन की आधी आयु निद्रा में खो दी, शेष आध ी को बाल्यकाल के लड़कपन में यौवन को सब सम्बन्धियों के कृतदासत्व में खो दिया। अब वृद्धावस्था में रोग, शोक और जरा से आक्रान्त होकर, शरीर और मन का बल खोकर दुश्चिन्ता में चारों तरफ निराशा का अन्धकार देख रहे हो। लेकिन डरो मत, मन में साहस रखो। भगवान् की शरण में आ जाओ, पाप कार्यों को बिलकुल छोड़ दो। इस मुहूर्त से ही योगाभ्यास में प्रयत्नशील हो जाओ। तुम्हारा मंगल होगा।''

''दयानन्द! केवल मात्र योगाभ्यास से ही काम नहीं चलेगा। इसके साथ ही साथ वैराग्य भी चाहिये। विषयों के प्रति वैराग्य नहीं होने से मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य या परमानन्द नहीं मिलता। वैराग्य के बिना केवल अभ्यास से योग की सिद्धि नहीं होती है। इन्द्रियों को यदि-विषयों से निवृत्त नहीं कर सकोगे, विषय-लालसा से इन्द्रियों को यदि संयत नहीं कर सकोगे तो योग-साधना कठिन हो जायेगी। इन्द्रियों को संयत रखो, पशु वृत्तियों को छोड़ दो, योग में सिद्धि-लाभ करोगे।''

45. एक महीने की एकान्त साधना:— दोनों गुरुओं के आबू पर्वत पर चले जाने के बाद मुझको एक महीने के लिये चाणोद आश्रम में अकेले ही रहना पड़ा। इस एक-महीने में मुझको एकान्त और निरसंग साधना में निमग्न

रहने का अवसर मिल गया था। अष्टांग राजयोग के बहिरंग साधन- यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार के अभ्यास और अनुशीलन में ही यह एक मास बीत गया। दुग्धेश्वर मन्दिर में जाकर उन लोगों से अन्तरंग-साधना; धारणा, ध्यान, समाधि की शिक्षा ग्रहण की जायेगी, ऐसा ही तय हुआ था। श्रीमान् स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने मुझे हठ योग की शिक्षा देने के समय कहा था कि यम-नियम साधना के द्वारा योगविद्या का बीज रोपा जाता है। आसन, प्राणायाम के द्वारा वह अंकुरित होता है, प्रत्याहार के द्वारा वह पुष्पित होता है। और धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा वह फलवान् होता है। हठयोग के द्वारा इसके वृक्ष की स्थिति में आवेष्टनी के रूप में शारीरिक और मानसिक क्लेश से साधकों को बचाया जाता है। मैं दिन और रात के अधिकांश समय में योग-साधना में ही व्यस्त रहता था।

46. एक दिन की घटना:— चाणोद में रहने के समय मैं दिन में केवल जल-मिश्रित दूध पी लेता था और रात को थोड़े फल खा लेता था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता था । हम सब आश्रमवासियों के लिये अगल-बगल के गाँवों के रहने वाले लोग दूध भेज देते थे। दोनों गुरुओं के चले जाने के बाद ग्रामवासियों ने समझा कि आश्रम में कोई आदमी नहीं है, इसलिये दूध लाना बन्द कर दिया था। पहिले दिन तो केवल जल पीकर और फल खाकर ही मैंने दिन काट दिया था। दूसरे दिन एक दुग्धवती गाय कहीं से भागकर मेरी कुटिया के सम्मुख खड़ी होकर रम्भाने लगी। पीछे से वहाँ गाय के स्वामी दो भाई भी पहुँच गये॥ गाय के स्वामियों ने कहा कि ''इस गाय का दूध प्रतिदिन आश्रमवासियों की सेवा में भेजा जाता था। हम लोगों ने सुना था कि आप लोग सब के सब कहीं चले गये हैं, इसलिये ही कल दूध नहीं भेजा गया था। आज सवेरे ही गाय भाग गई। ढूँढते-ढूँढते यहाँ आकर गाय को देखते हैं। हम घर जाकर आपकी सेवा में दूध भिजवा देंगे।'' लेकिन गाय आश्रम को छोड़कर घर जाना नहीं चाहती थी। हम सबने समझ लिया था कि कल हमने दूध नहीं पिया था, इसलिये आज हमको दूध पिलाकर ही गाय घर को जायेगी। बछड़ा वहाँ लाया गया, दूध दुहा गया और मुझको दूध पिलाने के बाद गाय बछड़े को लेकर

मालिकों के साथ अपने घर चली गयी। तब से आश्रम में जब तक मैं रहा, तब तक प्रतिदिन मेरे लिये दूध का प्रबन्ध हो गया था। मुझको याद आया ''प्रभु जिसका कोई नहीं है, उसके तुम तो हो।''

47. दूसरी घटनाः— चाणोद में आश्रम से थोड़ी दूर नर्मदा के किनारे एक दिन मैं बैठा हुआ प्रकृति माता की शोभा को देख रहा था। नदी के उस पार से एक नाव यात्रियों से भरी हुई इस पार आ रही थी। जब इस पार आने में थोड़ी ही दूरी शेष थी, तभी अचानक तूफान आ गया। यात्री लोग चिल्लाने लगे। यात्रियों के डर के मारे हिलने-डुलने के कारण घाट से थोड़ी दूर पर नदी के अन्दर पानी नाव से ऊपर उठने लगा और देखते-देखते नाव पानी से भर गई। नाव नीचे मिट्‌टी में अटक गई, नाव के ऊपर से पानी जोर से बहने लगा। तूफान व तरंगों के कारण कोई भी यात्री नीचे नहीं उतर सका। सबके सब चिल्लाने लगे और माताएँ छोटे-छोटे शिशु-सन्तानों को अपनी अपनी छाती से जोर से चिपटाती हुई रोने लगीं। नाव के माँझी लोग पानी में कूद पड़े और नाव को खींचने लगे। लेकिन नाव मिट्‌टी में धंस गई थी। मैं प्रकृति माता के इस भयंकर दृश्य को और अधिक देर तक नहीं देख सका क्योंकि यह भयंकर करुण दृश्य था। माताएँ सन्तानों को छोड़ना नहीं चाहती थीं। मेरी आंखों में आंसू आ गये और मैं पानी में कूद पड़ा तथा— ''ओं बलमसि बलं मयि धेहि'' बोलकर नाव को खींचकर आधी नाव को मिट्‌टी से ऊपर उठा दिया। सब यात्री लोग व मांझी लोग चकित रह गये । मैंने स्मरण किया— ''प्रभो! तुमने मेरे अन्दर इतनी शक्ति रखी है, यह मूझे मालूम ही नहीं था, इस शक्ति से तुम्हारी सेवा कैसे होगी, बता दो।'' यजुर्वेद के इस मन्त्र को तो मैंने लड़कपन में ही पढ़ा था, परन्तु इसका महात्म्य आज ही समझ सका। तदनन्तर मैं नदी के किनारे से शीघ्र चल पड़ा और सबकी दृष्टि से ओझल हो गया।

48. तीसरी घटनाः— चाणोद से मैं कर्णाली के सोमनाथ के मन्दिर में किसी योगी साधु से मिलने के लिये आया था। वहाँ मेला लगा हुआ था। मेले के बाहर देखा कि एक कोढ़ी पड़ा हुआ है। कोई कह रहा था कि यह तो मर

गया और कोई कहता था कि यह अब भी जिन्दा है। पता चला कि मन्दिर के अन्दर कोढ़ी का प्रवेश निषिद्ध है और यह अनजाने में वहाँ घुस गया था। मन्दिर में पुलिस वालों ने उसको मारते-मारते बाहर निकाल दिया। यहाँ तक आकर बेचारा गिर पड़ा। कोई कहता था कि उसके पैरों में रस्सी बांधकर नदी के किनारे छोड़ दो, कोई कहता था कि इसको पानी में बहा दो, मछलियाँ खा लेंगी और कोई कहता था कि उसको खुले मैदान में फेंक दो, चिडियाँ, जानवर खा लेंगे। मैंने समझ लिया कि यह आदमी अब तक जिन्दा है, क्योंकि वह पानी पीने के लिये ओठों से संकेत कर रहा था। उसके सारे शरीर से खून, पीप व कीड़े निकल रहे थे। इस अवस्था में किसी ने उसे सहायता नहीं दी। नदी से कपड़ा भिगोकर मैं जब उसके मुँह में थोड़ा-थोड़ा पानी डालने लगा तब उसने आँखें खोलीं, लेकिन कुछ बोल नहीं सका। इसी समय सरकारी पुलिस वहाँ पहुँच गई। पुलिस ने कहा-''मेले के बाहर चिकित्सा का स्थान है। वहाँ ले जाने का प्रबन्ध हो तो अच्छा है।'' इस खतरनाक बीमार को ले जाने का कोई प्रबन्ध न था। उसको इस रूप में छोड़ कर चला जाना भी मेरे लिये असम्भव हुआ। तब मुझे यजुर्वेद का मन्त्र याद आया– ''ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि'' प्रभो! तुम सहन-स्वरूप हो, मुझमें सहनशक्ति की स्थापना करो। इस मन्त्र से प्रभु को स्मरण करके मैंने कोढ़ी को पीठ पर उठाकर मेले के बाहर चिकित्सा-केन्द्र में भरती करवा दिया। विदाई के समय कोढ़ी ने अस्पष्ट आवाज में कहा– ''बाबा! मुझे मरने का आशीर्वाद दो।'' इस कथन के साथ ही उसने देह को छोड़ दिया। पुलिस और चिकित्सक ने कहा– ''बाबा जी! अब जो करना होगा, हम लोग कर लेंगे। आप कृपया चले जाइये।'' वहाँ से आकर नदी में स्नान करके मैं सोमनाथ के मन्दिर में योगी-साध ुओं से बातचीत करके दूसरे दिन चाणोद पहुँच गया।

मैंने समझ लिया कि दुग्धेश्वर मन्दिर में दोनों गुरुओं के मिलने से पहले आश्रम छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहिये, क्योंकि सर्व-साधारण की समस्याओं के अन्दर अपने को डालना उचित नहीं है। तब से वहाँ रहने के अन्तिम दिन तक चाणोद आश्रम में रह कर निष्ठा के साथ योग-साधना में ही मग्न रहा,

क्योंकि बाहर के साथ सम्बन्ध रहने से साधना में ढीलापन आ जाता है। क्रियायोग, प्राणायाम, आसन, मुद्रा, धौती, नेति, वस्ति आदि क्रियाओं का अभ्यास करते हुये, मैंने महीने के शेष दिन बिता दिये।

49. दुग्धेश्वर मन्दिर में:– निर्धारित दिन में मैं अहमदाबाद आया और यथासमय श्मशान घाट के दुग्धेश्वर मन्दिर में पहुँचकर दोनों गुरुओं स्वामी ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि के चरणों में उपस्थित हो गया। दोनों गुरुओं ने मुझे आशीर्वाद दिया। चाणोद आश्रम के सब ही समाचार मैंने उनको सुना दिये। स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने कहा–''अब स्वामी शिवानन्द गिरि तुम्हें संयम की क्रियात्मक शिक्षा देंगे। संयम में तीन साधनायें हैं– धारणा, ध्यान, समाधि। योग साधना के बहिरंग साधन यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार हैं और संयम अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि योग साधना के अन्तरंग साधन हैं।''

स्वामी ज्वालानन्द पुरी के उपदेश का सारांश

1. प्रथम अंग धारणाः— धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों मिलकर संयम साधनायें हैं। ये ही तीनों मिलकर योग की अन्तरंग साधनाएँ हैं। धारणा का तात्पर्य चित्त को एक स्थान में रखना है, अर्थात् चित्त के अन्दर मात्र एक ही विषय का चिन्तन करना। चित्त में बहुत देर तक एक ही विषय को रखना और दूसरे विषय को नहीं आने देना धारणा है। किसी एक ही विषय का चिन्तन करते-करते चित्त में थोड़ी देर बाद दूसरे विषय के आ जाने से समझना चाहिये कि धारणा नहीं हुई। धारणा भंग हो गई। धारणा न होने से ध्यान नहीं होगा। ध्यान नहीं होने से समाधि नहीं होगी। पहले धारणा है, उसके बाद ध्यान है और ध्यान के बाद समाधि है। चित्त जब बहुत विषयों में न दौड़ता हुआ एक ही विषय में आबद्ध होता है, तब उसका नाम धारणा है। प्रत्याहार-साधना अच्छी प्रकार हो जाने से धारणा ठीक से और अतिशीघ्र होती है। प्रत्याहार साधना से चित्त केवल एक ही विषय में लग सकता है।

हम लोग चित्त को बाहर या भीतर किसी भी स्थान पर आबद्ध रख सकते हैं। बाहर का स्थान सूर्य, चन्द्र, समुद्र, वृक्ष, लताएँ हैं और अन्तरंग विषय नाभि, हृदय, कण्ठ, वक्ष, जिह्वाग्र, नासिकाग्र, भ्रूमध्य व शिरोदेश आदि हैं। ईश्वर निर्मित किसी दृश्य वस्तु या शब्द, ज्योति आदि में धारणा का अभ्यास करना आसान है। किसी वस्तु पर पलकहीन दृष्टि रखने का नाम त्राटक योग है। जब तक चक्षुओं में कष्ट अनुभव न हो, तब तक दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये। यथाशक्ति दीर्घकाल दृष्टि न रखकर जबरदस्ती दृष्टि रखने से आँखों की बीमारी हो जाती है। बहुत से मनुष्य कहते हैं कि जब तक आँखों से आँसू नहीं निकलते तब तक दृष्टि स्थिर रखना चाहिये, लेकिन यह नियम खतरनाक है। चक्षु क्लान्त होने पर आँखें बन्द करके उसी दृश्य का चिन्तन करना चाहिये। प्रातःकाल में या

जाड़े के समय या ठण्डे समय में त्राटक योग का अभ्यास करना चाहिये। प्रतिदिन आँखों में शीतल पानी से छींटे देने चाहिये।

जो लोग शब्द योग से धारणा का अभ्यास करते हैं। वे लोग कानों में अँगुलियों को डालकर चित्त को स्थिर करते हैं। कानों के अन्दर झीं-झीं की आवाज सुनाई देती है। वे लोग एकाग्र मन से उस आवाज को सुनते हैं। दूसरे विषय में ध्यान नहीं देते। धीरे-धीरे सूक्ष्मतर शब्द सुना जाता है और आगे अभ्यास करने से आह्वान ध्वनि सुनी जाती है। इसी का दूसरा नाम 'बिन्दु' है।

इसी प्रकार किसी विषय में धारणा का अभ्यास करना चाहिये। इससे पहले चित्त को निर्मल करके, किसी एक योगासन को आयत्त करके, प्राणगति अर्थात् श्वास-प्रश्वास को काबू में करके, शीतग्रीष्मादि द्वन्द्वसहिष्णु होकर किसी योगासन में सीधे होकर बैठना चाहिये, इसके बाद इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से प्रत्याहार करके उनको चित्त में समर्पित कर देना, इसके बाद चित्त को किसी स्थूल या सूक्ष्म वस्तु में धारण करना। ऐसा प्रयत्न होना चाहिये जिससे उस वस्तु से चित्त हट न जाये। चित्त को बाँधने में समर्थ होने से और इसके स्थायी रूप से रखने में समर्थ होने से ही आगे जाकर वह धारणा ध्यान बन जाएगी।

2. द्वितीय अंग ध्यानः– धारणा में एकतानता आने से ही उसका नाम ध्यान है। खण्ड-खण्ड प्रत्यय या ज्ञानवृत्ति का नाम ही धारणा है। धारणा जलबिन्दुओं की तरह खण्ड-खण्ड ज्ञान है और ध्यान तेल धारा ही तरह एक स्रोत से प्रवाहित एकतान या अखण्ड ज्ञान है। चित्त में चंचलता आने से धारणा खण्ड-खण्ड हो जाती है। ध्यान में चित्त की चंचलता नहीं रहती है और चित्त स्थिर हो जाता है। ध्यान होने से ही समझा जायेगा कि चित्त स्थिर हो गया। चित्त में आवरण और विक्षेप संस्कार जितने कम रहेंगे, उतना ही ध्यान ठीक रूप से होगा। आवरण और विक्षेप आकर ही ध्यान को और समाधि को तोड़ देते हैं। एक तरफ से चिन्ता के संस्कारों को क्षीण करना और दूसरी तरफ ध्यान का अभ्यास करना आवश्यक है। धारणा के समय धारणीय विषय में यदि प्रत्यय की या चित्तवृत्ति की एकतानता आ जाये, तब ही उसका ध्यान है। जिस वस्तु में तुमने बहिरिन्द्रियों को

निरोध करके अन्तरिन्द्रियों को धारण किया है, उस वस्तु का ज्ञान अगर व्यवधानहीन, अनवच्छिन्न और प्रवाहाकार होकर प्रवाहित होता है, तब उस रूप का मनोवृत्ति प्रवाह ध्यान नाम से अभिहित होता है।

3. तृतीय अंग समाधिः— ध्येय विषय का अर्थमात्र निर्भास, स्वरूप शून्य ध्यान ही समाधि है। जप, धारणा, ध्यान, समाधि एक ही हैं। अविरत जप करते-करते जप के गाढ़ और गम्भीर होने से धारणा होती है। अविरत धारणा का अभ्यास करते-करते और धारणा के गाढ़ और गम्भीर होने से ध्यान होता है। अविरत ध्यान का अभ्यास करते-करते ध्यान के गाढ़ और गम्भीर होने से समाधि होती है। धारणा में "मैं ध्याता", "मेरा ध्यान" और "मेरे ध्येय इष्ट-देव" ये तीनों रहते हैं। ध्यान में "मैं ध्याता" और "मेरे ध्येय" ये दो रहते हैं। समाधि में "मैं ध्याता" यह भी नहीं रहता केवल 'ध्येय' ही रहता है। समाधि में अस्मित्व लीन हो जाता है, ध्येय में अस्मित्वलय को प्राप्त होता है, तब ध्येय विषय मात्र ही निर्भास होता है। ध्यान, ध्येय अलग नहीं रहता। एक हो जाता है। यह चित्त की सर्वोत्कृष्ट स्थिर अवस्था है। समाधि के बिना आत्मसाक्षात्कार भी नहीं होता है।

4. संयम का स्वरूपः— एक ही विषय पर धारणा, ध्यान और समाधि एक के बाद दूसरा अव्याहत गति से लगातार सम्पन्न होने से उसको राजयोग की भाषा में संयम कहा जाता है। संयम बोलने से धारणा, ध्यान और समाधि एक के बाद दूसरा निरन्तर सम्पन्न होता है, यह समझना चाहिये।

5. संयम-साधन से प्रज्ञालोक लाभः— संयम परिपक्व होने से प्रज्ञालोक अर्थात् प्रज्ञा के आलोक का लाभ होता है। प्रज्ञालोक अर्थात् प्रज्ञा का आलोक अर्थात् समाधिजात प्रज्ञा का आलोक है। यह आलोक प्रकाशित होने से लौकिक ज्ञान और शक्ति लाभ होते हैं। चिन्तनीय विषय सब कुछ जाना जाता है। स्थूल दृष्टि से हम एक ही स्थान की एक ही वस्तु के स्वरूप को जान सकते हैं, किन्तु समाधि ज्ञान से हम उस वस्तु के समग्र स्वरूप को जान सकते हैं, हम किसी व्यक्ति की वर्त्तमान कार्य-प्रणाली और आचार व्यवहार को देख कर

उसके विषय में अति अल्प ही जान सकते हैं। प्रज्ञालोक के द्वारा हम उसी व्यक्ति के समग्र स्वरूप को और पूर्वापर स्थिति को बहुत कुछ जान सकते हैं। इच्छा करने से ही जब संयम आ जाएगा तब ही संयम-जय हो गया, यह कहा जा सकता है। उस संयम को जय करने से अर्थात् श्वास-प्रश्वासादि को ऐसे स्वाभाविक या सम्पूर्णरूपेण आयत्त करने से सर्वभासक आलोक या बुद्धि का प्रकाश आ जाता है, यानी ज्ञान की शक्तिविशेष का प्रादुर्भाव होता है।

संयम, उसका जय और उससे प्रज्ञा नामक ज्ञानालोक की प्राप्ति, इन तीनों बातों के अन्दर बहुत कुछ गुप्त तथ्य विद्यमान हैं। इनके प्रकृत तथ्य और शिक्षा-कौशल को केवल योगी लोग ही जानते हैं। प्राचीन योग भाषा के ''संयम'' शब्द को आज कल की भाषा में ''इच्छा शक्ति'' कह सकते हैं। पतंजलि के राजयोग में पहले धारणा, इसके बाद ध्यान और इसके पश्चात् समाधि है। इस प्रक्रियात्रय के साथ तेजस्विनी निर्मला बुद्धि की सार, स्थानीया इच्छाशक्ति अवश्य ही चाहिए। योगी शिक्षा द्वारा और अभ्यास से उन तीनों प्रक्रियाओं को जय कर लेते हैं। इसी का नाम स्वात्मीकरण है।

6. संयम से स्वात्मीकरण:– स्वाभाविक रूप से कार्य करने का नाम आयत्तीकरण या स्वात्मीकरण है। श्वास-प्रश्वास जैसे स्वाभाविक और स्वात्मीकृत्य कार्य करने में क्लेश नहीं होता हैं। ऐसे ही यदि संयम विना क्लेश के सम्पन्न होता है, तब जाना चाहिये कि 'संयम-सिद्धि' हो गयी है। एवंविध संयम-सिद्ध योगी का संकल्प या इच्छा प्रयोग अमोघ है। ''संयमात् प्रज्ञालोकः'' इस सूत्रभाव को देख कर यह नहीं समझना चाहिए कि संयम से केवल ज्ञान-विकास ही होता है, दूसरा कुछ नहीं होता है। उनके संकल्प से सब कुछ सिद्ध होता है, जो कुछ जीवों के लिए सम्भव है। ज्ञान-शक्ति की वृद्धि होने से क्रियाशक्ति भी बढ़ जाती है, यह तो अव्यभिचारी नियम है। भूतजय, प्रकृतिवशित्व, अणिमादि ऐश्वर्य संयम के प्रभाव की अज्ञात-शक्ति से साबित होते हैं। संयम के द्वारा इच्छाधिकार पूर्ण होता है। संयम के अन्दर महाशक्ति छिपी हुई है। संयम-साधन के समय योगी प्रथम स्थूल विषयों पर संयम प्रयोग करें । पीछे ध

ीरे धीरे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विषयों पर संयम प्रयोग करें। स्थूल अवलम्बन छोड़कर पहले ही सूक्ष्म अबलम्बन नहीं लेना चाहिए। योग शास्त्रों में क्रमिक भूमियों के नाम सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार हैं। योगी संयम के द्वारा विविध ऐश्वर्य और अलौकिक क्षमता प्राप्त करते हैं। लेकिन किस विषय के लिए कैसे संयम का प्रयोग होना चाहिए? कहाँ किस प्रकार का संयम हो? कौन से संयम के कौन से फल हैं? उनको और विविध चित्त परिणामों के विभिन्न विकार-भावों को भी प्रत्यक्षवत् अधिगत कर लेना चाहिए। चित्त व्युत्थान, निरोध और एकाग्रता में किस रूप से रहता है? इसके परिणाम और परिवर्तन किस प्रकार के होते हैं? यह सब कुछ निपुणता के साथ लक्ष्य करना चाहिए। निरोध-काल की चित्तावस्था या चित्त परिणाम जानना बहुत ही जरूरी है। इन सूक्ष्म तत्वों की शिक्षा बहुत ही ध्यान से ग्रहण करनी चाहिए।

स्वामी शिवानन्द गिरि के उपदेश का सरांश

योग विद्या की शिक्षा के लिये एकाग्रता का प्रयोजन है। एकाग्रता सीखने से पहले चित्त को निर्मल बनाना चाहिए। मलिन चित्त योग विद्या शिक्षा के लायक नहीं है। सूक्ष्म वस्तु ग्रहण करने में मलिन चित्त असमर्थ होता है। स्थिर और समाहित नहीं होता है और विक्षिप्त होता है। स्वच्छ शीशा अगर मलिन हो जाये, तो उसमें दूसरी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा। आकर्षण में सूक्ष्म चुम्बक में भी मलिनता रहने से आकर्षण करने की क्षमता से वह वंचित हो जाता है। ठीक उसी तरह चित्त मलिन रहने से वह स्थिर रहने और सूक्ष्म तत्व के ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। रजः तमः गुणों से उत्पन्न ईर्ष्या और द्वेषादि ही चित्त की मलीनताएँ हैं। मलीनता उन्मार्जित न होने से चित्त प्रकाशमय और उज्जवल नहीं होता है, इसलिये ही पहले चित्त को मलीनता से मुक्त करके तब समाधि के अभ्यास में प्रवृत्त होना चाहिए।

1. चित्त को निर्मल करोः— चित्त निर्मल होने से एकाग्र-शक्ति की वृद्धि होगी। दूसरे का सुख देख कर सुखी हो जाओ, ईर्ष्या मत करो अर्थात् मुदित साधन का अभ्यास करो। दूसरे के सुख में सुखी होने का अभ्यास करने से तुम्हारे चित्त से ईर्ष्या मल दूर होगा। जैसे तुम सर्वदा अपने दुःखों का निवारण करना चाहते हो, ऐसे ही तुम दूसरे के दुःखों को दूर करने की इच्छा करते रहो। दूसरे के दुःख में दुःखी होने की शिक्षा लेने से तुम्हारे अन्दर विद्वेष मल नहीं रहेगा। दूसरे के प्रति अपकार करने की इच्छा भी तुम्हारे अन्दर नहीं रहेगी। अपने पुण्य में या अपने शुभानुष्ठान में जैसे हर्षयुक्त होते हो वैसे ही दूसरे के शुभ अनुष्ठान में हर्षयुक्त हो जाओ। दूसरे के पुण्य में और शुभानुष्ठान में हर्षयुक्त होने से तुम्हारे मन में असूया-मल नष्ट हो जायेगा। दूसरे के पाप देखकर उसके प्रति द्वेष मत करो। पाप के प्रति द्वेष करो। घृणा को पाप के प्रति रखो, पापी के प्रति नहीं।

सर्वतोरूप से उदासीन रहो, तब तुम्हारे चित्त से अमर्ष-मल दूर हो जायेगा। सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यवान् के प्रति मुदिता या प्रेम और पापी के प्रति उपेक्षा या औदासीन्य रखो। हर एक राजस और तामस वृत्ति के विरुद्ध सात्विक-वृत्तियों का उदय होगा। इस रूप से तुम्हारा चित्त धीरे-धीरे निर्मल हो जायेगा और अच्छी तरह एकाग्र-शक्ति-सम्पन्न हो जाओगे।

2. भगवत्तत्त्व में चित्त को एकतान करो:– प्राणवायु को आकर्षण करके धारण करना और वर्जन करना इस प्रक्रिया के द्वारा भी चित्त को एकतान किया जा सकता है। पहले गुरु के उपदेश और शास्त्र विधि के अनुसार नासिका के बाहर के वायु को आकर्षण करके परिमित रूप से उसको भीतर ही धारण करो और नियमित रूप से उसको छोड़ दो। इसी का नाम प्राणायाम है। प्राण+आ+यम= प्राण को सम्यक् संयत अर्थात् इच्छानुसार निरोध करना। प्राण यदि इच्छाधीन हो जाये तब तो चित्त को आसानी से अनाकुल और स्थिर किया जा सकता है। क्योंकि सब ही इन्द्रिय-कार्य प्राण के आधीन हैं। प्राण ही श्वास प्रश्वासरूप गति को अवलम्बन करके सब देह-यंत्रों को परिचालित कर रहा है। विभिन्न इन्द्रियों को भिन्न-भिन्न कार्यों में प्रेरणा दे रहा है। खाद्य वस्तुओं को रक्ताकार में परिवर्तित करके प्रत्येक देह-यन्त्र के स्वास्थ्य, बल और स्वभाव की रक्षा कर रहा है। प्राण ही इन्द्रिय चक्र, नाड़ी चक्र और मन का परिचालक है और प्राण ही मन की चंचलता का प्रधान कारण है। प्राण की गति से मन की गति, प्राण के निरोध से मन का निरोध और प्राण की स्थिरता से मन की स्थिरता होती है, प्राण-गति के दोष से मन की गति दोष-युक्त होती है। प्राण-गति यदि अवरुद्ध हो जाये तो मन के दोष भी निवारित हो जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि जो कुछ मनो-दोष, जो कुछ विक्षेप सब प्राणदोष के दोष से उत्पन्न होते हैं। इस गूढ रहस्य को भारतीय योगी लोगों ने आविष्कृत किया था, इसीलिये उन्होंने प्राणायाम का उपदेश दिया है। वह प्राणायाम यदि सुसिद्ध हो जाये, आयत्त हो जाये, तो मन के सब विक्षेप दूर हो जाते हैं। निर्दोष और निर्विक्षेप चित्त अपने आप ही सुप्रसन्न, सुप्रकाशित और

एकाग्र हो जाता है।

3. निर्दोष चित्त से दिव्यज्ञान-लाभः— चित्त निर्मल हो जाने से उसको प्रत्येक विषय में नियुक्त किया जा सकता है और उसको यथेच्छ तन्मय किया जा सकता है। उससे सभी वस्तुओं का साक्षात्कार हो सकता है। यदि चन्द्र या सूर्य में निर्मल चित्त का स्थापन करोगे, तो चन्द्र में या सूर्य में ही वह तन्मय हो जायेगा और चन्द्र तत्त्व या सूर्य तत्त्व का साक्षात्कार कर सकोगे। इसी का नाम दिव्यज्ञान और इसी का नाम योगज-प्रज्ञा है। शिक्षार्थी योगी लोग पहले देह के प्रति मनोनिवेश करते हैं और वे लोग दैहिक तत्त्वों की मानस चक्षु से बहुत सी उपलब्धि करते हैं। इसी प्रकार नासाग्र में चित्त संयम करके दिव्य गंध, जिह्वाग्र में चित्त संयम करके दिव्य रस ज्ञान, ताल्वाग्र में दिव्य रूप, जिह्वा के मध्य में दिव्य स्पर्श और जिह्वा-मूल में दिव्य शब्द के अनुभव होते हैं। इसी रूप से जिस किसी वस्तु में या स्थूल विषय में चित्त संयम करके योगी लोग उस विषय का दिव्यज्ञान प्राप्त करते हैं। इसको स्वयं अनुभव करके ये लोग धीरे-धीरे सूक्ष्मादपि सूक्ष्म विषय में भी चित्त संयम करके उस विषय के सूक्ष्म तत्वज्ञान को प्राप्त करते हैं।

4. विशोका ज्योति का अनुभवः— उदर-कन्दर के ऊपर की ओर हृदय पिंजर के भीतर एक माँस पिण्ड है, उसका आकार लगभग कमल के सदृश है, इसलिये उसका नाम हृत्पद्म है। इस हृत्कमल को रेचक प्राणायाम के द्वारा ऊर्ध्वमुख भावना करके उसके पीछे चित्त को धारण करने से एक प्रकार की ज्योति या आलोक का अनुभव होता है। उस ज्योति की तुलना नहीं है। वह उस तरंगहीन और निःशब्द समुद्र के समान प्रशान्त और मनोरम है, निर्मल और सुशुभ्र है। उसमें सूक्ष्म रूप से क्षण-क्षण में सूर्य-प्रभा, चन्द्र- प्रभा, मणि प्रभा और अन्यान्य अनेक प्रभा स्फुरित होने में देखी जाती हैं। इस आलोक या ज्योति के मनोगोचर होने से किसी प्रकार का शोक नहीं रहता है। इसलिये इस आलोक को 'विशोका'' बोला जाता है। इस विशोका ज्योति का दूसरा नाम बुद्धि सत्त्व और चैतन्य प्रदीप्त अस्मिता (सात्विक अहंकार) है। चित्त हृत्कमल के अन्दर बुद्धि-सत्व

के ध्यान में निमग्न होने से अति शीघ्र सम्प्रज्ञात समाधि या अति उत्कृष्ट योग उत्पन्न होता है।

5. एकाग्रता-शिक्षाः— जिह्वामूल, जिह्वाग्र, ताल्वाग्र, हृत्पद्म, तत्कर्णिकागत नाड़ीचक्र और उसके पीछे के बुद्धिसत्त्व में चित्त संयम करने से जैसी एकाग्रता सिद्ध होती है, ऐसे वीतराग महापुरुषों के चित्तों में संयोग करने से भी एकाग्रता आ जाती है।

एकाग्रता सीखने के लिए किसी मनपसन्द वस्तु या विषय पर ध्यान करना चाहिये। इससे तुम्हारे चित्त में एकाग्रता शक्ति की वृद्धि होगी और इसके अनन्तर ध्येय पदार्थ में चित्त की स्थिरता का अभ्यास करना चाहिए और उसमें अभ्यस्त होने पर तुम जहाँ इच्छा हो एकाग्र हो सकोगे। अन्तर्जगत् के नाड़ी चक्र हो या बहिजगत् के चन्द्र-सूर्य हो, स्थूल हो या सूक्ष्म हो सर्वदा और सर्वत्र ही चित्त को तन्मय कर सकोगे, लेकिन ऐसी वस्तु या ऐसे विषय पर चित्त-संयम मत करो जिसको देखने से या चिन्तन करने से मन चंचल होता है। इस रूप से किसी वस्तु या विषय पर चित्त स्थिर होने से सूक्ष्म परमाणु से लेकर वृहत्तम परमात्मा तक सब विषय ही योगी के लिए ग्रहणीय, प्रकाशित और वशीभूत होते हैं।

6. निर्मल चित्तः— वृत्तिहीन चित्त स्फटिक मणि के समान तन्मय भाव को धारण करता है। जिस रंग की वस्तु में स्फटिक रखा जाता है, उसी रंग से वह रंजित हो जाती है। ठीक उसी तरह निर्मल चित्त जिस वस्तु में या विषय में अर्पित होता है, उसी वस्तु में चित्त समासक्त, स्थिर और तन्मय हो जाता है।

7. एकाग्रता-शिक्षा के नियमः— एकाग्रता शिक्षा का नियम यह है कि पहले इन्द्रियग्राह्य पदार्थ के अवलम्बन से एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञेय वस्तु दो प्रकार के हैं— स्थूल और सूक्ष्म। पहले स्थूल में और पीछे सूक्ष्म में अभ्यास होना चाहिये। पहले स्थूल वस्तु में चित्त को स्थिर करना चाहिए। उसमें अभ्यस्त होने के बाद क्रमानुसार मन, बुद्धि, अहंकार आदि आभ्यन्तरीण वस्तु का अवलम्बन करना चाहिये। इन्द्रियों में चित्त स्थिर हो जाने के बाद

अस्मिता में या जीवात्मा में एकतान होना चाहिये। अन्त में परमात्मा में मनोलय करना चाहिए। इस प्रकार परम्परा-क्रम से अग्रसर होना चाहिये। झट परमेश्वर में समाहित होना असम्भव है। जब देखोगे कि तुम्हारा चित्त कहीं भी प्रतिहत नहीं होता है, सर्वत्र ही स्थिर हो जाता है, तब तुम जानोगे कि तुम्हारा चित्त वशीभूत हो गया है। तब तुम्हारे चित्त को वशीभूत करने के लिये विशेष उपाय का अवलम्बन नहीं करना पड़ेगा। किसी प्रकार का अनुष्ठान भी नहीं करना होगा।

8. सवितर्का समापत्ति:— एकाग्र चित्त से विषय-चिन्ता करने से जो तन्मयभाव आ जाता है, उसी का नाम समापत्ति है। स्थूल वस्तु का अवलम्बन कर ध्यान करने से दो प्रकार की समापत्ति होती है-1. सवितर्का 2. निर्वितर्का। जहाँ शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीन एक साथ मिले हुए रहते हैं, वहाँ सवितर्का समापत्ति है। यह मिश्रित ज्ञान है। यह विशुद्धनिर्मल ज्ञान नहीं है। ''तर्क'' का मतलब शब्दमय चिन्ता है। ''वितर्क'' का मतलब विशेष रूप से चिन्ता है। ''गौ'' यह शब्द केवल शब्दमात्र ही है। इसका अर्थ या ज्ञान सम्पूर्ण पृथक् है। ''गौ'' शब्द का आश्रय वाग् यन्त्र है, क्योंकि यह शब्द वाग्यन्त्र के द्वारा उच्चारित होता है। ''गौ'' शब्द का अर्थ (पदार्थ) चतुष्पद पशु है और यह गोशाला में रहता है। इसका आश्रय स्थल गोशाला है। ''गौ'' शब्द से जाना जाता है कि यह दूध देती है या भारवहन करती है। यह ज्ञान हमारे चित्त में रहता है। ''गौ'' शब्द का आश्रय स्थल वाग्यन्त्र है। अर्थ का आश्रय-स्थल गोशाला है और ज्ञान का आश्रय स्थल चित्त है। शब्द, अर्थ और ज्ञान सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। लेकिन यह सब स्वतन्त्र होने पर भी हम लोग तीनों को मिश्रित रूप से व्यवहार कर ते हैं। इन तीनों को एक ही विषय समझ लेते हैं। इस रूप से तीनों विषयों को अर्थात् शब्द, अर्थ, ज्ञान को एक समझकर जो ध्यान या चिन्ता की जाती है, उसी का नाम सवितर्का समापत्ति है।

9. निर्वितर्का समापत्ति:— हमारी स्मृति में शब्द और अर्थ के एक साथ मिले रहने से उस स्मृति से हमारा वस्तु विषयक यथार्थ ज्ञान नहीं होता। लेकिन अगर हम शब्द को स्मृति से हटा सकते हैं, तो हमारी स्मृति के शुद्ध होने

से हमारे अन्दर अर्थ विषय का शुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। शब्द, अर्थ एक साथ मिला के जो ध्यान होता है, वह सवितर्का और केवल अर्थ का जो ध्यान होता है, उसका नाम निर्वितर्का समापत्ति है। निर्वितर्का समापत्ति में स्थूलभूत का सूक्ष्म ज्ञान होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सूक्ष्म भूत हैं। हम लोग साधारणतः स्थूल भूतों को ही ग्रहण करते हैं। इनके सूक्ष्मांश गृहीत नहीं होते हैं। निर्वितर्का समापत्ति में स्थूल भूतों के सूक्ष्मतम अंश का प्रत्यक्ष होता है। स्थूल भूतों का यह ही सबसे ज्यादा सूक्ष्मांश है। इसी का नाम तन्मात्रा है। यथा शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा। इन सब तन्मात्राओं से स्थूलभूतों की सृष्टि हुई है। तन्मात्राज्ञान ही सत्य ज्ञान है और स्थूल भूतों का ज्ञान भ्रान्तिज्ञान है। हम लोग स्थूल भूतों को जिस रूप से देखते हैं वास्तव रूप से वे ऐसे नहीं हैं। ये तो सब तन्मात्राओं का समष्टि ज्ञान है।

इस प्रकार के भ्रान्तिदर्शन के कारण ही हम लोग विषयों में आसक्त होते हैं। जब यह भ्रान्ति-दर्शन हट जाते हैं और सत्य दर्शन होते हैं, तब विषयों में आसक्ति भी कम हो जाती है। सूक्ष्म भूतों के दर्शन से जो सुख और आनन्द होते हैं, वे स्थूल भूतों के दर्शन के सुख और आनन्द से कोटि गुणा अधिक हैं। इसलिये ठीक-ठीक विषयासक्ति छोड़ने के लिये ध्यान और समाधि के द्वारा सूक्ष्मभूत दर्शन जरूरी है। इस रूप से तन्मात्र दर्शन को निर्वितर्का समापत्ति बोला जाता है। हमारी स्मृति परिशुद्ध न होने से यह सूक्ष्म-दर्शन नहीं होता है। स्मृति के अन्दर शब्द और अर्थ ये उभय ज्ञान रहने से स्मृति मलिन रहती है। इसलिये अभ्यास के द्वारा केवल अर्थ मात्र की ही चिन्ता की जा सकती है और वह अर्थचिन्ता गम्भीर होते-होते अर्थ की तन्मात्रा का दर्शन होता है। केवल शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से जो ज्ञान होता है वह भी यथार्थ ज्ञान है और केवल अर्थ से जो ज्ञान होता है, वह भी यथार्थ ज्ञान नहीं है। इन्द्रियज प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान से जो ज्ञान होता है, वह भी यथार्थ ज्ञान नहीं है, अपितु ध्यान और समाधि से जो ज्ञान होता है वह ही यथार्थ ज्ञान है।

धर्म के बारे में भी एक ही बात है। धर्म के बारे में केवल श्रवण और मनन

करने से यथार्थ धर्म का ज्ञान नहीं होता है। ध्यान और समाधि से परोक्ष-दर्शन होने से यथार्थ धर्म का ज्ञान होता है। धर्मज्ञान निदिध्यासन से ही ठीक-ठीक होता है।

10. सविचार और निर्विचार समापत्तिः— स्थूल अवलम्बन से सवितर्का समापत्ति और निवितर्का समापत्ति होती है, लेकिन सूक्ष्म अवलम्बन से सविचार और निर्विचार समापत्ति होती है। इन चारों समापत्तियों सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा और निर्विचारा समापत्तियों का एक नाम है सबीज समाधि ।

11. सबीज समाधिः— इनमें सवितर्क समाधि निकृष्ट है। उससे निर्वितर्क समाधि श्रेष्ठ है। उससे सविचारा समाधि और उससे निर्विचारा समाधि श्रेष्ठतर है। इस उत्कृष्ट निर्विचारा की योग-साधना में अभ्यस्त और सिद्ध होने से ही चित्त का स्वच्छ स्थिति प्रवाह दृढ़ होता है। इससे किसी प्रकार का दोष, क्लेश या मालिन्य नहीं रहता है। सर्वप्रकाशक चित्त-सत्व तब नितान्त निर्मल होता है। आत्मा तब जानी जाती है। इसी का नाम अध्यात्म विज्ञान है।

12. ऋतम्भरा प्रज्ञाः— समाधिज ज्ञान आने से उत्कृष्ट और निर्मल प्रज्ञा या ज्ञानालोक आविर्भूत होता है, उसी का नाम ''समाधि प्रज्ञा'' है। यह प्रज्ञा केवल ऋत् अर्थात सत्य को ही प्रकाशित करती है। उस समय बिन्दु मात्र भ्रम भी नहीं रहता है। योगी लोग इस ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा सब वस्तुओं का यथावत् साक्षात्कार करते हैं और चरम स्थिति निर्विकल्प समाधि को प्राप्त होते हैं और निर्विकल्प समाधि प्राप्त होकर मुक्त होते हैं।

13. निर्बीज समाधिः— यह सम्प्रज्ञात वृत्ति भी जब अवरुद्ध हो जाती है, तब सर्वनिरोधात्मक निर्बीज समाधि उत्पन्न होती है। दीर्घ समय तक योगी निरोध का अभ्यास करते हैं। इस अभ्यास के बल से योगी का वह शेष अवलम्बन मात्र भी अवरुद्ध या विलीन हो जाता है। चित्त जिस बीज का अवलम्बन करके रहा था, अब वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिये अब निर्बीज समाधि हो गयी। निर्बीज

समाधि जब परिपक्व स्थिति को प्राप्त होती है, तब ही चित्त अपने उत्पत्ति स्थान प्रकृति का आश्रय करता है। प्रकृति स्वतन्त्र होगी और सच्चित प्रकाश पुरुष भी प्रकृति के बन्धन से मुक्त होगा। जन्म-मरण और सुख-दुःख भोग नहीं होगा। भोगायतन शरीर भी तब नहीं रहेगा।

समाधि सिद्धि के लिय क्रिया योग का अनुष्ठान आवश्यक है। अध्यवसाय के साधन करने से सिद्धिलाभ अनिवार्य है।

14. चित्तभूमियाँः– चित्त के स्वाभावानुसार हम सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। हम सत्त्व गुण से सुख का, रजोगुण से दुःख का और तमः गुण से मोह का अनुभव करते हैं। चित्तभूमियाँ पाँच प्रकार की हैंः- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।

15. क्षिप्तभूमिक चित्तः– यह सदा चंचल है। जिसका चित्त जितना अधिक चंचल होता है, वह उतना ही अधिक पाप करता है और दुःख का अनुभव करता है। चित्त में रजः और तमः गुण अधिक होने से चित्त क्षिप्त होता है। क्षिप्त चित्त या मन किसी एक विषय पर स्थिर नहीं रह सकता। एक ही विषय पर मन रखने से क्षिप्त चित्त को सुख नहीं मिलता। सुख के लिये वह पहले एक विषय ले लेता है और फिर थोड़ी देर बाद ही दूसरे विषय को ले लेता है। फिर वहाँ भी सुख न पाकर दूसरे विषय को ले लेता है। क्षिप्त-चित्त मनुष्य कभी उन्नति नहीं कर सकता।

16. मूढभूमिक चित्तः– ये लोग निर्बोध होते हैं। ये लोग किसी कार्य में भी उन्नति नहीं कर सकते हैं। इनकी बुद्धि मलिन होती है। देह के सुख को ही ये लोग सुख समझते हैं। पारमार्थिक ज्ञान ये लोग नहीं रखते हैं। पशु-जीवन को ही ये लोग अच्छा समझते हैं। पशुवृत्ति, आहार, निद्रा, काम-क्रोधादि लेकर ही ये लोग जीवन चलाते हैं। जगत् में मूढभूमिक चित्त वाले मनुष्य अधिक हैं।

17.विक्षिप्तभूमिक चित्तः– ये लोग क्षिप्त और मूढ़ से श्रेष्ठ हैं। ये अपने चित्त को अधिक समय तक किसी विषय पर संयुक्त रख सकते हैं। ये

लोग साधारण श्रेणी के साधक होते हैं। ये लोग साधना करके एकाग्र चित्त हो सकते हैं। और क्रमशः चित्त को निरुद्ध करके कभी जीवन को सफल भी बना लेते हैं। ये लोग ही मानव श्रेणी के होते हैं । इनकी संख्या बहुत ही अल्प है।

18. एकाग्रभूमिक चित्तः– जो चित्त एक को अवलम्बन करके रहता है, उसी को एकाग्र बोला जाता है। साधन, भजन, गृहकर्म, ग्रन्थपाठ, समाजसेवा, राजनीति, साहित्य सेवा आदि सब कार्यों में ये लोग एकाग्र-चित्त हैं। ऐसे लोगों की संख्या कम है।

19. निरुद्धभूमिक चित्तः– एकाग्रचित्त में जो एक मात्र अवलम्बन था, निरोधभूमिक चित्त में वह भी नहीं रहता है। जब चित्त के अन्दर चिन्ता भी नहीं उठती है तब उसको निरोध बोला जाता है। निरोध चित्त ही मुक्ति की ओर धावित होता है।

चित्त की इन पाँच प्रकार की अवस्थाओं के अन्दर पूर्व तीन प्रकार के चित्तों के साथ योग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। परवर्ती दो चित्त एकाग्र और निरुद्धभूमिक चित्त ही योगानुकूल हैं।

20. प्रणव जपोपासनाः– प्रणव मन्त्र अर्थात् ओंकार का जप और साथ-साथ उसके अर्थ का ध्यान करना ही उपासना है। योगी लोग साधारणतः ईश्वर की दूसरी तरह उपासना नहीं करते हैं। केवल प्रणव मन्त्र का वाचिक और मानसिक जप और उसका अर्थ ध्यान करते हैं। जब ये लोग वैषयिक कार्य करते हैं, तब भी उनका जप और ईश्वरोपासना बन्द नहीं होती है। प्रणव मन्त्र के जप और प्रणव मन्त्रार्थ का ध्यान करते-करते उनका चित्त उसी में निविष्ट और एकाग्र हो जाता है और क्रमशः समाधि भी आ जाती है। सर्वदा प्रणव जप और प्रणवार्थ करते-करते जब चित्त निर्मल हो जाता तब उनको प्रत्यक्-चैतन्य अर्थात् शरीरान्तर्गत आत्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। तब किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता और निर्विघ्न जप से समाधि-लाभ होता है।

प्रणव अर्थात् ओंकार का जप ही सर्वश्रेष्ठ जप है। प्रणव का वाच्य ईश्वर

है और ईश्वर का वाचक अर्थात् नाम प्रणव ओम् है। हम लोग स्थूल शब्द के प्रति प्रीति रखते हैं, इसलिये स्थूल शब्द के द्वारा उनको पुकारते हैं। स्थूल मन्त्र शब्द के उच्चारण और मन्त्रार्थ की चिन्ता करते-करते हमारा स्थूल के प्रति आकर्षण कम हो जाता है और क्रमशः सूक्ष्म की धारणा-शक्ति वर्धित होती है। सूक्ष्म के लिये धारणा शक्ति नहीं रहने से सूक्ष्म भगवद्भाव का ग्रहण असम्भव है। सूक्ष्म भगवान् के ध्यान के लिये अति सूक्ष्म रूप से प्रणव ओंकार का जप और मन्त्रार्थ ध्यान का विधान रखा गया है। जप और अर्थ-चिन्तन से चित्त निर्मल और शुद्ध होता है। हम सूक्ष्म ध्यान के अधिकारी होते हैं।

केवल भगवद्भाव जानने से ही जीवन चरितार्थ नहीं होता है। भगवद्भाव में तन्मय होने से ही जीवन कृतार्थ होगा। मन्त्र-जप करने से इष्ट देवता तुष्ट होता है, यह तो साधारण मनोभाव है। इष्टदेव हमारे प्रति चिर प्रसन्न हैं। मलिन चित्त में भगवान् के प्रसन्न भाव की धारणा नहीं होती है। चित्त जितना ही शुद्ध होता जायेगा, उतना ही उसको प्रसन्नता का अनुभव होता रहेगा। जप करके जिसको आनन्द का अनुभव नहीं होता। जान लो उनका मन मलिन और चंचल है। विषयासक्ति ही मलिनता है। विषयाशक्ति जितनी कम होती जायेगी, ईश्वरभक्ति उतनी ही बढ़ती जायेगी। जब विषयाशक्ति नहीं रहेगी तब ईश्वर-भक्ति पूर्ण हो जायेगी। तब ईश्वर में मन निमग्न हो जायेगा और समाधि-लाभ होगा।

पहले-पहले जप और ध्यान टूट जाता है। इसमें निराशा का कोई कारण नहीं है। धैर्य के साथ जप और उसके अर्थ-भावना या ध्यान करने से आत्म-चेतना का उदय होगा। इसी का नाम- 'प्रत्यक्चेतनाधिगम''। तब विषय-भोग में अरुचि आ जायेगी। पीछे विषय-भोग में कष्ट होगा। मन्त्र का जप, ईश्वर का ध्यान और समाधि-साधना ही तब अच्छी लगेगी। विषय के प्रतिकूल और चैतन्य के अनुकूल रूप में जब चित्त धावित होता है, तब ही उसका नाम ''प्रत्यक्-चेतना'' है।

ओंकार जप ही श्रेष्ठ जप है। ओंकार के जप में शारीरिक चांचल्य बिल्कुल नहीं होता है। शरीर निश्चल और स्थिर नहीं होने से ध्यान या समाधि की स्थिति नहीं आती है।

व्यंजन वर्ण के उच्चारण में हमें दन्त ओष्ठ आदि की सहायता लेनी पड़ती है अर्थात् उन सब स्थानों में क्रियायें होती हैं। क्रिया होने से ही वह सब स्थान चंचल होते हैं।

मानसिक जप से उन सब स्थानों में क्रिया नहीं होती। यह बात ठीक है, लेकिन भीतर में मानसिक स्रोत की क्रिया और चंचलता जरूर रहती है।

1. ओंकार के जप में वह चंचलता भी नहीं रहती है।

2. ओंकार-जप एकतान के रूप में आसानी से होता है। दूसरा जप एकतान से नहीं होता।

3. स्वर वर्ण का जैसे एकतान से उच्चारण होता है, व्यंजन वर्ण का वैसा उच्चारण असम्भव है। व्यंजन वर्ण के उच्चारण में अत्यधिक वाक् शक्तियों का व्यय होता है।

4. ओंकार के अन्त में ''म्'' है। वह भी बिना प्रयत्न के एकतान से उच्चारित होता है। इसलिये चित्त को एकतान करने के लिये ''ओम्'' शब्द सबसे श्रेष्ठ है। इसके उच्चारण में दन्त या ओष्ठादि की सहायता की अपेक्षा नहीं है।

इन सब कारणों से ओंकार का जप सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। यह जप श्वास-प्रश्वास के साथ भी किया जा सकता है। प्रतिश्वास और प्रश्वास के साथ जप करने में भी अर्थ भावना की जरूरत है। जिसके साथ हम दीर्घ काल तक रहते हैं वह अपना हो जाता है। ओंकार-जप और अर्थ-भावना से ईश्वर का संग होता है। और दीर्घकाल तक जपोपासना करने से ईश्वर अपना बन जाता है। अर्थात् ईश्वर के साथ प्रेम और प्रीति का सम्पर्क स्थापित हो जाता है। जिसके संग में हम लोग रहते हैं। उसके गुण भी हमें प्राप्त होते हैं। हमारा चित्त यदि भगवत्चिन्तन में निमग्न रहे और भगवान् के नाम और उसके मर्मार्थ का स्मरण करे अर्थात् निरन्तर जप करे तो हमारी चेतना विषयों को छोड़कर ईश्वराभिमुखीन हो जायेगी। यह ही ''प्रत्यक् चेतना'' है।

21. पञ्चक्लेश:– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पञ्च क्लेश ही मनोधर्म हैं। ये मनोधर्म मिथ्या-ज्ञान ही हैं। यह पाँच प्रकार का क्लेश

नामक मिथ्याज्ञान जिससे संचित नहीं हो सके और संचित मिथ्या ज्ञान जिससे दग्ध हो सके, इसके लिये यत्न करना ही योग-साधकों के लिये सर्वप्रधान कर्त्तव्य है।

पञ्च क्लेशों में अविद्या नामक प्रथम क्लेश परवर्ती चार क्लेशों की उत्पत्ति का मूल है। ये सब क्लेश सदा एक रूप से नहीं रहते हैं। कोई प्रसुप्त रूप में, कोई सूक्ष्म रूप में, कोई विच्छिन्न रूप में और कोई उदार या स्पष्ट रूप में चित्त-क्षेत्र में रहता है।

22. क्लेश की प्रसुप्त अवस्थाः— लीन भाव में, शक्ति रूप में या प्रसुप्त रूप में रहना-ये सब एक ही बात हैं। बीज के अन्दर वृक्ष-शक्ति जिस प्रकार प्रसुप्त-लीन होकर या छिपके रहती है, उसी प्रकार रहने का नाम ही प्रसुप्त अवस्था है। प्रकृतिलय और विदेहलय योगियों के चित्त में क्लेश रहता है, लेकिन वह बीज में वृक्ष-शक्ति जिस प्रकार रहती है, उसी प्रकार रहता है। बीज से जैसे अंकुरोद्‌गम होता है, योगियों के प्रसुप्त क्लेश से ऐसे ही पुनः संसार का अंकुरोद्‌गम होता है।

23. क्लेश की तनू अवस्थाः— सूक्ष्म और तनू एक ही बात है। सूक्ष्म शब्द का मतलब यहाँ संस्कार का अभाव है। यह तनू क्लेश दग्ध बीज की तरह शक्तिहीन है।

24. क्लेश की विच्छिन्न अवस्थाः— विच्छिन्न और विच्छेद-प्राप्त एक ही बात है। किसी एक वस्तु के प्रबल होने से दूसरी वस्तु का ह्रास हो तो उसका नाम विच्छिन्न अवस्था है। लोभ के समय क्रोध अभिभूत रहता है। क्रोध की वह विच्छिन्न अवस्था है।

25. क्लेश की उदार अवस्थाः— उदार और परिपूर्ण एक ही बात है। विस्पष्ट या उज्ज्वल स्थिति में जब क्लेश रहता है तब उसकी उदार अवस्था है। उदार अवस्था में क्लेश ठीक रूप से अपने कार्य को करता है।

योगी क्रिया-योग के द्वारा उन पाँच प्रकार के क्लेशों को दग्ध बीज की

तरह शक्ति-हीन कर देते हैं। तब तो वे अनर्थ नहीं करते हैं। योगी इनको शक्ति-हीन करके तब योग या समाधि-साधन में लग जाते हैं। चित्त के पञ्च क्लेशों को शक्ति-हीन करने से ही योगी होना सम्भव है।

26. अविद्या क्लेशः— अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःख को सुख और अनात्म वस्तु को आत्मा समझना अविद्या है। किसी वस्तु के प्रकृत स्वरूप को न जानना और उल्टा-पुलटा दूसरा कुछ अन्य ही समझना अविद्या है। जैसे शरीर अनित्य है, लेकिन इसको नित्य समझना, शरीर विविध रूप से अशुचि है, लेकिन उसको शुचि समझना, विषय-भोग दुःखदायक है लेकिन इसको सुखदायक समझना और शरीर आत्मा नहीं है, लेकिन उसको आत्मा समझना-ये सबके सब अविद्या क्लेश हैं। जीवों को यह अविद्या क्लेश विविध प्रकार के क्लेश दान करते हैं। अविद्या जीवों के लिये अनर्थ का बीज है।

27. अस्मिता क्लेशः— आत्मा नाम दृक्-शक्ति और बुद्धि-तत्व का नाम दर्शन-शक्ति है। यह चित् स्वरूप (आत्मा) बुद्धि-तत्व से प्रतिबिम्बित होता है। आत्मा ही यहाँ दृक्-शक्ति या द्रष्टा है और बुद्धि-वृत्तियाँ उनके प्रकाश या प्रतिबिम्बपात का आधार हैं। इसलिये इसका नाम दर्शन-शक्ति है। इसका दूसरा नाम बुद्धि तत्व है। आत्मा और बुद्धि को (यानी दृक्शक्ति और दर्शन-शक्ति को) एक ही समझना अस्मिता है। चैतन्य और बुद्धि को एक समझना, लौह को और अग्नि के सहवास के कारण उसकी उष्णता को एक समझना ही (ऐक्य बोध या तादात्म्य-आध्यास रस) अस्मिता क्लेश है। साधारण अहं (मैं) बोध का नाम 'अस्मिता' है। आत्मा और बुद्धि को रंजित स्फटिकवत् अर्थात् रंग और स्फटिक की तरह एक रूप से समझ लेना अस्मिता है। बुद्धि में या चित्त में 'आत्मा' का बोध आरोपित करना और मैं और मेरा इत्याकार प्रतीति करने का नाम अस्मिता है। इस अस्मिता से राग नामक क्लेश की उत्पत्ति होती है।

28. राग क्लेशः— सुख के अनुशय या अनुवृत्ति का नाम राग है। साक्षात्कार यानी प्रत्यक्ष रूप से हो या परम्परा अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से हो, एक

बार सुख का अनुभव होने से बार-बार उसकी याद आती है। उसके पुनः भोग के लिये इच्छा उत्पन्न होती है और उस इच्छा की पूर्ति के लिये अनेकविध चेष्टा करनी होती है। इस प्रकार की कामना या आसक्ति का नाम ही 'राग' है। इस प्रकार के राग के प्रबल रहने तक योगी होना कठिन है। इस राग से आगे द्वेष उत्पन्न होता है।

29. द्वेष क्लेशः— दुःख के अनुशय या अनुवृत्ति का नाम द्वेष है। सुख के समान दुःख का भी अनुशय या अनुवृत्ति होती है। पूर्वानुभूत दुःख की याद होने के साथ-साथ दुःखदायक वस्तु के प्रति वितृष्णा-अनिच्छा या अनभिलाषा उत्पन्न होती है। इसका नाम ही द्वेष है। जिस वस्तु से एक बार दुःख हुआ है, उस वस्तु के प्रति द्वेष आयेगी ही। उसके प्रति निवारण और प्रतिघात की चेष्टा भी होगी ही। क्रोध, हिंसा और प्रतारणा (विप्रलिप्सा) का भाव भी उत्पन्न होगा। ये सब के सब द्वेषभाव के रूपान्तर मात्र ही हैं। द्वेष भाव से जो हो नहीं, ऐसा कोई अकार्य नहीं है। इसलिये जब तक द्वेष भाव रहेगा, तब तक योगी होने की सम्भावना नहीं है। द्वेष से ही अभिनिवेश की उत्पत्ति होती है।

30. अभिनिवेश क्लेशः— बार-बार मरण दुःखों के अनुभव के कारण चित्त में उन सब दुःखों का संस्कार बद्धमूल हो जाता है। इस अनुभव का नाम ही 'स्वरस' है। इस स्वरस के रहने के कारण ज्ञानी-अज्ञानी निर्विशेष से सब ही के अन्दर मरण-दुःख की छायास्वरूप या अनुवृत्ति स्वरूपभाव विशेष निहित है। इस दुर्लक्षणवृत्ति-विशेष का नाम ही अभिनिवेश है।

किसी प्रकार के दुःख के अनुभव होने से उस दुःखप्रद वस्तु के प्रति विद्वेष और वह दुःख फिर अनुभव में नहीं आ जाये, इस प्रकार की इच्छा और उसके प्रतिरोध के लिये प्रचेष्टा उत्पन्न होती है। इस प्रकार की इच्छा का नाम हम अभिनिवेश कह सकते हैं। लेकिन योगी लोग इसको अभिनिवेश न कह कर मरण-विषयक अनिच्छा को ही अभिनिवेश कहते हैं। क्योंकि दुःखों की चरम सीमा ही मृत्यु है। इसलिये जीवों में मरणभीति अत्यधिक है। हम सबों के चित्तों में "मैं न मरूँ" ऐसी सूक्ष्म-वृत्ति निरन्तर छिपी हुई है।

प्राणी लोग शरीर, इन्द्रिय और चित्त पर ''अहं''(मैं) सम्पर्क कायम करके रहते हैं। वे धन सम्पद् पर भी ''ममत्त्व'' ''मेरे'' का सम्पर्क कायम करके रह रहे हैं। इन सबों से ये विच्छिन्न होना नहीं चाहते हैं। सदा ही इस भाव के साथ रहते हैं कि ''मैं न मरूं'' या ''मेरे धन सम्पद् का विनाश न हो''। विशेष करके मरण-दु:ख की अनुवृत्ति प्राणी मात्र के अन्दर है, इसी का नाम अभिनिवेश है। यह अभिनिवेश पञ्चम क्लेश है। क्योंकि इसके रहने से जीव तरह-तरह के क्लेशों को प्राप्त होते हैं। इस अभिनिवेश के कारण ही जीव दुष्कर कार्य नहीं कर सकते हैं और दु:साहसिक कार्य करने में साहस नहीं करते हैं। क्योंकि ''मैं कैसे मरूँ''? इस प्रकार की चिन्ता में वे सदा ही व्यस्त रहते हैं।

ऋषि पतंजलि और दूसरे ऋषि लोग स्वतः-सिद्ध मरण-त्रास को देखकर भी उससे पूर्व जन्म-सम्बन्ध का अनुमान करते हैं। प्रश्न होता है कि ''कैसे मालूम हुआ कि पूर्व जन्म है।'' उत्तर दिया जाता है ''अनुमान प्रमाण से मालूम हुआ।''

मरण त्रास या मरण के प्रति विद्वेष केवल मनुष्यों को है, ऐसा नहीं। कृमि-कीटादि प्राणियों को भी है। नवजात शिशु को भी है। निगूढ़तम वासनाओं के स्रोत से वहमान जीव इसको स्पष्ट रूप से नहीं समझते हैं। यदि यह ज्ञान इन्द्रियों से उत्पन्न होता, तो अवश्य ही समझ लेते। लेकिन यह अनुभव इन्द्रियों से हुआ नहीं। यह केवल अन्तर्निहित गूढ़तम संस्कार बल से ही उत्पन्न होता है। इसके कारण के अज्ञात रहने के कारण जीव स्पष्ट रूप से समझ नहीं सकते हैं कि मैं पहले भी मरा था और इसकी कठोर यंत्रणा भी मैंने भोगी थी।

31. सुख दु:ख विवेक:– योगी लोग कैवल्य या मोक्ष-लाभ (परम सुख या कैवल्य लाभ) से ही दु:ख ताप से मुक्त हो के परम शान्ति का लाभ करते हैं, ऐसा मानते हैं। योगी लोग सब अस्थायी वस्तुओं में ही दु:ख दर्शन करते हैं। ये लोग सब वस्तुओं के अन्दर सत्व गुण के सुख, रजोगुण के दु:ख और तमोगुण के मोह और इन तीनों गुणों में परस्पर विरोध दर्शन करते हुए, सब वस्तुओं में दु:ख दर्शन करते हैं। हर एक सुखकर वस्तु के लाभ की प्रचेष्टा में भोग काल में समाप्त होने की चिन्ता में और समाप्त होने के बाद लोग दु:ख

ही का दर्शन करते हैं। इनके मतानुसार केवल अयोगी, अविवेकी और अज्ञानी ही मोह में मूढ़ और भ्रमान्ध होकर ही किसी वस्तु में सुख और किसी वस्तु में दुःख का दर्शन करते हैं। योगी लोग बोलते हैं कि जो लोग नहीं जानते हैं कि इसमें जहर है वे लोग तो इसको खा लेते हैं; लेकिन जिनको मालूम है, वे कभी उसको नहीं खायेंगे। योगी लोग और ज्ञानी विवेकी लोग हर एक वस्तु को दुःख-मिश्रित समझ कर इसको दुःसह ही समझते हैं। अविवेकी जिसको सुख समझते हैं, विवेकी उसको दुःख ही समझते हैं।

परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख से जो ओत-प्रोत मिश्रित सुख है, उसको योगी लोग मन के विकार या सुख नाम को दुःख ही समझते हैं।

इस सुख नामक मनोविकार को या सुख नामक दुःख को पाकर भोगी स्थायी रूप से इसको नहीं रख सकते हैं। सुख का अवसान हुआ, इसको सोचने से भी दुःख आ गया। भोग के कारण दुःख आएगा ही। ''भोगे रोगभयम्'' अत्यन्त भोग से रोग आक्रमण करेगा। इससे भी दुःख है। इसी का नाम ''परिणाम दुःख'' है।

''यह सुख अगर नष्ट हो जाये'' इस तरह की दुश्चिन्ता उद्वेगादि के ताप से भी दुःख आ जाता है। इसी के आनुषंगिक रूप से और विविध पाप मनोवृत्ति, राग-द्वेष, क्रोधादि भी मन में भविष्यत् घोर दुःख के बीज वपन कर देते हैं। इसी का नाम योगशास्त्र के अनुसार ''ताप दुःख'' है।

सुख-भोग करने के साथ-साथ उसका संस्कार चित्त में आबद्ध हो जाता है। यह संस्कार फिर भोगों की तरफ चित्त को खींच लेता है। इसलिये ही बार-बार पूर्वानुभूत सुख के तुल्य सुख भोग के लिये चित्त में इच्छा पैदा होती है। जब तक वह नहीं मिलता है तब तक चित्त व्याकुल रहता है और दुःख बढ़ ही जाता है इसी का नाम ''संस्कारदुःख'' है।

इस रूप से दुःख तीन रूप के गिने जाते हैं और सुख-भोग ही इन दुःखों के कारण है। योगी लोग इन सब सुखों को छद्मवेशी दुःख ही समझ लेते हैं।

32. योगवृक्षः– योगाचार्यों ने अष्टांग योग साधना की वृक्ष के साथ

तुलना की है। यम और नियम के अनुष्ठान से इसका बीज उत्पन्न होता है। आसन और प्राणायाम से यह अंकुरित होता है। प्रत्याहार से यह पुष्पित होता है। इसके बाद धारणा, ध्यान और समाधि की साधना से यह योग-वृक्ष फलवान् होता है। योग के आठ अंगों के परस्पर के सम्बन्ध इसी तरह घनिष्ठ हैं।

33. प्रत्याहार की उपयोगिता:– यम, नियम, आसन और प्राणायाम के द्वारा शरीर और मन के शुद्ध और सुसंस्कृत हो जाने से प्रत्याहार नामक योगांग की साधना सरल और सहज हो जाती है। इन्द्रिय-संयम के लिये प्रत्याहार की साधना आवश्यक है। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ क्रमानुसार रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श इन पाँच विषयों के प्रति धावित होती हैं और आसक्त होती हैं। इनकी आसक्ति को नष्ट कर देना या विमुख कर देना ही प्रत्याहार का कार्य है। प्रत्याहार साधना में सिद्धि आने के बाद धारणा, ध्यान और समाधि निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होती हैं।

34. संयम साधना:– धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों मानस-प्रक्रियाओं को किसी एक अवलम्बन में से प्रयोग करने का नाम संयम है। संयम-सिद्ध योगी साधकों का संकल्प या इच्छाप्रयोग अमोघ और अव्यर्थ है। संयम-शक्ति से ये लोग दु:साध्य साधन करते हैं। मन के अन्दर कितनी महती शक्ति छिपी हुई है- इनको ज्ञात है।

35. धारणा साधना:– चित्त को किसी स्थान में आबद्ध रखने का नाम ही धारणा है। किसी पवित्र और अनुद्वेगकर स्थान में किसी योगासन से बैठकर धारणा का अभ्यास करो। अन्त:करण रागद्वेष शून्य बन जाए। इन्द्रियों को विषयों से आकर्षित करके चित्त के पास समर्पण कर दो। चित्त को अब नासाग्र में, सूर्य में, हृदय में या नाड़ी चक्रों में से किसी एक में या किसी मनोगत स्थान में, वस्तु में या विषय में धारणा करो। चित्त को इस रूप से धारण करो, जिससे चित्त उससे स्खलित नहीं होने पावे। प्रतिदिन बार-बार चित्त को धारण करो। इससे धारणा नामक योगांग आयत्त में आ जायेगा। इसी का नाम धारणा है।

36. ध्यान साधनाः— उस धारणीय वस्तु में यदि तुम्हारी एकतानता आ जाय तो उसी का नाम ध्यान है। जिस वस्तु में तुमने अपनी बहिरिन्द्रियों (चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्) को निरोध करके अन्तरिन्द्रिय-चित्त को धारण किया है, उस वस्तु का ज्ञान यदि अविच्छिन्न गति से और प्रवाहाकार से प्रवाहित होता हो, तब उस मनोवृत्ति प्रवाह का नाम ही ध्यान है।

37. समाधि-साधनाः— वह ध्यान जब केवल ध्येय वस्तु को ही प्रकाशित करता है ''मैं ध्याता हूँ'' मेरा कार्य ध्यान है'' आदि सब कुछ लुप्त हो जाता है, तब उसका नाम समाधि है।

38. धारणा, ध्यान, समाधि का भेदः— धारणा में ''धारणा रूप क्रिया'' ''धारणा रूप क्रिया का कर्ता मैं हूँ'' और ''धारणा की वस्तु''; इन तीनों का ही बोध रहता है। ध्यान में 'मैं ध्यान करता हूँ और 'ध्येय वस्तु दूसरा है' यह भाव रहता है। समाधि में सब कुछ लुप्त होकर केवल 'ध्येय वस्तु' ही रहती है। 'मैं ध्याता हूँ' यह भी लुप्त हो जाता है। धारणा से ध्यान और ध्यान से समाधि के क्रमानुसार अभ्यास करना चाहिये। संयम साधना में किसी एक ही विषय पर धीरे से क्रमानुसार धारणा, ध्यान और समाधि का प्रयोग किया जाता है।

39. संयम साधना का क्रमः— योग साधक प्रथमतः स्थूल-स्थूल विषयों पर संयम प्रयोग का अभ्यास करते रहें। उसके आयत्त हो जाने के बाद क्रमानुसार सूक्ष्म-सूक्ष्म विषयों पर संयम-अभ्यास करना चाहिये। चित्त जब स्थूल में तन्मय होता है और उस समय साथ में विकल्प ज्ञान भी रहे, तब उस तन्मयता का नाम ''सवितर्क'' है और यदि विकल्प ज्ञान नहीं रहता है तब उस तन्मयता का नाम ''निर्वितर्क'' है। अर्थात् स्थूल अवलम्बन में तन्मय होने से ही उसका नाम ''सवितर्क'' और विकल्प ज्ञान न रहने से ही उसका नाम ''निर्वितर्क'' है। सवितर्क समाधि का अवलम्बन स्थूल महाभूत और इन्द्रियगण हैं। सविचार समाधि का अवलम्बन मन, बुद्धि, अहंकार और पञ्च तन्मात्रायें हैं। सानन्द समाधि का अवलम्बन शुद्ध सत्वगुण है, जो कि अन्तःकरण का प्रकाश है। जिससे

बुद्धि निर्मल होती है और जिसके साथ नाममात्र रजोगुण का विक्षेप और तमोगुण का आवरण मिला हुआ है। सास्मिता समाधि में अवलम्बन विशुद्ध सत्त्वगुण है।

40. अन्तरंग और बहिरंग योग:– योग के अन्दर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग साधना के रूप में और आगे संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) अन्तरंग साधना के रूप में हैं। बहिरंग साधना से शरीर की जड़ता की निवृत्ति, इन्द्रियों की तीक्ष्णता और चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है। इसके आगे संयम के द्वारा चित्त को सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम पदार्थ में प्रयोग किया जाता है।

41. एकाग्रता परिणाम:– किसी ध्येय वस्तु का अवलम्बन करने से पहले जो तदाकार वृत्ति का जन्म होता है, उसका विलोप होते-होते यदि फिर तदाकार दूसरी वृत्ति का जन्म होता हो, तो उस संलग्न रूप से उत्पन्न अतीत और वर्त्तमान, लुप्त और उज्जवल दोनों वृत्तियों को ''एकाग्रता-परिणाम'' समझना चाहिये। यहाँ वृत्ति का अभिप्राय ज्ञानांश है। एक वृत्ति के बाद दूसरी वृत्ति उदित होने से दोनों के स्थिति काल का संकलन 6 क्षण है। एक निमेष चतुर्गुण काल क्षण है । एकाग्रता-काल अविच्छिन्न रूप से 12 गुणित होने से धारणा काल (612=72 क्षण) होता है। अविच्छिन्न धारणा काल को 12 गुणित करने से ध्यान काल (7212=864 क्षण) है। अविच्छिन्न ध्यान काल को 12 गुणित करने से (86412=10,368 क्षण) समाधि काल है और समाधि काल को 12 गुणित करने से (10,36812=1,24,416 क्षण) ही सम्प्रज्ञात योग काल है। अब अनुमान किया जा सकता है कि वृत्ति प्रवाह को स्थिर रखने में या समाधि लाने में कितने समय की आवश्यकता है।

42. समाधि परिणाम:– विविध और बहुत प्रकार की वृत्तियों के लोप होने के बाद चित्त में केवल मात्र एक वृत्ति के प्रवाह आने से उसका नाम हुआ समाधि परिणाम । बहुत विषयों के प्रति धावित होना और मात्र एक ही विषय में धावित होना दोनों ही चित्त के स्वधर्म हैं। एक ही विषय में चित्त को

आबद्ध रखना ही समाधि अभ्यास है।

43. संयमसाधना में पञ्चविधज्ञान 44. परिणामत्रय का ज्ञानः— संयम साधना में परिणामत्रय का ज्ञान जरूरी है। पञ्चभूतों में और इन्द्रियादि भौतिक वस्तुओं में तीन परिणाम हैं—

1. धर्मपरिणाम
2. लक्षणपरिणाम
3. अवस्थापरिणाम

मान लो पाँच भूतों में मिट्टी एक भूत है। पिंडाकार में कुछ मिट्टी पड़ी हुई है इसमें तीन परिणाम हैं। यहाँ पिंडत्व इसका धर्म परिणाम है। जब यह घटाकार बन जायेगा तब इसमें घटाकारत्व धर्म आ जायेगा, यह इसका ध र्मपरिणाम है।

अतीत, वर्त्तमान् और भविष्यत् कालत्रय में इस घट का अति सूक्ष्म जो परिवर्तन मालूम पड़ता है, उसका नाम लक्षणपरिणाम है।

जब इसका अवस्था भेद देखा जाता है। जैसे नूतनत्व, पुरातनत्व, उज्ज्वलत्व, मलिनत्व, क्षय-प्राप्ति, तब इसका नाम अवस्था परिणाम है। पाँच भौतिक शरीरों में जन्म, शैशव, बाल्य, किशोर, यौवन, जरा मृत्यु भी अवस्थापरिणाम हैं।

45. आभ्यन्तर परिणाम—सप्तक का ज्ञानः— संयम साधना में आभ्यन्तर परिणाम सप्तक का ज्ञान जरूरी है। पाँच भौतिक जगत् के पञ्च भूतों में और इन्द्रियादि भौतिक वस्तुओं में जैसे तीन परिणाम हैं, ऐसे ही आभ्यन्तर वस्तु चित्त में परिणाम बहुत प्रकार के हैं। सुख, दुःख, लाभ, हानि, सौभाग्य, दौर्भाग्य, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के परिणाम चित्त में प्रत्यक्ष रूप में अनुभव योग्य है।

1. निरोध परिणाम
2. कर्म परिणाम
3. कर्मजन्य संस्कार परिणाम

4. जीवन परिणाम
5. क्रिया परिणाम
6. शक्ति परिणाम
7. काल परिणाम

ये सात परिणाम साक्षात् अनुभव के बाहर होने पर भी चित्त, मन, बुद्धि पर प्रभाव डालते हैं।

46. धर्मत्रय का ज्ञानः— संयम साधना में धर्म त्रय का ज्ञान जरूरी है, जो कुछ धर्म या शक्तिविशेष का आश्रय है। वह धर्मी है । हर एक प्राकृतिक द्रव्य ही 1. शान्त 2. उदित 3. अव्यपदेश्य है।

इन तीन धर्मों के साथ युक्त है। जैसे बीज और अंकुर है। 1. अंकुर में बीजत्व 'शान्त' धर्म है। 2. बीज अपने अंकुर रूप कार्य को सृजन करके अस्तमित या 'शान्त-धर्म' में आ गया है। अंकुर का अब 'उदित धर्म' है। 3. अंकुर में वृक्षत्व छिपा हुआ है वह वृक्षत्व अंकुर में 'अव्यपदेश्य धर्म' में है। पीछे 'उदित' धर्म में आ जायेगा।

47. पञ्च मनोवृत्तियों का ज्ञानः— संयम साधना में पञ्च मनोवृत्तियों का ज्ञान जरूरी है। मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ पाँच भागों में विभक्त हैं:—

1. क्षिप्त
2. मूढ़
3. विक्षिप्त
4. एकाग्र
5. निरुद्ध

1. क्षिप्त— बाह्य—वस्तुओं की कामना में जब मन अस्थिर और चंचल रहता है। मन किसी एक विषय में निविष्ट नहीं रहता। विषय से विषयान्तर में दौड़ता है। सन्तुष्ट नहीं रहता है। सदा ही अति व्यस्त रहता है। यह ही मन की क्षिप्त मनोवृत्ति है।

2. मूढ़ः— मन जब धर्माधर्म, कर्तव्याकर्त्तव्य को नहीं सोचता, काम, क्रोध , लोभादि का वशीभूत होता है। निद्रा, तन्द्रालस्यादि के आधीन रहता है, तब उसकी वह मूढ मनोवृत्ति है।

3. विक्षिप्तः— मन की चंचलता के अन्दर जब कभी—कभी दुःखजनक विषयों को छोड़कर सुख जनक विषयों को पकड़ लेता है और उसी में स्थिर हो जाता है उसी का नाम मन की विक्षिप्त मनोवृत्ति है।

4. एकाग्रः— चित्त जब किसी बाह्य वस्तु या आभ्यन्तर वस्तु में स्थिर और अचंचल रहता है तब चित्त की रजोवृत्ति और तमोवृत्ति अभिभूत हो जाती है। केवल शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, प्रकाशमय, सुखकर और उज्ज्वल ज्ञान—दीप्तिमयी सात्त्विक वृत्ति का ही उदय होता है। यह ही मन की एकाग्र मनोवृत्ति है।

5. निरुद्धः— एकाग्र वृत्ति में चित्त का कोई न कोई अवलम्बन रहता ही है। लेकिन निरुद्ध वृत्ति में किसी प्रकार का भी अवलम्बन नहीं रहता है। तब चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृति में प्रलीन रहता है। और मानो कृतकार्य हो गया, इस रूप से निश्चेष्ट रहता है। वह केवल मात्र संस्कार भावापन्न ही रहता है। उसमें तब किसी प्रकार का विसदृश परिणाम भी नहीं देखा जाता है।

चित्त की इन पाँच स्थितियों के अन्दर क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्तवृत्तियों का योग के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। केवल एकाग्र और निरोध चित्तवृत्तियों को योग साधन में व्यवहार किया जा सकता है। निरुद्ध वृत्ति ही योग साधन के लिए सर्वोत्तम वृत्ति है। क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त वृत्तियों को दूरीभूत करने के बाद ही निरुद्ध वृत्ति का उदय हो सकता है।

48. व्युत्थान और निरोध परिणामों का ज्ञानः— संयम साधना में व्युत्थान और निरोध परिणामों का ज्ञान जरूरी है। चित्त के क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त— इन राजसिक परिणामों का ही नाम ''व्युत्थान परिणाम '' है। चित्त की प्रज्ञात स्थिति भी व्युत्थान परिणामों में सम्मिलित है और विशुद्ध सत्त्व परिणाम एकाग्र और निरोध ही ''निरोध-परिणाम'' है। चित्त की स्थिरता या निर्वृत्तिक अवस्था ही ''निरोध परिणाम'' है।

49. अवस्था भेद से योगी चतुर्विधः–

1. प्राथमकल्पिक
2. मधुमतीभूमिक
3. प्रज्ञाज्योति और
4. अतिक्रान्तभावनीय

1. योग शिक्षा में जो लोग नये हैं, योग जिनका दृढ़ नहीं हुआ है, जो लोग थोड़े दिनों से ही संयम (धारणा-ध्यान-समाधि) की साधना में प्रवृत्त हुए हैं, वे लोग किसी प्रकार के ऐश्वर्य, सिद्धि, विभूति, सिद्ध पुरुषों के भाव या ज्ञानी पुरुषों के दिव्य भाव कुछ भी अनुभव नहीं करते हैं। ये लोग ''प्राथम कल्पिक'' स्थिति में हैं।

2. इस प्राथम स्थिति का अतिक्रमण करके योग साधक द्वितीय "मधुमतीभूमि'' में आ जाते हैं। तब वे लोग 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' लाभ करते हैं।

3. पाँच भौतिक वस्तु और इन्द्रियों को जय करके जब वे लोग परवर्ती सिद्धि सर्वज्ञातृत्वादि लाभ के लिये प्रयत्न करते हैं, तब इनको ''मधुभूमिक'' योगी बोला जाता है। ठीक इसी समय अपने अन्दर कुछ न कुछ अतीन्द्रिय शक्ति का अनुभव होता है। ''देवताओं के प्रलोभन'' नाम से ही यह शक्ति अभिहित होती है। इस प्रलोभन को अतिक्रमण करके साधना में ही तत्पर रहने से योगी तृतीय स्थिति ''प्रज्ञाज्योति'' में पहुँच जाते हैं।

4. वे लोग अत्यधिक विवेक ज्ञान सम्पन्न होते हैं अर्थात् पुरुष प्रकृति के भेदनिर्णय में तत्पर हो जाते हैं। विवेक ज्ञान के अवान्तर फलों के प्रति वे लोग अनासक्त रहते हैं। समाधिकाल में भी किसी प्रकार का विघ्न नहीं उठता है और वे जीवन्मुक्तों की स्थिति में आ जाते हैं। वे लोग ही चौथी स्थिति ''अतिक्रान्त भावनीय'' में पहुँच जाते हैं।

50. योग–लभ्य विभूतियाँः– इन चार स्थितियों के ''प्राथम कल्पिक'' योगी लोग किसी प्रकार की अतीन्द्रिय शक्ति का अनुभव नहीं करते हैं अर्थात् कोई सिद्ध पुरुष या देवता या दिव्य गुण का दर्शन नहीं पाते हैं। द्वितीय,

तृतीय और चतुर्थ स्थितियों के योगी लोग ही भिन्न-भिन्न अतीन्द्रिय शक्तियों के अनुभव और उनको लाभ करते हैं। योगी लोग इसको ही ''देवदर्शन और सिद्धपुरुष दर्शन'' बोलते हैं। इन्हीं शक्तियों से त्रिविध योगियों के अन्दर बहुत योगी प्रलुब्ध और विस्मित हो जाते हैं।

इस प्रकार की विभूतियों को या ऐश्वर्यों को देख कर जो योगी प्रलुब्ध और विस्मित होते हैं, उनका यौगिक उत्कर्ष से पतन हो जाता है। योग विद्या और साधना के एकमात्र उद्देश्य का नाम ही कैवल्य–लाभ या मोक्ष–लाभ है। यौगिक विभूतियाँ विघ्नों के रूप में या परीक्षा के रूप में आ जाती है। यहाँ ही बहुत योगियों का योग भंग और पतन होता है। विस्मय आ जाने से मोक्ष या कैवल्य–लाभ से पहले ही कृत–कृत्यता बोध आ जाता है। किसी को संग और भोगेच्छा भी आ जाती है। रामायण, महाभारत या पुराणों में इस प्रकार के दृष्टान्त बहुत हैं। विस्मय भी विघ्न है। इसको भी वर्जन करना चाहिये। किसी तरह से लुब्ध या मुग्ध नहीं होना चाहिये। तब मोक्ष का कैवल्यभाव होगा। अन्यथा संसार, सुख, दुःख, बन्धन, जन्म, मृत्यु सब कुछ ऐसे ही बने रहेंगे।

स्मरणातीत काल से योगी लोगों ने भिन्न–भिन्न स्थान और विषयों पर संयम (धारणा–ध्यान–समाधि) के प्रयोग से असंख्य प्रकार की विभूतियों के अनुभव किये थे। ऋषि पतंजलि ने अपने राजयोग सूत्रों के विभूतिपाद में बहुत विभूतियों को, उनके प्राप्ति के उपायों को, संयम–प्रयोगों को लिपिबद्ध किया था। उन्हीं का प्रचार साधारण में होता है। इन सब के अतिरिक्त बहुत प्रकार की
सिद्धि, विभूति या ऐश्वर्यों का अनुभव
योगी साधकों के समाज के अन्दर प्रचलित है।

योग की शिक्षा और साधना में छः वर्ष

कलकत्ते के कई एक विज्ञ और प्रभावशाली पुरुषों ने मुझसे पातञ्जल योग दर्शन की (युक्तियुक्त व्याख्या के साथ) विभूतियों की वर्णन सुनाने की प्रार्थना की है। मैं अवश्य इन सब विभूतियों पर प्रकाश डालूँगा। आप लोग बहुत आदमी इन सब को जादूविद्या, भोजविद्या, डाकिनीविद्या या कुहुकविद्या भी समझ लेंगे, इसमें मुझे आपत्ति कुछ भी नहीं है।

मेरे परम मित्र पण्डित प्रवर ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर से अनुरोध पत्र आया है। योग–साधना के बारे में आपके अनुभव में जो कुछ है, आप करीब–करीब सब कुछ ही बोलने की कृपा करें। क्योंकि किताबों में ज्ञान का रहस्य मिलता है। साधना का रहस्य नहीं मिलता है। विद्यासागर जी का अनुरोध मुझे सहर्ष स्वीकार है। मैं यथाशक्ति इसका वर्णन करूँगा।

मैंने चाणोद, कर्णाली, व्यासाश्रम और अहमदाबाद के निकट श्मशान के दुग्धेश्वर मन्दिर में भिन्न–भिन्न योगी गुरुओं से 24-25 वर्ष की उम्र से 27-28 वर्ष की उम्र तक तीन वर्ष काल योग–विद्या की शिक्षा और अभ्यास में बिताया था। पीछे 30 वर्ष की उम्र तक तीन वर्ष काल आबू–शैल में योग–व्रत धारण करके योग की साधना और तपस्या में बिताया था। मेरे प्रति गुरुओं की बहुत ही कृपा थी। मैं योग के बारे में जो कुछ कहूँगा। उनकी दी हुई शिक्षा और साधना से जो कुछ अनुभव मैंने पाया है, उसी को मैं कहूँगा।

1. जप–धारणा–ध्यान–समाधि के वैशिष्ट्य:– ये चारों एक ही वस्तु हैं। प्रणव–मन्त्र का जप अविराम गति से करने के बाद जप गाढ़ होकर धारणा रूप में आ जाता है। उसी प्रकार धारणा करने से धारणा गाढ़ होकर ध्यान रूप में आ जाती है। उसी प्रकार ध्यान करने से ध्यान गाढ़ होकर समाधि रूप में आ जाता है। जप में सब कुछ रहते हैं। जप क्रिया के बाद धारणा

में धारणा–क्रिया, धारणा–कर्ता और धारणा का विषय इन तीनों विषयों का ज्ञान रहता है। ध्यान में ध्यान कर्त्ता मैं और मेरा ध्येय दोनों रहते हैं। समाधि में केवल ध्येय विषय ही रहता है और ध्याता का अस्मित्व ध्येय में विलीन हो जाता है। यह चित्त का सर्वोत्कृष्ट स्थैर्य है।

2. प्रत्याहार और धारणा का भेदः– धारणा का अर्थ है चित्त को एक ही विषय में धारण करना अर्थात् चित्त के अन्दर केवल एक ही विषय का चिन्तन करना। प्रत्याहार की साधना में इन्द्रियों को विषयों के सम्बन्ध से पृथक् कर देने से ही धारणा सम्भव होती है। खंड–खंड ज्ञान वृत्ति का नाम धारणा है और अखंड एकतान ज्ञान–वृत्ति का नाम ध्यान है। समाधि सम्पूर्ण तन्मय भाव है। समाधि से ही आत्म–दर्शन होता है।

धारणा, ध्यान और समाधि से सम्प्रज्ञात समाधि होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में कोई न कोई विषय अवलम्बन के रूप में रहता है। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय या बीज रहता है। अतः उसका नाम सबीज समाधि है।

जिस समाधि में वह नहीं रहता है उस का नाम निर्बीज समाधि है। धारणा, ध्यान, और समाधि निर्बीज समाधि का बहिरंग है और केवल पर वैराग्य ही निर्बीज समाधि का अन्तरंग है।

सबीज साधना नहीं करने से निर्बीज साधना सम्भव नहीं है। यदा–कदा किसी विषय पर स्वल्प मात्रा में भी आसक्ति रहेगी और जब तक विषय–चिन्तन रहेगा तब तक सबीज है और जब साधक सम्पूर्ण रूप से विषयासक्ति हीन हो जायेगा, स्वल्प मात्रा में भी विषयासक्ति नहीं रहेगी, यानी परवैराग्य होगा तब ही उसकी निर्बीज समाधि सम्भव है।

3. संस्कार और प्रत्ययः– चित्त के अन्दर संस्कार रहते हैं। संस्कार से प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। संस्कार और प्रत्यय एक नहीं हैं। संस्कार भंडार के रूप में हैं और प्रत्यय उसमें सन्निहित रहता है। संस्कार रहने से ही प्रत्यय नहीं उठता है। प्रत्यय उठने के कारण और स्थितियाँ होनी चाहिये। सद्यो–जात शिशु के अन्दर काम, क्रोधादि के संस्कार हैं, लेकिन उनसे काम–क्रोधादि के प्रत्यय

नहीं उठते हैं। अवस्था–वृद्धि के साथ–साथ वे प्रत्यय आ जाते हैं। मन या चित्त से ही भिन्न–भिन्न समय में या भिन्न–भिन्न स्थितियों में भिन्न–भिन्न प्रत्ययों का उदय होता है। चित्त में पापों के संस्कार रहने से पापों का प्रत्यय उठता है और पुण्यों का संस्कार रहने से पुण्यों का प्रत्यय उठता है। जिसके अन्दर क्रोध का संस्कार है और सदा ही क्रोध के संस्कार उठते हैं। क्षमा–गुण का अवलम्बन करने से उसके अन्दर क्षमा के संस्कार संचित होते रहेंगे और क्षमा के संस्कार चित्त के अन्दर रहते हुये क्रोध के संस्कारों को विनष्ट करेंगे। इसी का नाम देवासुर संग्राम है। हमारे अन्दर सदा देवासुर संग्राम चल रहा है। कभी देवों का जय होता है और कभी असुरों का जय होता है। जागरण में और स्वप्न में यह युद्ध चालू है।

4. निरोध और व्युत्थान का युद्धः– प्रत्ययों के उठने का नाम ही व्युत्थान है और उनके दबे हुये रहने का नाम ही निरोध है। निरोध और व्युत्थान संस्कार दोंनों ही चित्त में रहते हैं। समाधि–अभ्यास के द्वारा निरोध संस्कारों को वर्धित करना और व्युत्थान–संस्कारों को विनष्ट करना चाहिये। निरोध और व्युत्थान परस्पर विरोधी हैं। निरोध का परिमाण ज्यादा होने से व्युत्थान कम हो जाता है और व्युत्थान का परिणाम ज्यादा होने से निरोध कम हो जाता है। व्युत्थान–संस्कार से समाधि भंग होती है और निरोध–संस्कार से समाधि गाढ़ होती है। निरोध परिमाण पूर्ण होने से व्युत्थान परिणाम निःशेष रूप से विनष्ट हो जाता है और व्युत्थान संस्कार क्षय प्राप्त होने से चित्त संस्कार–शून्य होता है। इस रूप से चित्त संस्कार शून्य होने से ही चित्त लय प्राप्त होगा। जिसे योगी लोग चाहते हैं। ये सब संयम साधना की प्रस्तुति मात्र ही है।

योग की विभूतियाँ

1. संयम का बलः— किसी विषय पर धारणा, ध्यान और समाधि के प्रयोग करने से संयम बनता है। संयम ही प्रकृत योग बल है। इस संयम से ही अतीन्द्रिय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। दुःसाध्य कर्म साधित होता है और कैवल्य या मुक्ति तक मिलती है। योग की विभूतियाँ या ऐश्वर्य संयम से ही आ जाते हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन के विभूति पाद में संयम लभ्य विभिन्न विभूतियों के वर्णन किये हैं। जिसकी साधना अभ्यास के लिये बहुत ही कठोरता के साथ आबू शैल में मेरा तीन वर्ष का काल बीत गया था। अपनी व्यक्तिगत अभिज्ञता और अनुभूति से ही मैं उनमें से कई एक विभूतियों और ऐश्वर्यों का वर्णन करूँगा। मैंने पहले ही आपसे अनुरोध किया था कि मेरी मृत्यु तक इसका प्रकाशन नहीं होना चाहिये।

2. प्रज्ञालोक की प्राप्तिः— महर्षि पतंजलि ने कहा है कि संयम को जय करने से प्राज्ञालोक (प्रज्ञा+आलोक) मिलता है। यह परीक्षित सत्य है । संयम जब परिपक्व और स्वाभाविक हो जाता है, तब समाधि—प्रज्ञा का आलोक मिलता है। इस आलोक के प्रकाशित होने से अलौकिक ज्ञान और शक्ति—लाभ होता है। चिन्तनीय विषयों का पूर्णज्ञान आ जाता है। स्थूल दृष्टि से या स्थूल ज्ञान से हम लोग वस्तुओं के आंशिक स्थूल तत्वों को जान सकते हैं। किन्तु समाधि ज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान से हम लोग वस्तुओं के बारे में स्थूल—सूक्ष्म सब कुछ जान सकते हैं। उपस्थित आचार—व्यवहार कार्य प्रणाली देखकर हम लोग किसी मनुष्य के बारे में स्वल्प ही जान सकते हैं, लेकिन समाधि जात सूक्ष्म दृष्टि से हम लोग उसके जीवन के भीतर—बाहर प्रकाशित—अप्रकाशित सब कुछ जान सकते हैं। चिकित्सक बीमारों को, शिक्षक छात्रों को, विचारक अभियुक्त व्यक्तियों को या विक्रेता—क्रेताओं को कुछ न कुछ मनःसंयम के प्रयोग से दूसरे व्यक्तियों से अधिक समझ लेते हैं। यह संयम जब इच्छाधीन किया जा सकता है। तब ही समझा जायेगा कि संयम—जय हो गया है। इसी का नाम प्रज्ञालोक है। संयम—साधन से

यहाँ ज्ञानालोक परिपूर्ण रूप से आ जाता है।

3. भूत भविष्यत् का ज्ञान–लाभः– हम लोग वर्त्तमान् को देखकर कुछ न कुछ अतीत और भविष्यत् की अवस्था जान लेते हैं। जिनकी बुद्धि जितनी सूक्ष्म और स्थिर होगी, वे उतने ही सूक्ष्म विचार से अधिकतर निश्चित सिद्धान्त में पहुँच जायेंगे। संयम साधक योगी का चित्त अत्यधिक स्थिर और सूक्ष्म होने के कारण, वे अतीत और भविष्यत् को अत्यधिक अनुभव कर सकते हैं। पतंजलि के मतानुसार वस्तुओं के त्रिविध परिणाम– (धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम) को और व्यक्तियों के चित्त के सप्त परिणाम, (निरोध परिणाम, कर्म परिणाम, संस्कार परिणाम, क्षण परिणाम, जीवन परिणाम, क्रिया परिणाम और शक्ति परिणाम) को समझकर उन पर संयम प्रयोग करने से अर्थात् चित्त में धारणा, ध्यान, प्रवाह और समाधि की स्थिरता के उत्कट शक्ति को एक साथ प्रयोग करने से उस वस्तु या व्यक्ति के पूर्व वृत्तान्त और भविष्यत् की सम्भाव्य घटनायें प्रत्यक्षवत् प्रतिभासित होंगी।

4. सर्व जीवों के शब्द और भाषाओं का ज्ञान लाभः– ऋषि पतंजलि ने कहा है कि शब्द, अर्थ और प्रत्यय के परस्पर अध्यास के कारण स्मृति में संकर होती है, परन्तु इन तीनों के प्रविभागों में संयम करने से सर्व जीवों के शब्दों का ज्ञान आ जाता है।

ऋषि का कहना यह है कि हम लोग सब मनुष्यों, पशु, पक्षी, सर्प, कीट, पतंगादि सर्वजीवों की भाषाओं को समझ सकते हैं। यदि हम लोग उन भाषाओं के शब्द, अर्थ, प्रत्ययों को अलग–अलग करके उन सब में संयम का प्रयोग करें, तब जैसे मनुष्य मनुष्यों की भाषाओं को वैसे ही सर्प आदि प्राणियों की भाषा को पृथक्–पृथक् समझ सकते हैं। अलग–अलग भाषाओं को समझ लेते हैं। व्यक्ति सामान्यतया दूसरे की भाषा को नहीं समझते हैं, केवल मनोभावों और गतिविधियों से थोड़ा बहुत समझ लेते हैं। अब प्रश्न आता है कि मामूली आदमी दूसरे प्राणियों की भाषा क्यों नहीं समझते हैं? संयम प्रयोग करने से योगी लोग कैसे समझते हैं? पतञ्जलि ने इसमें हेतु दिखाया है कि मामूली आदमी शब्दों के

साथ अर्थ और प्रत्ययों में अलग–अलग संयम प्रयोग करके उच्चारित शब्दों के अभिप्रायों को नहीं समझते हैं। अब शब्द, अर्थ और प्रत्यय का अभिप्राय समझना चाहिये।

शब्दः– एक प्रकार की ध्वनि जो कि श्रोत्र रूप इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य पदार्थ है।

अर्थः– उस श्रोत्र रूप इन्द्रिय से ग्राह्य पदार्थ की जाति, गुण और क्रियादि का आश्रय।

प्रत्ययः– उस पद–अर्थ के आकार से पदार्थ प्राप्त ज्ञान।

शब्द, अर्थ और प्रत्यय (ज्ञान) भिन्न–भिन्न हैं। लेकिन ये एक ही विषय–जैसे हमारे मन में उदित होते हैं।

1. शब्दः– मान लो 'गौ' एक शब्द है। यह वाग्–यंत्र से उच्चारित हुआ और कर्ण ने उसको ग्रहण किया। इस शब्द का आश्रय स्थल हमारा वाग् यंत्र ही है।

2. अर्थः– इसका अर्थ एक चतुष्पद प्राणी है, चार पैर, दो शृंग और एक पुच्छ वाला है। गौशाला इसका आश्रय स्थल है।

3. ज्ञानः– प्रत्यय (ज्ञान) भी एक भिन्न तत्त्व है और इसका आश्रयस्थल चित्त है।

इन तीनों विषयों को हम लोग पृथक्–पृथक् नहीं लेते हैं। एक साथ एक ही विषय के समान ले लेते हैं। यह तीनों विषयों का मिश्रित ज्ञान है। इस रूप से लेने से किसी एक विषय का सुस्पष्ट ज्ञान हमको नहीं मिलता है। हमारा यह ज्ञान शब्द, अर्थ और प्रत्यय के बारे में सुस्पष्ट या स्फुट ज्ञान नहीं है। इसमें से किसी एक का स्फुट ज्ञान पाने के लिये केवल उस पर ही संयम का प्रयोग करना पड़ेगा। एक के स्फुट ज्ञान से अपर दोनों को छोड़ देना होगा। तब ही उस विषय में पूर्ण और स्फुट ज्ञान होगा।

भाषा से भाव का प्रकाश होता है। प्रत्येक जीव भाषा या शब्द के द्वारा मनोभाव का प्रकाश करता है और समजातीय जीव उसको समझ लेता है। भाषा या शब्द की भिन्नता होने पर भी भाव की भिन्नता नहीं है। संयम सिद्ध योगी संयम के द्वारा सब प्राणियों के ही मनोभाव समझ लेते हैं। मनोभाव ही भाषा का

रूप ग्रहण करके निकलता है। मनोभाव अव्यक्त है, मामूली आदमी उसको नहीं जानता है। भाषा व्यक्त और मनोभाव अव्यक्त, अप्रकाशित है। अव्यक्त में स्थिति तमोभाव है। रजोगुण के द्वारा यह उत्तेजित होता है और सत्त्वगुण के द्वारा प्रकाशित होता है।

भाव की भिन्नता नहीं है। भाषा की भिन्नता है। सबके वाग् यंत्र भी समान नहीं हैं । इसलिये भिन्न–भिन्न प्राणी वाग् यंत्रों के अनुसार अपनी अपनी भाषा का उच्चारण करते हैं। इन शब्दों को छोड़कर केवल अर्थ–मात्र में संयम प्रयोग के द्वारा हम लोग सब प्राणियों के मनोभावों को जान सकते हैं। शब्द और अर्थ या प्रत्यय को मिश्रित रूप से ग्रहण करने से हम लोग मनोभाव को नहीं जान सकते हैं। चित्त शब्द–पथ से शब्दों के उत्पत्ति स्थान वाग् यंत्र में जाता है और आगे वाग्यंत्र की क्रिया के उत्पत्ति स्थान मन में प्रवेश करता है। इस रूप से मनोभाव जाना जाता है। श्रोता इस रूप से वक्ता के मनोभाव को पूर्णतया जान सकते हैं। साधारण मनुष्य की सूक्ष्म दर्शन शक्ति नहीं है, लेकिन योगी की सूक्ष्म दर्शन शक्ति है। योगी शब्द मात्र में संयम प्रयोग करके और वर्णादि की सहायता के बिना ही अपर के मन में जो पद विद्यमान है, उसको जान सकते हैं। अपर अपने मनोभावों को वर्णों के द्वारा प्रकाश नहीं भी करे, तथापि योगी उसकी मनोगत चिन्ता को भी समझ लेते हैं। इस प्रकार योगी शब्द, अर्थ और प्रत्यय को प्रविभाग से संयम में लाकर सभी प्राणियों के उच्चारित शब्दों के अर्थज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। योगी धारणा, ध्यान और समाधि के क्रमानुसार तीक्ष्ण और तीव्र रूप से प्रयोग करके अर्थात् संयम के द्वारा सभी प्राणियों के शब्द या भाषाओं को समझ लेते हैं।

5. पूर्व जन्मों का ज्ञान–लाभः– महर्षि पतंजलि ने कहा है कि संस्कारों के साक्षात्कार होने से पूर्व जन्मों का ज्ञान होता है। संस्कार ज्ञान और कर्मों की छाप है। हमने पूर्व जीवनों में जो कुछ किया है और जो कुछ जाना है। उन सब कर्मों के और ज्ञानों के संस्कार हमारे चित्त में संस्कार के रूप में या अति सूक्ष्म बीजाकार में मौजूद हैं। उन संस्कारों के कारण वासनाओं का उदय होता

है और वासनाओं से कर्म और ज्ञान होते हैं। पुण्य कार्य करने से पुण्य संस्कार, निर्मल ज्ञान से निर्मल ज्ञानों का संस्कार, पापमय कर्म करने से पापों का संस्कार और मिथ्या ज्ञान लेने से मिथ्या ज्ञानों का संस्कार हमारे अन्दर जमा होने लगता है। जन्म–जन्मान्तरों में ये संस्कार हमारे सूक्ष्म शरीर के साथ चलते हैं।

इन संस्कारों को हम आँखों से नहीं देख सकते हैं। तब किस प्रकार महर्षि पतंजलि के कथनानुसार संस्कारों का साक्षात्कार होगा? ये बहिरिन्द्रियों से नहीं देखे जाते हैं, लेकिन अन्तःइन्द्रिय यानी अन्तःकरण के द्वारा इन संस्कारों का साक्षात्कार हो सकता है। प्रयत्न करने से हम सब कोई पूर्व जन्मों के संस्कारों को समझ सकते हैं। संस्कारों से हमारे अन्दर वासनाओं का उदय होता है। काम, क्रोध या लोभ की वासनाओं के प्रभाव से आदमी काम, क्रोध या लोभ के कार्य करते हैं। इन सब कार्य–प्रणालियों को देखकर हम लोग समझ सकते हैं कि मेरे अन्दर या दूसरे के अन्दर कौन सी वासनायें प्रबल हैं। ये सब वासनायें हम सब के चित्तों से ही निकलती हैं, शरीर चित्त की वासनाओं के अनुसार कर्म करता है। शरीर चित्त के अधीन है। चित्त ही हमारे शरीर कर्मों का कर्ता है। कोई चोरी करते हैं, कोई दान करते हैं, कोई कलह करते हैं, कोई विनयी हैं, कोई क्रोधी हैं– इससे पता चलता है कि पूर्व जीवन में कौन कैसा था या किसके अन्दर कौन–सा संस्कार प्रबल था। पूर्व जीवनों के संस्कारों के अनुसार हमारे यहाँ के जीवन चलते हैं। यहाँ की कार्य प्रणाली हमारे संस्कारों से है। जिनके अन्दर जो–जो संस्कार प्रबल हैं, उनके ऊपर प्रबल रूप से संयम के प्रयोग करने से योगी उन संस्कारों के बारे में पूर्ण ज्ञान पायेंगे और संस्कार के बारे में पूर्ण ज्ञान मिलने से ही योगी पूर्व जन्मों के बारे में ज्ञान पायेंगे। उनको पूर्वजन्मों के कार्य, स्थान, वर्ण, आश्रमादि सब विषयों के दर्शन होने से पूर्व–पूर्व जन्मों के पाप–पुण्य, सुख–दुःखों के बारे में भी जानकारी हो जायेगी। ये लोग ही जाति–स्मर बोले जाते हैं। कोई–कोई जाति स्मर रूप से ही जन्म लेते हैं।

6. पर–चित्त का ज्ञानः– पतंजलि ने कहा है कि प्रत्यय पर संयम के प्रयोग करने से दूसरे चित्त के बारे में ज्ञान होगा। खंड–खंड ज्ञानों के नाम

प्रत्यय हैं। चित्त से प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। अपने चित्त से और दूसरे के चित्त से भी प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। पहले अपने चित्त के प्रत्यय पर संयम के प्रयोग का अभ्यास अच्छी तरह करने से दूसरे के चित्त पर संयम का प्रयोग किया जा सकता है। दूसरे के चित्त पर संयम का प्रयोग करने से उसके मनोभाव समझ में आ जाते हैं। साधारण मनुष्य दूसरे के आकार इंगित गतिविधि चाल–चलन, कथा–वार्त्ता, काम–काजों को देख कर उसके मनोभावों को जान लेते हैं। इस तरह से जाने हुये मनोभाव अस्पष्ट हैं। लेकिन योगी लोग दूसरे के चित्त से उत्पन्न प्रत्ययों पर संयम के प्रयोग से उसके मनोभावों को सुस्पष्ट रूप से जान सकते हैं।

साधारण मनोभावों को जान लेने पर भी उसकी भाव्य और चिन्तनीय वस्तु अज्ञात ही रह जाती है। इसलिये उसके मनोभावों पर भी संयम का प्रयोग करने से उसकी मनोभावनाओं की केन्द्रीय भाव्य और चिन्तनीय वस्तु अर्थात् अवलम्बन का ज्ञान भी आ जायेगा।

7. अन्तर्धान की शक्तिः– पतंजलि ने कहा है कि कायिक रूप से प्रति संयम के प्रयोग करने से काया की ग्राह्य शक्ति स्तम्भित होती है, दूसरे की चक्षु इन्द्रिय की दृष्टिशक्ति, कर्ण की श्रवण शक्ति, नासिका की गन्धन शक्ति, जिह्वा की रसन शक्ति और त्वक् की स्पर्शन शक्ति की ग्रहण शक्ति भी बेकार बन जाती है। योगी की काया दूसरे के लिये इन्द्रियातीत बन जाती है। यह ही योगियों का सम्पूर्ण संयम बल से अदृश्य, अश्रोतव्य, अगन्धनीय, अनास्वादनीय या अस्पर्शनीय होना है या अपने को अन्तर्धान करना है। जब शरीर और इन्द्रियों के साथ दूसरे का सम्पूर्ण सम्बन्ध छिन्न हो जाता है तब ही योगी का पूर्ण अन्तधर्ान है। संयम सिद्ध योगी की अपने शरीर के रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध पर संयम के प्रयोग करने से उन सब रूप, रसादि से इन्द्रिय ग्राह्य शक्तियाँ स्तम्भित हो जाती हैं। बाहर के मनुष्यादि प्राणीयों के चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, रूप ज्ञानेन्द्रियों की रूप रसादि को ग्रहण करने की शक्तियाँ बेकार बन जाती हैं। वे योगी कोई किसी इन्द्रिय के द्वारा भी अनुभव नहीं कर सकते हैं । इसी का

नाम योगी का अन्तर्धान होना है। यह ''इन्द्रजाल'' नहीं है। यह वास्तव सत्य है। योगी लोग स्वकीय कायागत रूप रसादि के प्रति चक्षु–जिह्वादि से ग्रहणीय गुणों के प्रति निषेधात्मक संयम का प्रयोग करते हैं अर्थात् हमारे शरीर में रूप, स्पर्शादि कुछ नहीं है– एतत् प्रकार ध्यान प्रवाह को उत्थापित करते हैं। उनकी उस प्रकार की अनिर्वचनीय शक्ति सम्पन्न भावना के प्रभाव से दूसरे की इन्द्रिय–शक्ति स्तब्ध होकर क्रियाहीन हो जाती है अर्थात् वह रूपादि विषयों को ग्रहण नहीं कर सकती है।

8. मृत्यु और मृत्यु के दिन को जानना:– पतंजलि ने कहा है कि सोपक्रम या निरुपक्रम कर्मों में जो कि पूर्व जन्मार्जित धर्माधर्म है। उन पर संयम प्रयोग करने से या अरिष्ट दर्शन से अपरान्त का अर्थात् मृत्यु का ज्ञान होता है। कर्म दो प्रकार के हैं:–1. सोपक्रम और 2. निरुपक्रम।

जो कर्म फलदान के लिये प्रवृत्त हुये, वे सोपक्रम कर्म हैं। जो कर्म अब भी फल देने में प्रवृत्त नहीं हुये, वे निरुपक्रम हैं।

इन सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के संस्कार लेकर ही मनुष्यों ने जन्म लिया है और उन उन संस्कारों के अनुसार जन्म, आयु और भोगों को प्राप्त किया है। जिस प्रकार के संस्कार हैं, उसी प्रकार के भोग और आयु भी होंगे। इन सब सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के ऊपर संयम के प्रयोग करने से हमारे जीवन काल के अपरान्त का अर्थात् मृत्यु का ज्ञान मिलेगा। आयु के दो अन्त हैं:– एक जन्म और दूसरा मृत्यु। जन्म के दिन से आयु आरम्भ होता है और मृत्यु दिवस में शेष हो जाता है। चित्त में रहने वाले दो प्रकारों के कर्मों पर संयम के प्रयोग करने से योगी को मृत्यु का ज्ञान हो जाता है अर्थात् किस स्थान में किस काल में और किस स्थिति में मृत्यु होगी यह योगी जान सकता है।

अरिष्टों को देखने से भी मृत्यु का ज्ञान होता है। जो लोग योगी नहीं हैं, वे लोग सोपक्रम निरुपक्रम कर्मों पर संयम के प्रयोग करने की प्रणाली को नहीं जानते हैं। साधारण लोग भी अरिष्टों को जान सकते हैं और उनसे मृत्यु को जान सकते हैं। अरिष्ट तीन प्रकार के होते हैं:– आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधि

भौतिक। अरि अर्थात् शत्रुओं से हमारे भय के जो कारण हैं, वे ही हमारे अरिष्ट हैं। अरिष्ट मृत्यु के पूर्व–लक्षण हैं। अपने शरीर, मन और आत्मा के बारे में अरिष्ट आध्यात्मिक हैं। दूसरे प्राणियों के बारे में अरिष्ट आधिभौतिक हैं। आकाश, ग्रह, नक्षत्रादि के बारे में अरिष्ट आधिदैविक हैं। गुरु जी ने मुझको लगभग एक सौ प्रकार के अरिष्टों के बारे में परिचय दिया था।

9. विशेष–विशेष अरिष्टों के नमूनेः–

1. दृष्टि ऊपर हो गई, सुस्थिर नहीं है, रक्त वर्ण हो गई है, परिवर्तित हो गई है, मुख के अन्दर ऊष्मा नष्ट हो गई है या नाड़ी ठंडी हो गई है; इन सब लक्षणों से मालूम होता है कि मृत्यु अतिनिकट है। साधारणतः कठिन रोगियों में ये लक्षण आ जाते हैं।

2. जिसका देहस्थ वायु स्तम्भित हो गया है। मर्म–स्थान छिन्न–भिन्न हो गये हैं। जल–स्पर्श असहनीय मालूम होता है, तब उसकी मृत्यु आगत है, यह समझना चाहिये।

3. आसन्न मृत्यु व्यक्ति अरुन्धती (जिह्वा), ध्रुव (नासाग्र), विष्णुपद (भ्रूमध्य), और मातृ–मण्डल (आँखों का मोती) को नहीं देख सकते हैं और उत्तराकाश की अरुन्धती और ध्रुव नक्षत्र को भी नहीं देख पाते हैं।

4. श्वास वायु यदि नासापथ छोड़कर मुख से निकलता हो– यह भी रोगी की निकट मृत्यु का लक्षण है।

5. नासिका बैठ गई है, बायें आँख से आँसू निकल रहे हैं, यह भी आसन्न मृत्यु का लक्षण है।

6. दस रोज नासा के दोनों रन्ध्रों से या रवि नाड़ी से श्वास समान रूप से प्रवाहित हो तो डेढ़ महीने में ही मृत्यु होने वाली है और जब रवि या सूर्य नाड़ी दक्षिण में और चन्द्र नाड़ी वाम में हो तो भी।

7. दो रोज रवि नाड़ी से श्वास प्रवाहित होना भी एक वर्ष के अन्दर मृत्यु की सूचना देती है।

8. एक अहोरात्र वाम नासिका से श्वास प्रवाहित होने से आयु तीन वर्षों

के अन्दर समाप्त होती है।

9. स्वभाव के वैपरीत्य और शरीर के विपर्यय आने से मृत्यु निकट है ऐसा समझना चाहिये।

10. जो दीप निर्माण का गन्ध नहीं पाता है, रात को आग देखने से डर जाता है, दूसरे की आँखों में अपना प्रतिबिम्ब नहीं पाता है, उसकी मृत्यु भी सन्निकट है।

11. जो कर्ण–द्वय में चाप देने (दोनों हाथ रखने) से भीतर के शब्द नहीं सुन पाता है और आँखों पर चाप देने से भी चाक्षुष ज्योति को नहीं देख सकता है, उसकी मृत्यु निकट है।

12. स्नान करने के साथ–साथ जिसकी छाती में पानी तुरन्त सूख जाता है, वह केवल दस दिन और जीवित रहेगा यह समझना चाहिये।

13. कपोत, रक्तपाद पक्षी, गृध्र, काक, उलूक या कोई दूसरा माँसाहारी पक्षी शिर पर गिरता हो, तो यह भी आसन्न मृत्यु की ही सूचना है।

14. कोई कारण मालूम नहीं है, लेकिन कृश व्यक्ति स्थूल हो रहा है और स्थूल व्यक्ति कृश हो रहा है यह भी आसन्न मृत्यु का ही लक्षण है।

15. जो व्यक्ति मूत्र या मल रक्त वर्ण या शुभ्र वर्ण पानी वमन करता हो या उस प्रकार वमन के स्वप्न भी देखता हो, तो यह भी आसन्न–मृत्यु का सूचक है।

16. जो आकाश में छाया–पथ, ध्रुव, नक्षत्र, शुक्रग्रह या अरुन्धती को नहीं देख पाता है वह एक वर्ष से अधिक काल जीवित नहीं रहता है।

17. जो सूर्य मण्डल को किरण माला से परिव्याप्त नहीं देखता है या अग्नि को सूर्यवत् देखता है, उसकी मृत्यु एकादश मास के अन्दर होती है।

गुरुओं से वर्णित इन सब अरिष्ट-लक्षणों में कुछ कुसंस्कार और रूढियाँ भी सम्मिलित हैं, ऐसा मालूम होता है।

10. योग बल से देहत्यागः– योगी लोग अरिष्ट लक्षणों को देखकर ही समाधि–बल से देह–त्याग के लिये तैयार हो जाते हैं। इसी का नाम

इच्छा–मृत्यु है। धार्मिक ब्राह्मण लोग योगासन में बैठे हुये देह को छोड़ना चाहते हैं। वीर, धार्मिक क्षत्रिय योद्धा लोग युद्ध–भूमि में आसन्न और अनिवार्य मृत्यु को समझकर ही समाधि योग से देह को छोड़ देते हैं। क्षत्रिय राजा लोग राज्यभार से मुक्त होकर महाप्रस्थान में चले जाते हैं और निर्जन वनप्रदेशों में तपस्या के बाद योगबल से देहों को छोड़ देते हैं। साधारण गृहस्थ लोग व्याधियों से प्रपीडित होकर या दुर्घटनाओं से आसन्न मृत्यु समझकर उसी प्रणाली से देह को छोड़ना चाहते हैं। जो लोग इस प्रणाली को नहीं जानते, वे भगवान् के स्वरूप–चिन्तन, भगवान् के नाम या मन्त्र का जाप करते हुये देहों को छोड़ देते हैं । बाकी दूसरे लोग मुह्यमान या अचेतन होकर देहों को छोड़ते हैं।

रामायण, महाभारत और पुराणों में इस प्रकार से देह छोड़ने का बहुत उल्लेख है। युद्ध भूमि में भीष्म, द्रोण और भूरिश्रवा का योग–बल से देह छोड़ने को तैयार होना आदि इसके बारे में उज्ज्वल दृष्टांत हैं। प्राचीन काल में किस रूप से मृत्यु होनी चाहिये। इसके बारे में शिक्षा–प्रचलित थी। आज कल इच्छा–मृत्यु की शिक्षा अप्रचलित और बन्द हो गयी है। आज भी कोई–कोई योगी मृत्यु से बहुत पहले ही मृत्यु के लिये तैयार हो जाते हैं। आबू–शैल में मैंने पाँच योगियों को मृत्यु के लिये प्रस्तुत देखा था और दो योगियों के योगासन पर ही देहत्याग को देखा था।

इस उद्देश्य से योगी लोगों के लिए निर्जन पर्वत गुहा, वन–प्रदेश, भू–विवर या उपद्रव शून्य स्थान देह त्याग की स्थिति के अनुकूल हैं। पर्वत गह्वर या भू–विवरों में उष्णता और शैत्य की दृष्टि से वायु सर्वदा परिवर्तनशील नहीं है। शरीर और मन की स्थिति वायु–प्रवाह के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती है। भू–विवर आत्मरक्षा और योग–साधना के लिये सर्वोत्तम है। इच्छा–मृत्यु भी वहाँ सुगम है।

कुम्भक के बल से या वायु की (वेग–वृद्धि) से योगी समाहित या बाह्यज्ञान–शून्य हो जाते हैं। उस समय लगातार कुम्भक करने से समाधि आ जाती है। बाहर की संज्ञा उनकी लुप्त हो जाती है। निःश्वसित वायु को पुनः–पुनः ग्रहण

करने से भी अचैतन्य–अवस्था आ सकती है। क्षुत्–पिपाशा सुख–दुःख वर्जित रहते हुये इसी स्थिति में योगी देह को छोड़ सकते हैं। योगी यह ध्यान रखते हैं कि बद्धवायु देह को प्रभावित नहीं कर सके। शरीर से परित्यक्त विषवायु को अतिद्रुत बार–बार ग्रहण करने से भी योगी को अतिशीघ्र अचैतन्य अवस्था आ सकती है। ठीक मृत्यु के समय देखा जाता है कि योगी को चेतना आ गयी है। अपनी इच्छा से वे प्राणों को देह से निकाल देते हैं। मृत्यु से योगी को शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं होता है । मृत्यु योगी के वश में आ जाती है। देह छोड़ते समय योगी को अपार आनन्द मिलता है।

योगी योग–बल से इस प्रणाली के द्वारा प्राणायाम के कला–कौशल के साथ देह–त्याग करते हैं। आबूशैल में मेरी समाधि–योग–शिक्षा के गुरु स्वामी मोक्षानन्द महाराज ने मेरे सम्मुख इस प्रकार से ही देह को छोड़ दिया था।

11. योगबल से देह त्याग आत्महत्या नहीं है:– योग-बल से देह–त्याग से योगी को आत्महत्या का पाप लगता है कि नहीं? यह प्रश्न भी मेरे पास आया है। पहली बात तो यह है कि आत्मा की हत्या होती ही नहीं। आत्मा अमर है। मनो–विकार के कारण अपने जीवन के गुरुतर कर्तव्य–भार से बचने के लिये या किसी मानसिक विकार या दुर्बलता के कारण देह छोड़ने की चेष्टा या देह को छोड़ना–यह तो पाप अवश्य है। लेकिन देह से जो कुछ पूरा करना था सबका सब पूरा करके या महत्तर उद्देश्य–सिद्धि के लिये पूर्ण वैराग्य के साथ परमगति लाभार्थ देह को समाधि योग से छोड़ने की आप्त पुरुषों ने निन्दा नहीं की है, बल्कि प्रशंसा ही की है। आप्त–पुरुषों के आचार या वाक्य ही हमारे लिये प्रमाण हैं। श्रुति या स्मृति भी इसकी विरोधी नहीं है।

12. मनोबल लाभ:– पतंजलि ने कहा है कि सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री–भावना, दुःखी व्यक्तियों के प्रति करुणा भावना, पुण्यवान् व्यक्तिओं के प्रति आनन्द भावना और पापी–व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा–भावना रखने से अत्यधिक बल–लाभ होता है। इन चारों भावनाओं के प्रति संयम का प्रयोग करने से मैत्री–बल, करुणा–बल, आनन्द–बल और उपेक्षा–बल के लाभ होते हैं।

इन चारों बलों से योगी जगद्‌वासी सर्व प्राणियों के हृदयों का जय कर सकते हैं। योगी प्राणियों के सुख–दाता सहृदय मित्र बनते हैं और इच्छा–मात्र से ही प्राणियों के खास–खास दुःखों को दूर कर सकते हैं। इन भावनाओं की संयम–सिद्धि से मन में असीम बल का संचार होता है। पाप से मन दुर्बल होता है। जिसके मन में पाप है, उसके देह में बल रहने पर भी मन दुर्बल रहता है। जिसके मन में पाप नहीं है, वह कभी कहीं से और किसी से भी भीत नहीं होता है, सर्वदा वह निर्भय रहता है। मन में दुर्बलता रहने से मन में शान्ति भी नहीं रहती है। मन सदा ही अशान्ति से पूर्ण रहता है। मन में राग, द्वेष, हिंसादि नीच भावनायें रहने से मन कभी सुख को प्राप्त नहीं होता है। मन की इन नीच भावनाओं को दूर करने के लिये योगी मैत्री, करुणा और मुदिता भावनाओं पर संयम के प्रयोग करते हैं। कोई–कोई योगी उपेक्षा पर संयम नहीं करते हैं, क्योंकि उपेक्षा भावना का विषय बन ही नहीं सकता। मनुष्य जिस विषय के सम्पर्क में रहेगा, उसका चित्त उसी में ही अभ्यस्त हो जायेगा और उस विषय में रहना ही उसको अच्छा लगेगा। सर्वदा सत् चिन्ता सदिच्छा को चित्त में रखने से चित्त सत् हो जाता है और असत् चिन्ता और असदिच्छा चित्त में उठती ही नहीं। इसलिये योगी मैत्री आदि सद्‌भावनाओं पर संयम–प्रयोग करके चित्त को सत्, शुभ और पवित्र बना लेते हैं और मन को असीम बल का अधिकारी कर लेते हैं।

13. शारीरिक बल लाभः– पतंजलि ने कहा है कि योगी हस्ती, व्याघ्र, सिंह, अश्व, वायु आदि बलशाली सत्त्वों के बलों पर संयम के प्रयोग करके, चित्त को तन्मय भावों से परिपूरित करके उन–उन बलिष्ठ तत्त्वों के बलों से शरीर को बलवान् करते हैं। शरीर में बल नहीं रहता है, चित्त का बल ही बल है। चित्त के बल से ही शरीर बलवान् होता है और बल–साध्य कर्म करता है। यदि योग–बल से चित्त में बलशाली सत्त्वों के बल को आहरण किया जाय तो बलहीन भी बलशाली बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।

14. दिव्य चक्षु लाभः– पतंजलि ने कहा है कि ज्योतिष्मती प्रवृत्ति रूप आलोक को (अन्तःकरण के सार-स्वरूप सात्विक प्रकाश को) यदि सूक्ष्म,

व्यवहित (अन्तरालवर्ती व्यवधानयुक्त) और विप्रकृष्ट (दूरवर्ती) वस्तुओं में संयम प्रयोग किया जाय तो वे सूक्ष्म, व्यवहित या विप्रकृष्ट वस्तुएँ यथार्थरूप से प्रकाशित (ज्ञान) हो जायेंगी। चक्षुओं की दृष्टि से जैसे वस्तु प्रकाशित होती है, वैसे ही ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से या सात्विक आलोक से चक्षुओं की दृष्टि से अन्तर्हित वस्तुएँ भी प्रकाशित होती हैं। अतिसूक्ष्म परमाणु आदि क्षुद्र वस्तु, भूमध्यस्थ या अन्तरालवर्ती गुप्त वस्तु या अति दूरवर्ती वस्तुओं मे भी इस अन्तःकरणस्थ अनन्य साधारण ज्ञानशक्ति यानी ज्योतिष्मती आलोक के प्रयोग से प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। इसी का नाम कभी–कभी योगी लोग ''दिव्यचक्षु'' बताते हैं।

15. जगत् चक्र का ज्ञान लाभः– पतंजलि ने कहा है कि सूर्य में संयम का प्रयोग करने से चतुर्दश भुवनों का ज्ञान होता है। चन्द्र में संयम प्रयोग करने से ताराओं में गुच्छकार में अवस्थिति सम्बन्ध में ज्ञान होता है और ध्रुव नक्षत्र में संयम प्रयोग करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है। इन सब सिद्धियों को योगी लोग बाह्य–सिद्धि बोलते हैं। इसके पश्चात् अध्यात्म–सिद्धि के बारे में भी पतंजलि ने कहा है।

16. शरीर तत्त्व का ज्ञान–लाभः– पतंजलि ने कहा है कि नाभि–चक्र में संयम के प्रयोग करने से कार्य–व्यूह अर्थात् शारीरिक संस्थान का ज्ञान लाभ होता है। शरीर में जहाँ जो कुछ है, सबका सब मालूम हो जाता है। यथाः–

त्रिगुण– सत्त्व, रजः और तमः;
त्रिदोष– वायु, पित्त और श्लेष्मा;
त्रिःदेह– स्थूल, सूक्ष्म और कारण;
त्रिताप– आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक;
त्रिस्थिति– उत्तम, मध्यम और अधम;
त्रिगति– ऊर्ध्व, मध्य और अधः;
चार स्थिति– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य;

चार अवस्था– जन्म, वृद्धि, स्थिति और क्षय;
चार काल– बाल्य, यौवन, जरा और वार्द्धक्य;
चार अन्तःकरण– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार;
चतुर्वर्ग– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष;
पञ्चभूत– क्षिति, अप्, तेज, मरुत् और व्योम;
पञ्च तन्मात्रायें– रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध;
पञ्च ज्ञानेन्द्रिय– चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक्;
पञ्च कर्मेन्द्रिय– वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ;
पञ्च प्राण– प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान;
पञ्चकोश– अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय;
छः रिपु– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य;
षट्चक्र– स्वादिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार;
सप्तधातु– रस, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा और शुक्र या रजः;
अष्ट योगांग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि;
नव द्वार– दो चक्षु, दो नासारन्ध्र, दो कर्ण रन्ध्र, मुख, मलद्वार और मूत्र द्वार;
दशेन्द्रिय– पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चज्ञानेन्द्रिय,
दश प्राण– प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय।
एकादशेन्द्रिय– पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और मानसेन्द्रिय।

इसके उपरान्त यह ज्ञान भी मिलता है कि मानव- शरीर में अस्थि संख्या 360, ग्रन्थि 210, स्नायु 900, पेशी 500 (लेकिन स्त्रियों की 520), शिरा असंख्य (लेकिन प्रधान शिरा 700), रोम केशादि 32 लाख से ऊपर, भुक्त अन्न के परिपाक से उत्पन्न रस 5 अंजलि, रक्त 8 अंजलि, जलीय भाग 10 अंजलि, पुरीष 7 अंजलि, श्लेष्मा 6 अंजलि, पित्त 5 अंजलि, मूत्र 4 अंजलि, वसा (माँस का सार) 3 अंजलि, मेदः (सूक्ष्मास्थियों में रक्त वर्ण पदार्थ) 3 अंजलि, मज्जा

(स्थूलास्थियों में तैलवत् पदार्थ) 1 अंजलि, मस्तिष्क अर्धांजलि, रेतः अर्धांजलि हैं। अंजलि शब्द का अर्थ यहाँ अर्ध सेर है। 12 अंजलि रक्त से अर्धांजलि मात्र शुक्र उत्पन्न होता है। ये सब का सब ज्ञान नाभि–चक्र में संयम के प्रयोग करने से अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में मिलता है।

17. क्षुधा और तृष्णा पर जयलाभः– पतंजलि ने कहा है कि जिह्वा–तन्तु के मूल स्थान में यानी गले गह्वर में कण्ठ में जो कूपाकार स्थान है, जहाँ प्राण–वायु के संघर्ष होने से क्षुधा और तृष्णा का अनुभव होता है। वहाँ संयम के प्रयोग करने से क्षुधा या तृष्णा कुछ भी नहीं रहती है। योगी लोग समाहित होकर सुदीर्घ काल तक रहते हैं। इस प्रक्रिया की सहायता से वे आहार और पानीय वर्जित होकर रह सकते हैं और शरीर भी नष्ट नहीं होता है। मेरे अनुभव में भी यह है।

18. शरीर और मन की स्थिरताः– पतंजलि ने कहा है कि कण्ठ–कूप के नीचे वक्ष–प्रदेश में अत्यन्त दृढ़ कूर्म नाम की नाड़ी है। उसमें संयम के प्रयोग करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है। चित्त को कूर्म नाड़ी में प्रविष्ट रख कर योगी लोग सुदीर्घ काल तक शरीर और मन को स्थिर करते हैं और इसके अभ्यास हो जाने से शरीर और मन समाधि के अनुकूल बन जाते हैं।

19. सिद्ध पुरुषों के दर्शन लाभः– पतंजलि ने कहा है कि मूर्द्धज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन मिलता है। मस्तक कपाल के ठीक मध्य स्थान में ब्रह्मरन्ध्र नाम का अतिसूक्ष्म छिद्र है। उसका नाम सुषुम्ना पथ भी है। सुषुम्ना नाड़ी से हृदय की सात्विक ज्योति या स्वच्छ बुद्धितत्व का प्रकाश वहाँ जाकर जमा होता है। उसी जमी हुई तेजोमयी, प्रकाशमयी, निर्मला, मूर्द्धज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्धपुरुषों का दर्शन होता है। हमारे गुरुजी ने कहा था कि संयम सिद्ध योगी लोग अदृश्यचर और अन्तरिक्षवासी सिद्ध पुरुषों के दर्शन करते हैं और उनके साथ वार्त्तालाप भी करते हैं। हम इस

तत्व को अनुभव में नहीं ला सके। दूसरी–दूसरी इन सब वर्णित विभूतियों के अन्दर बहुत विभूतियाँ हमारे अनुभव के अन्दर आई हैं। ज्ञान दृष्टि से, ऋषि–मुनियों के ग्रन्थों के साधनों से हम सभी के दर्शन करते हैं, चर्म चक्षु से नहीं।

20. प्रातिभज्ञान से वस्तु ज्ञान लाभः– प्रतिभा–प्रसूत ज्ञान का नाम प्रातिभज्ञान है। योगी लोग संयम के बिना ही प्रातिभज्ञान के द्वारा ही प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं के ज्ञान का लाभ करते हैं। प्रातिभज्ञान पर संयम करके भी सब कुछ जान लेते हैं। किसी घटना की सूचना से ही उसके साथ सम्बन्धित घटनाओं के बारे में मन के अन्दर झट जिस ज्ञान का आविर्भाव होता है उसी का नाम प्रातिभज्ञान है। तथ्य–विषयक ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है और पूर्व जन्मों से संचित ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है। शास्त्रों में प्रातिभ ज्ञान के ''ऊह'' और ''तर्कणा'' नाम भी हैं। प्रातिभज्ञान पर संयम करके योगी लोग दूसरे प्रकार के तारक ज्ञान का लाभ करते हैं। जो ज्ञान संसार–तारक है, उसी का नाम तारक ज्ञान है। जिस ज्ञान के द्वारा निस्तार मिलता है, जिससे संसार–समुद्र पार करना सम्भव होता है उसी का नाम तारक ज्ञान है। यह ज्ञान प्रसंख्यान नामक वैराग्य ज्ञान का अर्थात् प्रकृति पुरुष के भेद–ज्ञान का पूर्व रूप है उसी का नाम तारक ज्ञान या प्रातिभज्ञान है। प्रातिभी ज्ञान दूसरे के उपदेश से नहीं होता है। उपदेश के बिना ही जो ज्ञान है वह ही प्रातिभज्ञान है।

21. चित्तज्ञान लाभः– पतंजलि ने कहा है कि हृदय में संयम धारण करने से चित्त के बारे में ज्ञान का उदय होता है अर्थात् अपने चित्त के संस्कार और दूसरे के चित्तस्थ अभिप्राय समझ में आते हैं। चित्त के ज्ञान से इस जीवन का और पूर्व जीवनों का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

22. आत्म–साक्षात्कार लाभः– बुद्धि और आत्मा सर्वथा भिन्न हैं। आत्मा बुद्धि नहीं है और बुद्धि भी आत्मा नहीं है। इन दोनों की भिन्नता का ज्ञान न होने के कारण सुख दुःखादि भोगों को पुरुष यानी आत्मा अपना समझ लेता

है। भोग दूसरे के हैं। पुरुष एक पदार्थ है और पुरुष का भोग दूसरा पदार्थ है। पतंजलि ने कहा है कि इस भेद–भाव या भिन्नता के प्रति संयम का प्रयोग करने से आत्मा–साक्षात्कार यानी आत्मा–ज्ञान लाभ होता है।

प्रकाशरूप सुखादि–स्वभाव बुद्धि नामक अन्तःकरण द्रव्य का दूसरा नाम सत्व है और उसके चेतयिता चैतन्य पदार्थ का नाम पुरुष है। सत्व और पुरुष एक नहीं हैं, भिन्न हैं। लेकिन इन दोनों पदार्थों की भिन्नता मामूली ज्ञान से या बोध से मालूम नहीं होती है। इसलिए ही सुख–दुःखादि का भोग होता है। बुद्धि सत्व ही भिन्न–भिन्न आकारों में परिणत होता है। पुरुष उसी में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये बुद्धि के भिन्न–भिन्न परिणाम भी पुरुषवत् प्रतीयमान होते हैं अर्थात् चैतन्य तुल्य या चैतन्याकार प्राप्त होते हैं। ऐसे ही चैतन्य–प्रतिबिम्बित बुद्धि वृत्ति भी चैतन्य–तुल्य या चैतन्याकार जानी जाती है।

इस तरह के अभेद या तुल्याकार प्राप्त होने का नाम भोग है। यह भोग बुद्धि का ही परिणाम है, बुद्धि का ही धर्म है। लेकिन पर अर्थात् पुरुष उसका निमित्त कारण है। इसलिए यह भोग पुरुषार्थ नहीं है। यह है परार्थ। इस भोग नामक पदार्थ–प्रत्यय के अतिरिक्त दूसरा एक स्वार्थ–प्रत्यय है। सत्व या बुद्धि–तत्व जब कर्त्तृभाव को छोड़कर अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' आदि आकारों में परिणत न हो कर केवल मात्र आत्म चैतन्य से व्याप्त रहता है, निर्मल निस्तरंग निर्विकार बुद्धि–सत्व में जब केवल मात्र चैतन्य का ही प्रतिबिम्ब विराजित रहता है, तब उसको आत्मावलम्बन या स्वार्थ प्रत्यय कहा जा सकता है। योगी लोग उस आत्मावलम्बन में या तादृश स्वार्थ प्रत्यय में संयम का प्रयोग करके पुरुष–विषयक ज्ञान या आत्म–साक्षात्कार या आत्मदर्शन लाभ करते हैं।

भोग पुरुष का बन्धन है। भोग से पुरुष की आत्म–स्मृति नष्ट हो जाती है। पुरुष अपनी स्वतन्त्रता को भूल जाता है। पुरुष तब अपने को प्रकृति से अभिन्न समझ लेता है। पुरुष तब समझ लेता है 'मैं शरीर हूँ, मैं इन्द्रिय हूँ, मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ'' आदि आदि। पुरुष जब–जब भोग में आसक्त रहता है, तब–तब स्वात्म बोध नहीं रहता है। भोग की आसक्ति छोड़ने से, भोगों से विरत होने से

पुरुष को प्रकृति से भिन्नता का प्रत्यय आ जाता है। पुरुष तब अपनी भूल को समझ सकते हैं और इस शुद्ध भाव पर संयम के प्रयोग करके आत्म–स्वरूप की उपलब्धि करते हैं। पुरुष तब दृष्ट स्वरूप होते हैं। प्रकृति तब दृश्य मात्र है और पुरुष साक्षि मात्र है। द्रष्टा और दृश्य का अभिन्न प्रत्यय ही संसार, भोग या बन्धन है और भिन्न प्रत्यय ही मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य है।

बुद्धि के अन्दर तीन गुण हैं- सत्व, रजः और तमः। जब रजः गुण की चंचलता को और तमः गुण के मोहावरण को अभिभूत करके सत्व गुण अत्यन्त प्रकाशशील होता है, तब इसका नाम विवेक प्रत्यय है। यह बुद्धि का चरम सात्विक परिणाम है। विवेक प्रत्यय आत्मदर्शन का सहायक है। आत्मदर्शन से ही मुक्ति होती है। मुक्ति ही मानव–देहधारी आत्मा का चरम लक्ष्य है।

23. दिव्य ज्ञान लाभः– पतंजलि ने कहा है कि उस आत्म–दर्शन से पहले विविध सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। प्रथमतः प्रातिभ–ज्ञान का उदय होता है। प्रातिभ–ज्ञान के बारे में पहले भी कहा गया है। प्रातिभ–ज्ञान के द्वारा सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट (अतिदूरस्थ) और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान–सब कुछ जाना जाता है। इसके बाद अद्‌भुत श्रवण–शक्ति का जन्म होता है। इसके प्रभाव से योगी लोग दिव्य शब्द को सुन सकते हैं। स्पर्श–ज्ञान का नाम वेदना है। योगियों का यह वेदना–ज्ञान इतना अधिक और उत्कृष्ट होता है कि ये लोग दिव्य–स्पर्श भी ग्रहण कर सकते हैं। चाक्षुष–ज्ञान का नाम आदर्श या दर्शन है। यह दर्शन–शक्ति इतनी बढ जाती है कि इच्छा करने से ही योगी लोग इससे दिव्य रूप दर्शन कर सकते हैं। रसनाज्ञान का नाम स्वाद का आस्वादन है। यह इतना प्रबल हो जाता है कि योगी लोग इसके द्वारा दिव्य रस–समूह का आस्वादन ले सकते हैं। गन्ध–ज्ञान का नाम वार्त्ता और संवित्ति है। यह इतनी बढ़ जाती है कि योगी लोग दिव्य गन्धों का अनुभव कर सकते हैं।

बुद्धि से आत्मा भिन्न है यह भिन्नता का ज्ञान आता है। पहले इन्द्रियों से केवल स्थूल विषयों का ज्ञान होता था। अब इन्द्रियगण के मलिनता–हीन होने से सूक्ष्म–ज्ञान का आविर्भाव होता है। जब तक मन के अन्दर हिंसा–द्वेषादि

अपवित्र मलिन भाव रहेंगे। तब तक बुद्धि की विचार शक्ति और मन की चिन्तन शक्ति विशुद्ध नहीं होगी। बुद्धि मलिन होने से उसके अधीन मन और दूसरे इन्द्रियादि भी (मलिन) रहते हैं। यम नियमादि योगांगों के पालन से बुद्धि, मन और इन्द्रियादि निर्मल और शुद्ध होते हैं। तब इनके अन्दर प्रकृष्ट सूक्ष्म ज्ञान और सूक्ष्म–दर्शनादि शक्तियों का जन्म होता है।

24. समाधि के विघ्न और उपसर्गः–इन सब सूक्ष्म दर्शनों का नाम सिद्धि है। व्युत्थान के समय अर्थात् भोगकाल में यह सब सिद्धियाँ हैं, लेकिन ये सब समाधि के परमशत्रु हैं नियमानुसार साधना करने से हर एक साधक कुछ न कुछ सिद्धिलाभ करते हैं। अधम साधक इस प्रकार सिद्धियाँ प्राप्त करके अपने को कृतार्थ समझ लेते हैं और केवल सिद्धि–भोग में ही उन्मत्त हो जाते हैं। वे लोग कैवल्य को प्राप्त नहीं होते हैं, लेकिन इन सब सिद्धियों को अति तुच्छ समझ कर जो साधक इनके प्रति ध्यान न देकर साधना और समाधि के प्रति ही अग्रसर होते हैं, वे साधक ही कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त होते हैं। क्योंकि स्थूल विषय जैसे बन्धन हैं। सूक्ष्म विषय भी वैसे ही बन्धन हैं । जब समाधि का उत्कर्ष प्राप्त होता है। तब ये सब सिद्धियाँ परम विघ्न और उपसर्ग भासती हैं। ये सब उपस्थित होने से मोक्ष–दायक समाधि दृढ नहीं रहती है। ये सब सिद्धियाँ समाधि के परम शत्रु हैं। असमाधि के समय ये सब सिद्धियाँ हैं, लेकिन समाधि के समय ये सब उपद्रव उपसर्ग और विघ्न हैं। कैवल्य–लाभेच्छु योगियों को सब सिद्धियों से सावधान रहना चाहिए।

25. पर–शरीर में प्रवेशः– पतंजलि का कहना है कि जिस कारण से चित्त एकमात्र इस शरीर में ही आबद्ध है इस कारण को हटा देने से अर्थात् चित्त के बन्धन को ढीला कर देने से और चित्त के प्रचार–स्थान (शरीरस्थ नाड़ी समूह) जानने से चित्त को योगी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर सकता है। सर्वत्र गमन करना उसका स्वभाव है। कर्म अर्थात् धर्माधर्म के कारण से ही ऐसा सर्वगामी चित्त केवल मात्र एक ही निर्दिष्ट शरीर में बंधा हुआ है। सर्वगामी चित्त केवल मात्र अपने उपार्जित कर्मों में फंस कर ही असर्वगामी बन गया है। संयम

या समाधि के द्वारा चित्त–बंधन धर्माधर्मों को अगर शिथिल कर दिया जाय तो चित्त अपने स्वभाव सर्वगामित्य की स्वाधीन शक्ति को प्राप्त होता है।

इसके साथ चित्त के संचरणमार्ग अर्थात् गतिविधि के पथ को अच्छी तरह जानना चाहिये। चित्त और प्राण कब कौन से रास्ते अर्थात् कौन–कौन सी नाड़ियों से किस प्रकार संचरण करता है, किसी योगवित् से अच्छी तरह जानना चाहिये। यदि संचरणमार्ग जाना हुआ रहे तो इसके निश्चित रूप से इच्छानुसार स्थानों में प्रेरित किया जा सकता है।

योगी लोग सब से पहले संयम के प्रयोग से चित्त के बन्धन को शिथिल कर देते हैं। चित्त, मन और प्राणों के संचरण के पथ नाड़ी समूह को संयम के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जान कर योगी लोग उस नाड़ी–पथ से बाहर निकाल कर इच्छानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश करके उसमें अपने शरीर के जैसे सुख दुःखादि को अनुभव करते हैं। शरीर के सब ही इन्द्रिय चित्त के अनुगामी हैं। चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश करने से उसके साथ चित्त के अनुगामी सब इन्द्रिय भी उस शरीर में प्रविष्ट होते हैं। योगी अपने शरीर को छोड़कर दूसरे के शरीर में अपने, मन, प्राण और इन्द्रियों को संस्थापित करके इच्छानुसार आहार–विहारादि कर सकते हैं।

26. इच्छामृत्यु और शरीर की लघुताः– पतंजलि का कहना है कि प्राणों के उदान कार्य को अपने अधीन करने से जल, कर्दम, कण्टकादि के ऊपर से यातायात भी सुगम होता है और मृत्यु भी इच्छानुसार होती है।

शरीर के इन्द्रियगण दो प्रकारों के कार्य करते हैं– बाहर के कार्य और भीतर के कार्य। रूप–रसादि का ग्रहण बाहर के कार्य हैं और जीवन को अक्षत रखना भीतर के कार्य हैं। हर एक इन्द्रिय अपने विशेष कार्य करती है और सब इन्द्रियाँ मिलकर एक साधारण कार्य भी करती हैं। सब इन्द्रियाँ सम्मिलित रूप से आभ्यान्तरीण कार्य–विशेष जीवन धारण नामक विशिष्ट कार्य का निर्वाह कर रही हैं। जीवनकार्य इन्द्रिय-समष्टि की क्रियासमष्टि मात्र ही है। पृथक्–पृथक् इन्द्रियों के द्वारा जो पृथक्–पृथक् कार्य होते हैं, उन सब के पृथक्–पृथक् नाम

भी हैं।

इसमें जिस क्रिया के द्वारा हृदय से मुख–नासिका तक श्वास–प्रश्वास वायु की क्रिया साधित होती है, उसी क्रिया का नाम ''प्राण'' है। जिस क्रिया के द्वारा परिचालक वायु नाभि से पादांगुलि तक रस रक्तादि को वहन करके परिव्याप्त करता है, उसी क्रिया का नाम ''अपान'' है। जो क्रिया नाभि–देश को वेष्टन करके भुक्त वस्तुओं के परिपाक मलमूत्रादि के पृथक् करण और रक्तादि का उत्पादन करके यथास्थान ले जाती है, उसी क्रिया का नाम ''समान'' है। जो क्रिया ग्रीवा से मस्तक–चूडा तक सब दैहिक उपादानों को ऊपर की ओर धारण करके स्थिर है, उसी क्रिया का नाम ''उदान'' है। जो क्रिया सर्व शरीर की शिराओं में संचरण करके बल–रक्षा करती है, उसी क्रिया का नाम ''व्यान'' है।

इन सब इन्द्रिय–क्रियाओं के अन्दर यानी प्राण–पञ्चक के अन्दर जिस क्रिया का नाम ''उदान'' है उस पर संयम का प्रयोग करके उसको अपने अधीन करने से दूसरी क्रियाओं के अवरोध हेतु उद्गत–स्वभाव ''उदान'' अत्यन्त प्रबल होता है और सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त हलका हो जाता है। इसलिये योगी ''उदान'' पर संयम–धारण करके जल, पंक, कंटक किसी में भी नहीं धसते। इस उदान जय नामक क्रिया को योगी आसन पर बैठे हुये अभ्यास करते हैं और शरीर हलका होने के कारण आसन से ऊपर शून्य में सूर्यवत् उठ जाते हैं और कभी–कभी बैठे हुये शून्य में घूमते हैं।

पृथिवी हमारे शरीर को सर्वदा नीचे की ओर आकर्षण करती है। जिस क्रिया की सहायता से चलने के समय हम लोग शरीर को उठा सकते हैं वह ही ''उदान'' है। ''उदान'' से ही हम लोग पृथिवी से पैर को ऊपर उठा सकते हैं। ''उदान'' से शरीर अत्यन्त लघु होता है। योगी जल के ऊपर चल सकते हैं और कंटकों के ऊपर बैठ और शयन भी कर सकते हैं।

''उदान'' की सहायता से मृत्यु के समय अपनी इच्छा से प्राण को शरीर से निकाल सकते हैं। मृत्यु के कारण योगी के शारीरिक या मानसिक किसी तरह का कष्ट नहीं होता। आनन्द के साथ देह को विसर्जन कर सकते हैं। ये सबके

सब ''उदान'' पर संयम के प्रयोग करने से सम्भव होता है।

27. तेजोमय शरीर—लाभः— पतंजलि ने कहा है कि ''समान'' वायु पर संयम के प्रयोग करने से तेजोमय शरीर लाभ होता है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं जठराग्नि उसको जीर्ण या परिपक्व कर देता है और समान—वायु उस परिपक्व या जीर्ण अन्नरस में समानता भी लाता है। शरीर में जहाँ जैसा आवश्यक है वह वहाँ ऐसे ही शरीर यन्त्र का परिपोषण करता है। प्रयोजन के अनुसार यह समान—वायु जठराग्नि को सर्व शरीर में भेज कर शरीर में उष्णता की सृष्टि करता है। इसलिये ही इसका नाम ''समान'' वायु है। इस समान वायु पर संयम का प्रयोग करने से अग्नि योगी के अपने वश में आ सकता है। योगी लोग तब इच्छानुसार शरीर को उज्ज्वल या तेजोमय कर सकते हैं और प्रयोजन आने पर अपने देहों को उस योगाग्नि से भस्मीभूत भी कर सकते हैं।

कभी—कभी देखा जाता है कि मृत्तिका से एक तरह की ऊष्मा निकलती है। ठीक उसी तरह शरीर में भी ऐसी ऊष्मा विद्यमान है। वह मन और इन्द्रियों का क्रिया—प्रवाह या बहिःस्फुरण है। समान वायु पर जय लाभ होने अर्थात् समान वायु पर संयम के प्रयोग करने से उस ऊष्मा का स्फुरण वृद्धि को प्राप्त होता है और परिशुद्धि होती है। साधारण मनुष्य उस योगी को तेजस्वी या अग्निमय रूप में अनुभव करते हैं।

28. दिव्यश्रोत्र लाभः— पतंजलि ने कहा है कि श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध पर संयम धारण करने से दिव्य श्रोत्र का लाभ होता है। यह उपलक्षण से बोला गया है। इसी रूप से दूसरे—दूसरे इन्द्रियों में भी दिव्य गुण आ सकते हैं। शब्दतन्मात्र से आकाश उत्पन्न हुआ है। शब्दतन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय वाक् और तामसिक अंश से प्राण उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार स्पर्शतन्मात्र से उत्पन्न हुआ वायु और उस स्पर्शतन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय त्वक्, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाणि और तामसिक अंश से उदान उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार रुपतन्मात्र से तेज वा अग्नि उत्पन्न हुआ है। उस रुपतन्मात्र के सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय चक्षु, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाद और तामसिक अंश से व्यान उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार रसतन्मात्र से अप् उत्पन्न हुआ है। उस रसतन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय रसना (जिह्वा), राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पायु और तामसिक अंश से अपान उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार गन्धतन्मात्र से पृथिवी उत्पन्न हुई है। उस गन्धतन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय नासिका, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय उपस्थ और तामसिक अंश से समान उत्पन्न हुये हैं।

इससे हम लोग समझ सकते हैं कि पञ्चतन्मात्र से ही पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्र से पाँचभूत, पाँचज्ञानेन्द्रिय, पाँचकर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों के अन्दर परस्पर अति निकट सम्बन्ध है।

जितने विभिन्न जीव हैं। सभी के श्रोत्रेन्द्रियों के साथ आकाश का संयोग है, स्पर्शेन्द्रियों के साथ वायु का, चक्षुरिन्द्रियों के साथ अग्नि का, रसनेन्द्रियों के साथ जल का और नासिकेन्द्रियों के साथ क्षिति का संयोग है। श्रोत्रेन्द्रिय बहुत हैं, लेकिन आकाश एक है। इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय बहुत हैं, लेकिन वायु एक है। चक्षुरिन्द्रिय बहुत हैं, लेकिन अग्नि एक है। रसनेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन जल एक है और नासिकेन्द्रिय बहुत हैं, लेकिन क्षिति एक है।

पाँच भूतों के साथ इन्द्रियों का आधार आधेय सम्बन्ध हैं। योगी लोग इस तत्त्व को जान कर इन सब इन्द्रियों पर संयम का प्रयोग करके दिव्य अर्थात् अलौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ग्रहण करते हैं। इन सब इन्द्रियों के स्थूल और सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की उन में शक्ति है। राग–द्वेषादि के द्वारा इन्द्रियगण मलिन और असंयत रहते हैं। इस स्थिति में सूक्ष्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ज्ञान आता नहीं। इन्द्रिय और पञ्चभूतों के सम्बन्ध पर संयम धारण करके योगी दिव्य–शक्ति लाभ करते हैं। जैसे चुम्बक लौह का संबंध है। चुम्बक

लोहे का आकर्षण करता है, ऐसे ही विषय इन्द्रियों का आकर्षण करता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों विषयों को ग्रहण करने की शक्ति इन्द्रियों की है। साधारण मनुष्य स्थूल विषयों का ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु योगी सूक्ष्म विषयों का भी ग्रहण कर सकते हैं।

29. दिव्य या अलौकिक शक्तिः— योगी शब्द—आकाश—श्रोत्र, स्पर्श—वायु—त्वक्, रूप—अग्नि—चक्षु, रस—जल—जिह्वा और गन्ध—क्षिति—नासिका इनके परस्पर सम्बन्धों पर स्थिर चित्त से धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् संयम का प्रयोग करके दूरवर्ती और सूक्ष्म विषयों का ग्रहण कर सकते हैं। ये लोग दूरवर्ती, अन्तराल और गुप्त स्थानों के दृश्य देख सकते हैं, बातचीत सुन सकते हैं, स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं, गन्ध ग्रहण कर सकते हैं और खाद्य वस्तु का आस्वादन कर सकते हैं। इसी शक्ति का नाम अतीन्द्रिय शक्ति और दिव्य शक्ति या अलौकिक शक्ति भी है।

30. आकाश भ्रमणः— पतंजलि ने लिखा है कि काया और आकाश में जो सम्बन्ध है। उस के प्रति संयम का प्रयोग करने से योगी रुई जैसा हलका बन सकता है और ऐसा अल्प भार होने के कारण वह आकाश में यातायात कर सकता है। जहाँ शरीर है । वहाँ ही आकाश है। आकाश इस भौतिक देह को रहने का अवकाश या स्थान दे रहा है। शरीर व्याप्य और आकाश व्यापक है। आकाश इस देह को अपने सब स्थानों में ही आश्रय दे सकता है। आकाश से वायु, अग्नि, जल और क्षिति की उत्पत्ति हुई है। काया के साथ इन सब ही का क्रमानुसार सम्बन्ध है। योगी लोग इस प्रकार के सम्बन्ध के प्रति संयम का प्रयोग करते हैं, क्रमशः वह सम्बन्ध उनका इच्छाधीन हो जाता है अर्थात् उस सम्बन्ध पर योगी का जय हो जाता है। काया को तब ये लोग रुई जैसी लघु—भावना से अनुध्यान करते हैं और रुई से भी लघु वस्तु का ध्यान करने लगते हैं। तब संयम—बल से योगी का देह अत्यन्त लघु बन जाता है। तब ये लोग क्लेश के बिना ही आकाश में गमनागमन भ्रमणादि कर सकते हैं। यह आकाश—गति अति अल्पकाल के अन्दर ही सिद्ध नहीं होती। योगी धीरे—धीरे क्रमशः सीखते हैं। पहले ये लोग जल

के ऊपर भ्रमण करना सीखते हैं, फिर मकड़ी के धागे के अवलम्बन से, फिर सूर्य रश्मि के अवलम्बन से अति ऊपर आकाश में संचरण और विचरण करना सीख लेते हैं।

31. बहुज्ञता सिद्धिः– पतंजलि मुनि ने कहा है कि बाह्य वस्तु में अकल्पिता मनोवृत्ति रूप महाविदेहा में संयम के प्रयोग करने से प्रकाश का आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

वृत्ति दो प्रकार की हैं– कल्पिता और अकल्पिता। योगी देह के अन्दर रहता हुआ बाहर के किसी विषय में जब संयम करता है। तब उसका नाम कल्पिता वृत्ति है ''मैं देह नहीं हूँ, मैं आकाश हूँ।'' इस प्रकार आकाश–भावना सर्वोत्तम कल्पिता वृत्ति का क्रमशः अभ्यास करने से चित्त देह में नहीं रहता है। चित्त तब आकाश में ही रहता है और आकाशमय हो जाता है। यह ही अकल्पिता वृत्ति है। योगी लोग कल्पिता वृत्ति को "विदेहा धारणा'' बोलते हैं और अकल्पिता वृत्ति को ''महाविदेहा धारणा'' बोलते हैं। यह महाविदेहा धारणा सिद्ध हो जाने से चित्त के प्रकाश के आवरण का क्षय होता है। रजः और तमोगुण और उन दोनों गुणों के कार्यों के सब आवरणों ने चित्त की प्रकाशशक्ति को आवृत कर रखा था, वह आवरण नष्ट हो जाता है। सब विषयों को प्रकाशित करना चित्त का स्वभाव है। ''महाविदेहा धारणा'' से चित्त का आवरण नष्ट हो जाता है। चित्त तब विश्व संसार को प्रकाशित कर सकता है। योगी तब बहुज्ञ बन जाते हैं।

शरीर में योगी का 'अहं– मैं' ज्ञान नहीं है। लेकिन चित्त बाहर के विषयों में निमग्न है। चित्त की इस अवस्था का नाम ही ''महाविदेहा'' है। चित्त की इस स्थिति पर संयम का प्रयोग करने से क्रमशः प्रकाश का आवरण अर्थात् स्वच्छ और व्यापक ज्ञान–शक्ति का प्रतिबन्धक आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

साधक जब ध्यान–धारणा का अभ्यास करते हैं, तब वे दृढतर संकल्प को धारण करके इस धारणा या कल्पना को ले लेते हैं ''देह के प्रति जो मेरा यह अहं–ज्ञान है, वह नष्ट हो जाये और मेरा चित्त बाहर की वस्तु में ही विराजित

रहे। बार–बार वे इस कल्पना या चिन्ता को करते हैं। वह चिन्ता या कल्पना प्रबल होने से चित्त बाहर की वस्तु में ही प्रतिष्ठित हो जाता है। इसी का नाम ''कल्पित विदेहा'' है। क्रमशः जब देह के प्रति अहं वृत्ति का अभाव होता है, तब चित्त स्वतः ध्येय वस्तु में ही प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार के चित्त का नाम 'अकल्पिता महाविदेह' है। इस अकल्पिता महाविदेह नाम के मनोभाव या धारणा पर संयम के प्रयोग करने से सर्व प्रकाशक चित्त का आवरण या आच्छादन जिस के रहने से चित्त अल्पज्ञ होके रहा, यानी सब कुछ प्रकाशित नहीं कर सका, वह आवरण दूर हो जाता है। योगी तब सब या बहुत कुछ जान सकते हैं।

32. भूतजयः– पतंजलि ने कहा है कि क्षिति, अप्, तेज, मरुत और व्योम– इन पाँच भूतों की स्थूल, सूक्ष्म, स्वरूप, अन्वय और अर्थवत्त्व– ये पञ्चविध रूप या अवस्था विशेष हैं। इनके प्रति संयम के प्रयोग से भूतजय होता है अर्थात् पञ्च महाभूत वशीभूत होते हैं।

प्रथम स्थूलावस्थाः– पञ्च भूतों की वर्त्तमान या परिदृश्यमान अवस्था का नाम स्थूलावस्था है। आकाश का शब्द, वायु के शब्द और स्पर्श, अग्नि के शब्द, स्पर्श और रूप, जल के शब्द, स्पर्श, रूप और रस और क्षिति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध –ये सब आकार और गुणयुक्त अवस्थाएँ पञ्चभूतों के स्थूल रूप हैं।

द्वितीय स्वरूपावस्थाः– क्षिति कठिन और कर्कश है, जल स्निग्धतरल और शीतल है, तेज दहनशील है, वायु प्रवाहमान और शोषणकारी है और आकाश स्थान–दायक है। ये सब पञ्चभूतों की स्वरूपावस्थायें हैं।

तृतीय सूक्ष्मावस्थाः– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध– ये तन्मात्रायें या परमाणु ही पञ्चभूतों की सूक्ष्मावस्थायें हैं।

चतुर्थ अन्वयित्वावस्थाः– पञ्चभूत ही सत्त्व, रजः और तमोगुणों से परिव्याप्त हैं अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति, स्थिति इन तीनों धर्मों से युक्त हैं। यह पञ्चभूतों की अन्वय अवस्था है।

पञ्चम अर्थवत्त्वावस्थाः– भोग या अपवर्ग प्रदान के सामर्थ्य से युक्त पञ्चभूत ही हैं। यह इनकी अर्थवत्त्वावस्था है।

भूतों की इन पाँच अवस्थायों के क्रमानुसार स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वयित्व और अर्थवत्त्वों के प्रति संयम के प्रयोग करने से पञ्च भूतों पर जयलाभ होता है। पञ्चभूत योगी के अपने इच्छानुगामी अर्थात् आज्ञाकारी बन जाते हैं और वशीभूत होते हैं और पञ्चतत्वों के सत्व, रजः और तमोगुण क्रमानुसार सुख, दुःख, मोह के कारण नहीं बनते हैं।

अष्ट ऐश्वर्य, काय–सम्पत्, काय–धर्म की अनभिघात–सिद्धियाँ– पतंजलि ने कहा है कि भूत् जय होने से अणिमादि अष्ट महासिद्धि, कायसम्पत् और कायिक धर्मो का अनभिघात अर्थात् अविनाश होता है।

33. अष्ट ऐश्वर्यः– 1. अणिमा, 2. लघिमा, 3. महिमा (गरिमा), 4. प्राप्ति, 5. प्राकाम्य, 6. वशित्व, 7. ईशित्व और 8. यत्रकामावसायित्व। ईश्वर में स्वतः सिद्ध अष्ट महाशक्तियाँ हैं। ये गुण या महाशक्तियाँ साधनाबल से योगी में भी प्रविष्ट होती हैं। इसलिये इन शक्तियों का नाम ऐश्वर्य है। भूत–जयी होने से उन ऐश्वर्यों की उत्पत्ति होती है। इनका दूसरा नाम है अष्ट महासिद्धियाँ। भूत–जय से ये सब महागुण योगियों के अन्दर आ जाते हैं।

पहले प्रकृति के पञ्चविध रूप या अवस्थाओं के सम्बन्ध में ये सिद्धियाँ वर्णन की गई हैं। यदि प्रकृति के स्थूल रूप में संयम का प्रयोग किया जाय तो प्रथम चार सिद्धियाँ–अर्थात् अणिमासिद्धि, लघिमासिद्धि, महिमा (गरिमा) सिद्धि और प्राप्ति सिद्धि आयत्व में लायी जा सकती है।

यदि प्रकृति की स्वरूप अवस्था में संयम का प्रयोग किया जाये तो प्राकाम्य नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है।

यदि प्रकृति की सूक्ष्मावस्था में संयम का प्रयोग किया जाये तो वशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है।

यदि प्रकृति की अन्वयावस्था में संयम का प्रयोग किया जाये तो ईशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है।

यदि प्रकृति की अर्थवत्वावस्था में संयम का प्रयोग किया जाये तो यत्रकामावसायित्व नाम की चरम सिद्धि आयत्व में आ जाती है।

34. अष्ट महासिद्धियों के परिचयः– 1. अणिमा– शरीर में आयतन में बृहद् होने पर संयम के प्रयोग से परमाणु तुल्य बन जायेगा।

2. लघिमा– शरीर अत्यन्त भारी होने पर भी रूई तुल्य लघु हो जाता है।

3. महिमा या गरिमा– शरीर लघु होने पर भी पर्वताकार स्थूल हो जाता है।

4. प्राप्ति– दूरस्थ वस्तु का निकट प्राप्त होना।

5. प्राकाम्य– इच्छा का अनभिघात होना अर्थात् संकल्प इच्छा–कठिन से कठिन होने पर भी कार्यरुप में कर देना।

6. वशित्व– भूत और भौतिक वस्तुओं को भी अपने वश में लाना।

7. ईशित्व– भूत और भौतिक वस्तु या प्राणियों पर प्रभुत्व करने की शक्ति।

8. यत्रकामावसायित्व– सत्य संकल्प–लाभ, भूत और भौतिक वस्तुओं में या किसी प्राणी में इच्छानुसार शक्ति–संचार कर देना। यह चरमशक्ति, ऐश्वर्य या विभूति है। इससे दुःसाध्य साधन होता है।

नवम महाशक्तिः– पञ्चमहाभूत का जय करने से कायसम्पद् नाम की नवम महासिद्धि की प्राप्ति होती है। रूप, लावण्य, बल दृढ़ता और वेग शक्ति आदि गुणों का शरीर में आ जाना, इसी का नाम कायसम्पद् है।

दशम महासिद्धि– भूत–जय होने से कायसम्पद् का अनभिघात नाम की महासिद्धि की प्राप्ति होती है। इससे शरीर की पूर्ति, रूप और शक्ति का परिवर्तन नहीं होता है। शरीर अविनश्वर मालूम होता है। इसी का नाम काया अनभिघात धर्म नाम की महासिद्धि है।

35. इन्द्रियों को वशीभूत करनाः– पतंजलि ने कहा है कि पञ्च महाभूतों की तरह इन्द्रियों की भी पाँच अवस्थायें हैं–ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व।

1. चक्षु, कर्ण, नासा, जिह्वा और त्वक् जब अपने–अपने विषय वस्तु को ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त हो जाते हैं, तब यह इन्द्रियगण की ''ग्रहण'' नाम की प्रथम

अवस्था है।

2. इन्द्रियगण जब विषयों को प्रकाशित कर देते हैं तब इसका नाम द्वितीय ''स्वरूप अवस्था'' है।

3. जब इन्द्रियगण के साथ सात्विक अहंकार अन्तर्निहित रहता है, तब इसका नाम तृतीय ''अस्मिता अवस्था'' है।

4. इन्द्रियों का मूलकारण गुणत्रय सत्व, रजः, तम है । जब गुणत्रय के साथ यह इन्द्रियगण युक्त रहता है, तब इसका नाम चतुर्थ ''अन्वय अवस्था'' है।

5. इन्द्रियों के कार्यों में इन्द्रियों का कोई स्वार्थ नहीं है। इन्द्रियगण परार्थ हैं। इन्द्रियगण पुरुष के भोग या अपवर्ग के लिये हैं। यह भोग या अपवर्ग ही इनकी पञ्चम अवस्था ''अर्थवत्व'' है।

पुण्यार्थी योगी इन्द्रियों की इन पञ्च विध रूप या अवस्थाओं पर संयम प्रयोग करके इन्द्रियों को वशीभूत या जय कर सकते हैं। इन्द्रियों के ऊपर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य होने के कारण इच्छामात्र से ही वे उत्कृष्टया अपेन्द्रियों की सृष्टि कर सकते हैं। ये लोग इस शक्ति से अन्धे को चक्षु दान, बधिर को कर्णदान, खंज को पददान, गूँगे को वाक्शक्ति दान कर सकते हैं।

36. मनोजय से त्रिशक्ति–लाभः– **पतंजलि ने कहा है कि इन्द्रिय जय होने से योगी इन त्रिशक्तियों को लाभ करते हैं– मनोजवित्व, विकरणभाव और प्रधानजय (प्रकृति–जय)**

1. मनोजवित्वः– मन की तरह द्रुतगति।

2. विकरण भावः– देह की अपेक्षा न रखकर इन्द्रियगण को बाहर विषयों के साथ संयुक्त कर देना।

3. प्रधानजयः– समग्र प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त होना।

प्रथमा शक्ति 'मनोजवित्व':– लाभ होने से योगी मन की नाईं बाधाहीन होकर सर्वत्र जा सकता है। इन्द्रिय–जय होने पर शरीर में भी बाधाहीन अव्याहत गति शक्ति आ जाती है। साधारण व्यक्ति जहाँ नहीं जा सकते, योगी वहाँ जा सकते हैं। मन की जैसी द्रुतगति शक्ति है, योगी के अन्दर ऐसी द्रुतगति शक्ति

आ जाती है।

द्वितीया–शक्ति 'विकरण-भाव':– लाभ होने से योगी को विगत देह होने पर भी देह–शून्य होने पर भी देहाभिमान न रहने पर भी चक्षुरादि इन्द्रियों का करणत्व अर्थात् ज्ञानोत्पादन–सामर्थ्य प्रबल रहता है। विकरण–सिद्धयोगी लोग दूरस्थ वस्तुओं को जानने के लिये शरीर के साथ वहाँ नहीं जाते हैं। एक ही स्थान में रहते हुये वे दशों दिशाओं की दूर स्थित और अतीत, वर्त्तमान् और अनागत वस्तुओं को जान सकते हैं।

तृतीया–शक्ति"प्रधान जय":– लाभ होने से इन्द्रियों की 'अन्वय' नामक चतुर्थ रूप या अवस्था पर संयम धारण करके योगी भी इन्द्रियों के मूल कारण प्रकृति को वशीभूत या आज्ञाकारिणी कर सकते हैं। अर्थात् उस पर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य हो जाता है। इन्द्रियों के पाँच रूपों को या अवस्थाओं को जय करने से इन तीन शक्तियों–मनोजवित्व, विकरणभाव और प्रधानजय की प्राप्ति होती है। इस त्रिविध शक्ति का नाम 'मधुप्रतीका' है। मधु के सर्व अंगों में जैसे अमृतरस रहता है, इस सिद्धि के भी सर्वांगों में अमृतरस रहता है।

37. सर्व–आधिपत्य सर्वज्ञातृत्वः– पतंजलि ने कहा है कि सत्त्व अर्थात् महतत्त्व नामक बुद्धि और पुरुष अर्थात् शुद्ध चिदात्मा– इन उभयों के पार्थक्य अर्थात् भेद ज्ञान के प्रति संयम प्रयोग करने से सर्व भावों पर अर्थात् वस्तुओं पर योगी आधिपत्य और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञान– इन दो क्षमताओं का लाभ करते हैं।

पुरुष (जीवात्मा) बुद्धि नहीं है और बुद्धि भी पुरुष नहीं है ये दो भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं। साधारणतः लोग इन दोनों को एक ही जानते हैं। चित्त में जब तक रजस्तमोमल रहेगा, तब तक यह भेद दर्शन नहीं होगा।

चित्त के मल साफ हो जाने से और चित्त में विषय–कामनाओं के नहीं उठने से समझ लेना चाहिये कि चित्तशुद्ध हो गया। तब विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है। इस विवेक ज्ञान के द्वारा हम बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद समझ सकते हैं। इस भिन्नता के ज्ञान पर संयम के प्रयोग करने से सर्व वस्तुओं पर आधिपत्य

लाभ और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञानलाभ सिद्ध होता है।

सब विषयों का अतीत, वर्त्तमान् और भविष्यत् ज्ञान एक साथ एक क्षण के अन्दर उत्पन्न होने से यहाँ उस ज्ञान का नाम 'सर्वज्ञातृत्व' है। उसमें एक (अतीत) के बाद दूसरे (वर्त्तमान्) और उसके बाद तीसरे (भविष्यत्) के ज्ञान का उदय नहीं होता। सर्व ज्ञातृत्व में भूत, वर्त्तमान्, भविष्यत् का ज्ञान एक ही साथ उदित होता है।

जैसे अचंचल और निस्तरंग स्थिर जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देखा जाता है, इसी प्रकार स्थिर चित्त में बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद–ज्ञान सुस्पष्ट होता है। चित्त में कामना रहने से चित्त चंचल होता है कामना–शून्य चित्त स्थिर है। रजः और तमोमल से कामना की उत्पत्ति होती है। इसलिये चित्तस्थ रजस्तमोमल साफ होने से चित्त निर्मल और स्थिर होता है। स्थिर चित्त में ही विवेक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के निर्मल चित्त में बुद्धि और पुरुष का भेद ज्ञान उत्पन्न होता है और उस भेद–ज्ञान पर संयम धारण करने से "ज्ञान रूपा सिद्धि सर्वज्ञातृत्व" और "क्रिया रूपा सिद्धि सब वस्तुओं पर आधि पत्य–सिद्धि" मिल जाती है।

इसी सिद्धि का नाम योगशास्त्र में "विशोका–सिद्धि" है। इस सिद्धि की प्राप्ति से किसी वस्तु का शोक नहीं रहता है। इस सिद्धि में किसी वस्तु के खो जाने का मिथ्या ज्ञान नहीं रहता है और इसलिये ही इसका नाम विशोका सिद्धि है।

38. कैवल्य–लाभ या मुक्ति–लाभः– विशोका सिद्धि का लाभ होने पर यदि उसके प्रति योगी का वैराग्य उत्पन्न होता है, तो उसी योगी के बुद्धिमालिन्य की मूल कारण अविद्या नष्ट हो जाती है। तब ही कैवल्य अर्थात् स्वरूप–प्रतिष्ठारूप स्थिति प्रवाह का लाभ होता है। उस समय उस प्रकार के योगी पर प्रकृति का अधिकार नहीं रहता है।

विवेक–ज्ञान या विवेक–ख्याति अति उच्च स्थिति है उस उच्च स्थिति के साथ भी कैवल्य की तुलना करने से विवेक ख्याति तुच्छ समझी जायगी।

विवेक–ख्याति बुद्धि–सत्व का धर्म है बुद्धि–सत्त्व विकारशील है और इसलिये तुच्छ और हेय है। बुद्धि–सत्त्व विकारशील है, लेकिन पुरुष अधिकारी है। पुरुष उस बुद्धि–सत्त्व से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की प्रज्ञा के उदय होने से पुरुष का अनादि अनन्त काल से संचित संस्कार बीज दग्ध हो जाता है। बीज दग्ध हो जाने से वह प्रसव–क्षमताहीन होता है। उससे नये संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। योगी चिरकाल के लिये संस्कार ताप से मुक्त हो जाते हैं। तब बुद्धि लय–प्राप्त होता है और पुरुष से प्रकृति के गुणों का अत्यन्त विच्छेद हो जाता है। इसी का नाम कैवल्य है।

विशोका–सिद्धि के सर्वज्ञातृत्व और सर्वभावाधिष्ठातृत्व–लाभ अति उच्च स्थितियाँ हैं। उस से भी वैराग्य होने से अर्थात् उस विवेक–ख्याति के प्रति भी आसक्ति–हीन होने से दोष–बीज, अविद्या आदि का बन्धन और धर्माधर्म रूप कर्म–बन्धन नष्ट हो जाते हैं। तब ही पुरुष को स्वरूप में स्थिति का लाभ होता है। यह ही सर्वोच्च गति और स्थिति है। इससे ऊपर और कुछ है। इसी का नाम मुक्ति या मोक्ष है। इसी का नाम अमृतत्त्व–लाभ है।

39. चार प्रकार के योग और योगी:– स्थिति से योग और योगी चार प्रकार के हैं। योग के प्रारंभ से पूर्णता–प्राप्ति तक आलोचना करने से योग के और योगी के चार विभाग देखे जाते हैं।

इसके अनुसार भिन्न-भिन्न नामों का प्रचलन है:– प्राथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्तभावनीय। इन सबों के आभास पहले भी दिये गये हैं।

1. प्राथमकल्पिक:– योगशिक्षा के विषय में जो लोग बिल्कुल नये हैं और जो लोग योग में अविचलित और दृढ़ नहीं हुए हैं, जिनके संयम में या समाधि में किसी प्रकार की सिद्धि भी नजर नहीं आती है। केवल मात्र अति अल्प मात्र ज्ञान का विकास अनुभव में आया हो, इस प्रकार के योगी का शास्त्रीय नाम ''प्राथमकल्पिक'' है।

2. मधुभूमिक:– जो लोग प्राथम–कल्पिक अवस्था का अतिक्रम करके

मधुमती नाम की द्वितीय स्थिति को प्राप्त हुए हैं। ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा लाभ करके भूत और इन्द्रियों को वशीभूत किये हैं और सर्वभावों के अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व लाभ के लिये यत्नशील हैं, इस प्रकार के योगी का नाम ''मधुभूमिक'' है।

3. प्रज्ञाज्योतिः– जो लोग मधुभूमिक अवस्था का अतिक्रमण करके विभूति या ऐश्वर्य लाभ के लिये प्रलुब्ध नहीं हैं और स्वार्थ संयम में यत्नवान् है, इस प्रकार के योगी का नाम '' प्रज्ञाज्योति'' है।

4. अतिक्रान्तभावनीयः– जो लोग इस प्रज्ञाज्योति स्थिति को अतिक्रमण करके अत्यधिक विवेक ज्ञान के अधिकारी हुए हैं, जो लोग विवेक ज्ञान के स्थूल फल के लिये लोभी नहीं हैं और समाधि काल में जिनको किसी प्रकार की विघ्न बाधा बिलकुल नहीं पड़ती है और जो जीवन्मुक्त हैं, इस प्रकार के योगी का नाम''अतिक्रान्तभावनीय'' है ।

दिव्य भोगों में प्रलुब्ध होने से और योगप्रभावों के प्रति विस्मित होने से कैवल्य या मोक्ष–लाभ में विघ्न होता है। विभूतियों में प्रलुब्ध होने से योग भंग होता है और पतन होता है। विस्मय आ जाने से योगी को कृतकृत्यता का बोध आता है। विषय भोगेच्छा और विषय भोग, विस्मय या आश्चर्य– ये सब योग के लिए विधातक हैं। सच्चे योगी विभूतियों से डरते हैं।

योगबल से बुद्धि निर्मल होने से, बुद्धि के रजोगुण और तमोगुण निर्जित होने से या बुद्धि–मालिन्य रहित होने से बुद्धि में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है। तब बुद्धि स्थिर, धीर और निश्चल हो जाती है। बुद्धि की इस स्थिति का नाम ''सत्व शुद्धि'' है। सत्व शुद्धि हो जाने से नित्य आत्मा का कल्पित भोग तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार की भोग निवृत्ति का नाम ''आत्म-शुद्धि'' है। यहाँ तक पहुँचने से कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष का लाभ होता है।

इस श्रेयोलाभ के लिए ही मैंने काशी से आकर चाणोद, व्यासाश्रम और अहमदाबाद (दुग्धेश्वर मन्दिर) में श्रीमत् स्वामी योगानन्द, ज्वालानन्दपुरी, शिवानन्द गिरि आदि योगाचार्य गुरुओं से योग–शिक्षा के विषय में क्रियात्मक रूप से परिचय लाभ किया था। मैंने योग–शिक्षा के बाद इन लोगों से योगसाध

ना के लिए उपदेश की प्रार्थना की थी। इन्होंने मुझे योग साधना के लिए आबू पर्वत में जाने के लिए परामर्श दिया और वहाँ इसके बारे में सब प्रबन्ध भी करवा दिया।

40. योग–शिक्षाओं का विषयः– जो–जो प्रधान शिक्षायें योग के विषय में विभिन्न स्थानों में विभिन्न समयों पर गुरुओं से मिली थीं और तीन वर्षों के श्रम के बाद जिन पर आज साधना का प्रयोजन है, वे शिक्षा–विषय निम्न प्रकार के हैंः–

41. साधना के विषयः– क्रिया योग, अविद्यादि पञ्चक्लेश, अस्मितादि के भेद, अविद्यादि क्लेशों का विवरण, स्थूल और सूक्ष्म रूप से क्लेशों का नाश, दृष्ट और अदृष्ट–जन्म–वेदनीय क्लेश, जाति, आयु और भोगों की उत्पत्ति, अवश्यम्भावी परिणाम (परिताप) योगी की दृष्टि से सबके सब, भविष्यत् दुःख ही परित्याज्य है, देह दुःख का कारण, दृश्य का स्वरूप, गुणों का विभाग और विशेषता पुरुष का स्वरूप, दृश्य के द्वारा पुरुषार्थ सिद्धि, दृश्य का सम्पूर्ण उच्छेद नहीं होता है। प्रकृति और पुरुष के संयोग का फल संयोग का हेतु अविद्या है और उसके विनाश से ही कैवल्य लाभ, विवेक ज्ञान से दुःख का विनाश, विवेक ज्ञान की भूमि, ज्ञान–दीप्ति का उपाय, यम नियमादि अष्टांग योग, यमों के भेद, नियमों के भेद, अहिंसादि यमों के भेद, शौचादि नियमों के भेद, हिंसादि वितर्कविनाश के उपाय और विवरण, अहिंसादि सिद्धि का फल, आसन–प्रकरण, प्राणायाम-प्रकरण और प्रत्याहार-प्रकरण।

42. उत्साह और अग्रगतिः– गुरुओं की कृपा से मेरा धारणा, ध्यान और समाधि की शिक्षा का पाठ समाप्त हुआ। इसके बाद ही साधना का प्रश्न आया। धारणा, ध्यान, समाधि की शिक्षा में मुझे आशातीत रूप से फल मिला था। गुरुओं ने मुझे उत्साह दिया और मेरे अग्रगति के पथ को खोल दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षा और साधना एक वस्तु नहीं हैं। अनुकूल स्थिति में साध ना होनी चाहिये। आश्रमों में एकाधिक व्यक्ति संग में रहते हैं। यहाँ तो देखादेखी

एकाधिक शिक्षार्थी मिल जुल करके शिक्षा के पाठ समाप्त कर सकते हैं, लेकिन साधना के पाठ के लिये निर्जन एकान्त और निःसंग वातावरण चाहिये। भीड़–भाड़ से सर्वथा अलग होके रहना चाहिये। इसलिये साधनेच्छु योगी पर्वतों के कन्दरों में, भू–विवरों में या निर्जन वनों के वृक्षों की छायाओं में आश्रय लेते हैं। गुरु लोगों ने कहा–कि तुम योग–शिक्षा में बहुत ही तेज निकले। साधना में भी तुम आशातीत सिद्धि लाभ करोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह तो हमारा आशीर्वाद है। तुम्हारे लिये साधना का अनुकूल स्थान आबू पर्वत है। आबू अरावली पर्वत का शृंग है। वहाँ साधना का अनुकूल स्थान है। वहाँ वसिष्ठाश्रम, गौतमाश्रम और भृगु आश्रम हैं। स्थानस्थान पर कुंड हैं, उनके अतिरिक्त गोपीचन्द की गुफा, भर्तृहरि गुफा, रामगुफा आदि बहुत गुफायें हैं। वहाँ साधना के लिये गुफायें मिल जाती हैं। जनता की भीड़–भाड़ से दूरवर्ती गुफा ही साधना के लिये सर्वथा अनुकूल रहती है। भक्त तीर्थयात्री लोग गुफाओं के सभी साधकों के लिये खाद्य और आहार्य वस्तु पहुँचा देते हैं। वहाँ जाकर योग की साधना और तपस्या आरम्भ कर दो। बीच–बीच में हम लोग वहाँ तुम्हारी साधना देखने के लिये जायेंगे।

43. आबू पर्वत में:– स्वामी ज्वालानन्द पुरी के साथ मैं सबसे विदाई लेकर अहमदाबाद होता हुआ आबू पर्वत के लिये रवाना हो गया। मानपुर से आगे हृषिकेष का मन्दिर मिला। दो कुण्ड और चन्द्रवती नगर के ध्वंसावशेष देखने को मिले थे। अम्बरीष के आश्रम से स्वामी तर्पणानन्द हमारे साथ सम्मिलित हो गये थे। तीनों ने एक साथ पर्वतारोहण प्रारम्भ कर दिया। आबू पर्वत में कर्णिका तीर्थ, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारकतीर्थ, नागतीर्थ और कपिलातीर्थों का दर्शन किया। गुरुजी ने मेरी साधना के लिये कई एक गुफाओं को दिखाया। उनमें गोपीचन्द्र गुफा, भर्तृहरि गुफा, चम्पा गुफा, रामगुफा और अर्व्बदा गुफा उल्लेख योग्य हैं। हमारी योग–साधना के लिये गुरुजी ने योग–शिक्षा का प्रदत्त पाठ फिर स्मरण करवा दिया। जो शिक्षा योग के विषय में मिली है, उसके लिये कई वर्ष लग गये, लेकिन वह पाठ ही है, अगर इस पाठ को क्रियात्मक साध

नाओं के द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जाये। जो पाठ मिले हैं, उन पर साधनाओं के स्थान के लिये पर्वत श्रृंग आबू ठीक है और साधनाओं के लिये और तीन वर्ष ठीक हैं। मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

आबू शिखर लगभग चार योजन लम्बा और आधा योजन चौड़ा है। वहाँ सब आश्रम मन्दिर और गुफाओं में अपनी साधना के अनुकूल स्थान खोज करके मैंने रामकुण्ड सरोवर के समीप रामगुफा को उपयुक्त और अनुकूल साधना–क्षेत्र चुन लिया था और वहाँ ही अपनी योग–साधना आरम्भ कर दी थी। दिनचर्या गुरुजनों के निर्देशानुसार ही रखी गई थी। दिनचर्या में मेरी प्रवर्तक विधि और निवर्तक विधि निम्न प्रकार की थी।

44. निवर्त्तक और प्रवर्त्तक विधि:– एक प्रहर रात बीतने पर ही दो पहर काल में सो जाना, चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में ही नींद से उठना, प्रातःकालीन शौचादि कर्म से निवृत हो जाना और लवणाक्त (नमकीन) पानी भरपेट पीकर दिन के प्रथम प्रहर में साधना में बैठ जाना। उदीयमान सूर्य सम्मुख रखना अच्छा है। पूरे दो प्रहर काल तक क्रमानुसार धारणा, ध्यान, समाधि नामक संयम साधना में निमग्न हो जाना समाधि साधना है।

समाधि जब तक रहे, यदि दो प्रहर काल से अधिक भी रहे तो उस को रहने देना। समाधि से पहले या धारणा, ध्यान से पहले समाधि काल की अवधि के सम्बन्ध में सोचना बन्द रखना। समाधि की सीमा जितनी बढ़ जाये, उतनी ही अच्छी है।

45. समाधि टूटने के बाद:–

1. दृश्य:– प्राकृतिक दृश्य देखने के लिये निकल जाना, मनुष्य निर्मित शिल्प–सम्भार जितने कम देखोगे उतना ही अच्छा है। (आकाश, ग्रह, नक्षत्र,) पहाड़–पर्वत, नद–नदी, वृक्ष–तरु, गुम्फ, लता, फल, फूल और पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि के सौन्दर्य देखना।

2. परिधान:– परिधान के लिये दो लंगोटियाँ, दो अन्तर्वास और दो बहिर्वास बहुत हैं। इससे कम हो तो और भी अच्छा है।

3. स्नानः– स्नान इच्छानुसार एक बार या एकाधिक बार हो। वर्त्तमान् या पूर्वजीवन के संस्कारों के अनुसार अशुभ या कुत्सित स्वप्न देखने से नींद टूटने के साथ–साथ ही स्नान करना।

4. उपवासः– दिनभर उपवास करना और रात को नमकीन पानी पी लेना, दूध तक नहीं पीना और फल–फूल खाना नहीं।

5. सम्बलः– दो तृणासन, दो कम्बल, एक लोटा, एक दण्ड यह सम्बल रहें।

6. खानाः– खाने के लिये सोचना नहीं, तीर्थ यात्रियों से या भक्त लोगों से भेंट आ जाने पर अपनी एक दिन की आवश्यकतानुसार उनमें से खाने की वस्तु रख लेना और शेष वापस दे देना। यदि वे वापिस न हों तो वह वस्तु पशु, पक्षी, कीट, पतंग या दूसरे प्रार्थी मनुष्यों को दे देना। दूसरे दिन के लिये कुछ भी संचय न करना। किसी दिन आहार्य वस्तुओं की भेंट नहीं आने से किसी से भी नहीं माँगना। नमकीन पानी पी लेना या फल खा लेना। फल नहीं मिलने से फल की पत्तियों को ही पीस कर खा लेना।

7. वाचसंयमः– किसी तीर्थ यात्री से प्रयोजन के अतिरिक्त बातचीत नहीं करना।

8. दृष्टिः– पुरुष हो या स्त्री हो, किसी के प्रति एक निमेष के लिये भी तीव्र या तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं ताकना, व्याकुल न हो जाना।

9. चरण वन्दनाः– किसी को भी पाद–स्पर्श करने नहीं देना।

10. आशीर्वादः– किसी का भी मस्तक स्पर्श करके आशीर्वाद नहीं देना।

11. एकान्तः– किसी को साधना के स्थान में आश्रय नहीं देना।

12. असंगः– दूसरे की किसी व्यवहृत वस्तु को भेंट के रूप में नहीं लेना।

13. निमन्त्रणः– किसी के स्थान में जाने के लिये अनुरोध या निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना।

14. मौनः– जहाँ तक हो सके आकार–इंगित से ही बातचीत करनी और वृथावाक्य प्रयोग नहीं करना, पत्र या साधना से सम्बन्धरहित पुस्तकादि नहीं

रखना या नहीं पढ़ना।

15. पत्र व्यवहारः— किसी को पत्र लिखने का सुयोग या पता नहीं देना और लिखित कागज या हस्ताक्षर नहीं देना या नहीं लेना। किसी से पत्र या रुपये डाक से आने से स्वीकार नहीं करना।

16. रोग मेंः— बीमार पड़ने पर केवल उपवास करना, किसी से भी सेवा, यत्न या शुश्रूषा नहीं लेनी। सम्पूर्ण रूप से उपास्य परम प्रभु के शरण में रहना।

यहाँ मेरे दो उपदेष्टा मिल गयेः— स्वामी कैवल्यानन्द और स्वामी धर्मानन्द।

46. गुरुओं का निरीक्षणः— हमारे गुरु लोगों में से कोई न कोई मेरी स्थिति को देखने के लिए और अपने–अपने साधन सम्बन्धी कार्यों के लिए आ जाते थे। दूसरे वर्ष में गुरु लोगों ने आकर हर्ष प्रकट करके कहा

'दयानन्द! अब तुम परीक्षा–सागर के सम्मुखीन हुए हो। तुम्हारे अन्दर धीरे–धीरे विभूतियों का प्रकाश आ रहा है। अतीन्द्रिय शक्तियों का आविर्भाव ही विभूतियों का प्रकाश है। धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास पूर्ववत् ही चालू रखना। अगली बार जब हम तुमसे मिलेंगे तब तुम्हारी उपलब्ध विभूतियों का हिसाब लेंगे। याद रखो, विभूति के आने के साथ–साथ ही बहुत साधकों का पतन हो जाया करता है। विभूतियों के मोह में किसी प्रकार से अपने को धन्य समझ कर वे लोग साधारण व्यक्तियों को इन्द्रजाल या भोज विद्या दिखा कर अर्थोपार्जन में या इन्द्रियों के भोगों में आबद्ध हो जाते हैं। योगी साधना के जिस स्तर में पहुँच कर विभूतियों को प्राप्त होते हैं। उस स्तर से कोई कोई गिर जाते हैं। उनकी साधना व्यर्थ बन जाती है। तुम अति सावधान रहना कुछ विभूति या अलौकिक शक्ति की उपलब्धि हो जाने पर उसको परीक्षा के रूप में समझ लेना। याद रखो गुरुओं को छोड़ कर दूसरे किसी से भी इसके बारे में कुछ नहीं प्रकाश करना।

'दयानन्द! तुमने माता–पिता, घर–बार छोड़ दिया था, केवल योग विद्या सीखने के लिये ही न? योग विद्या अनन्त अपार है। हमसे भी बहुत बड़े–बड़े योगी बहुत संख्या में भारत वर्ष के वन–जंगल, पहाड़–पर्वत, आश्रम–तपोवन,

पर्वत–कन्दर और भूविवरों में हैं। ये लोग चक्षुओं के अन्तराल में रह कर योग साधना और कठोर तपस्या कर रहे हैं। लेकिन वे सब कुछ साधन मात्र ही हैं। विभूतियाँ तुम्हारी दासी बन कर तुम्हारे अधीन हो के रहेंगी। ये शक्तियाँ परार्थ के लिये या जीव सेवा में प्रयुक्त करो। अविद्या से मुक्त होना ही तुम्हारी मुक्ति है और इस मुक्ति से ही मृत्युञ्जय बनो। इस मृत्युञ्जय के लिये ही तुमने घरबार छोड़ा था। कैवल्य–प्राप्ति के लिये आगे हिमालय की तरफ गुरुजनों को ढूँढना।

गुरुओं का आदेश और उपदेश हमने शिरोधार्य किया और एक वर्ष फिर से मैंने धारणा, ध्यान, समाधि में अर्थात् संयम में ही व्यतीत किया। तब निश्चय किया कि एक वर्ष और यहाँ रह कर मैं सारे भारतवर्ष और हिमालय में भी घूम–घूम कर योगियों का सन्धान करूँगा। अतः आगे ठीक एक वर्ष का काल मैंने अति सावधान रहकर गुरुओं की प्रतीक्षा में समाधि–साधना की थी।

एक वर्ष बाद हमारे दोनों गुरु आबू पर्वत–शिखर पर आये थे और आकर मेरे पास पहुँच गये थे। पूछे जाने पर मैंने अनुभव में और उपलब्धि में आयी हुई विभूतियों का हिसाब दिया था। महर्षि पतंजलि के राजयोग के अनुसार भिन्न–भिन्न विषयों पर संयम –धारण करने से यानी धारणा, ध्यान, समाधि के प्रयोग करने से विभिन्न अतीन्द्रिय शक्तियों का प्रकाश आ जाता है यह सब कुछ उनको सुनाया। मेरे अनुभव में जो–जो शक्तियाँ आयी थीं उनका भी मैंने वर्णन किया था जैसेः–

1. भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
2. सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
3. पूर्व जन्मों का स्मरण।
4. दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
5. अन्तर्धान होना।
6. अपने रूप, शब्द, स्पर्शादि को भी अन्तर्हित करना।
7. मृत्युकाल को जान जाना।
8. बलवान् पशुओं के अनुरूप बल प्राप्त होना।

9. सूक्ष्म, अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
10. लोक–लोकान्तर भुवनों को जानना।
11. नक्षत्रों को जानना।
12. नक्षत्रों की गतियों को जानना।
13. शरीर और मन को स्थिर करना।
14. सिद्ध पुरुषों को देखना और उनसे बातचीत करना।
15. वैराग्य लाभ का सहायक ज्ञान प्राप्त होना।
16. स्वचित्त और पर चित्त का ज्ञान।
17. आत्म–ज्ञान।
18. दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म ज्ञान लाभ करना।
19. चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना।
20. शरीर को अत्यन्त हलका करना।
21. इच्छा मृत्यु।
22. शरीर को ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना।
23. सूक्ष्म इन्द्रियशक्ति लाभ।
24. आकाश–गमन की शक्ति।
25. चित्त के आवरण का नाश।
26. महाभूतों को वशीभूत करना।
27. महाभूत वशीभूत होने से अष्टमहासिद्धि (अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्य संकल्पता)।
28. काय–सम्पत् (रूप, लावण्य, बल और दृढता)।
29. शरीर का अटूट भाव।
30 इन्द्रिय–संयम।
31. अव्याहत गति शक्ति लाभ।
32. पुरुष और प्रकृति का भेद–ज्ञान।
33. बन्धन से मुक्ति।

34. अलौकिक द्रव्य–विवेक–ज्ञान।
35. सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु–ज्ञान।
36. सब वस्तुओं के भेद ज्ञान।
37. विवेक ज्ञान (पुरुष–प्रकृति का भेद ज्ञान और कैवल्य लाभ)।

गुरुओं से जब मैंने कहा था कि इन सब विभूतियों में से अधिकांश विभूतियाँ मेरे अनुभव के अन्दर आ गई हैं। किसी गुरु ने क्षुधा–पिपासा के बारे में मुझसे पूछा था। मैंने कहा था कि आबू शिखर में क्षुधा–पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं रही थी। मैं अब अन्न जल के बिना दो महिनों तक रह सकता हूँ। पतंजलि ने कहा है कि कण्ठकूप के नीचे उरप्रदेश में कूर्म नामक नाड़ी है। वह नाड़ी अत्यन्त दृढ है। वहाँ चित्त संयम करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है। बहुत बार मैंने अनुभव किया था कि गले में गढ़े के रूप में जो कुआँ–सा स्थान है, उसमें संयम (धारणा–ध्यान–समाधि) करने से मेरी भूख और प्यास दोनों की निवृत्ति हुयी थी। इसी प्रकार और भी बहुत विभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं।

आबू शिखर में आये हुये गुरु और वहाँ के रहने वाले गुरु लोगों ने हर्ष प्रकट करके सब ही ने तरह–तरह के उपदेश दिये थे– 'तुम द्वितीय श्रेणी के योगी बन गये हो। दयानन्द! तुम इन योग की शक्तियों को अपने शारीरिक या मानसिक स्वार्थ–साधन में प्रयोग नहीं करना। परार्थ में और जगत् के हित के लिये ही इन विभूतियों का व्यवहार करो। कैवल्य लाभ के लिये जो विभूति है, केवल वही विभूति तुम्हारे लिये है। बाकी विभूतियाँ जगत् की सेवा के लिये हैं। इसके अपव्यवहार करने से इनका लोप हो जायेगा। अब आबू पर्वत के सीमाबद्ध स्थान को छोड़ कर बाहर जगत् में प्रवेश करो। धर्म ही सेवा का एकमात्र साध न है। इस धर्म–बल के साथ धर्म जगत् को देखो। हरिद्वार का कुम्भ मेला अति निकट है। वहाँ आर्यावर्त के मुख्य–मुख्य साधु, संन्यासी एकत्र हो जाते हैं। वहाँ के दृश्य देख लो। धर्म जगत् का हाल और सेवा धर्म अनुभव में आ जायेगा।

दूसरे दिन वे लोग वहाँ से चले गये। मैं आबू छोड़कर हरिद्वार के कुम्भ

मेले में जाने के लिये तैयार होने लगा। वहाँ के बहुत साधक और संन्यासी एक साथ वहाँ जाने के लिये तैयार हो गये थे। मैं भी उनके अन्दर सम्मिलित हो गया था।

हरिद्वार-कुम्भमेला की ओर प्रस्थान

1. आबू से पुष्कर व अजमेर:– योग–शिक्षा और योग–साधनो में मैंने छः वर्ष बिताया था, लेकिन आगे दूसरे और योग–सिद्ध महापुरुषों और तपस्वियों के सत्संग लाभ के लिये मेरे अन्दर प्रबल आग्रह हुआ। आबू पर्वत के साधुओं ने मुझे हरिद्वार में होने वाले कुम्भ मेले में सम्मिलित होने के लिये परामर्श दिया था। वह मेला बैशाख सम्वत् 1912 (तद्नुसार सन् 1855) को होने वाला था। मैं हरिद्वार जाने के लिये तैयार होने लगा। मुझे विदाई देने के दिन आबू–पर्वत के परिचित साधु–सज्जन-पुजारी लोग लगभग सभी हमसे मिले। उनमें विमलशाह जैन मन्दिर के दो साधु, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारकतीर्थ, भृगु आश्रम, रामकुण्ड, नागतीर्थ, अचलगढ़, यज्ञेश्वर आदि स्थानों के साधु–पुजारी तपस्वी लोग सम्मिलित थे।

मैंने सभी से कृतज्ञतापूर्ण भाव से विदाई लेकर मारवाड़, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली और मेरठ आदि होते हुये पैदल हरिद्वार की तरफ यात्रा शुरू की थी। रास्ता लगभग सत्तर योजन का था। मैं कम से कम पाँच योजन रास्ता अतिक्रम करता था। अति सबेरे उठकर यात्रा शुरू करता था। तालाब मिलने से स्नानादि और संध्या, उपासना, प्राणायामादि कर लेता था। हाट–बाजारों में गाँव में या रास्ते में किसी न किसी व्यक्ति से खाने की चीजें अचानक आ जाती थीं। मैं खाने के लायक चीजें ले लेता था और बाकी चीजें गरीब दु:खियों को दे देता था। संन्यासी का वेष देखकर गाँवों के और हाट–बाजारों के रहने वाले लोग कठिन रोगों की दवाई के लिये या सुख–दु:ख जानने के लिये मुझे घेर लेते थे। बाध्य होकर मैं आत्मरक्षा के लिये मौन धारण कर लेता था। दिन हो या रात हो, निर्जन स्थानों में ही मैं विश्राम करता था।

इसी रूप से मैं पुष्कर पहुँच गया था। वहाँ योग सिद्ध पुरुषों के बारे में

सन्धान लेने लगा। पुष्कर तीर्थ पञ्चतीर्थों में एक है और पञ्च सरोवरों में एक है। पञ्चतीर्थ ये हैं– पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा और प्रयाग। पञ्च सरोवर ये हैं– मानसरोवर, पुष्कर सरोवर, बिन्दु सरोवर, नारायण सरोवर और पम्पासरोवर। पुष्कर तीर्थ में पुष्कर सरोवर तीन हैं–ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये क्रमानुसार तीनों देवतायें कही जाती हैं। पुष्कर को छोड़कर और ब्रह्मा का मन्दिर मिलना कठिन है। ज्येष्ठ पुष्कर सरोवर से थोड़ी दूर पर प्रधान मन्दिर ब्रह्मा का ही है। वहाँ सरोवर से सरस्वती नदी निकली है और यह साबरमती नदी से मिल जाती है।

पुष्कर में मैं सिद्ध–योगियों के विषय में अनुसन्धान करने लगा था। किसी जटिया बाबा के परामर्शानुसार नागपर्वत की गुफाओं में ढूँढ़ते हुये मैंने भर्तृहरि गुफा में एक मौनी बाबा को देखा। बातचीत हो नहीं सकी। उन्होंने अति द्रुत वहाँ से मुझको हटने के लिये निषेधात्मक इशारा किया। मैं गुफा से बाहर आने के साथ–साथ ही देखा कि दो बृहदाकार अजगर सर्प मौनी बाबा की संकीर्ण गुफा के अन्दर धीरे–धीरे प्रवेश कर रहे हैं । गुफा से बाहर एक पहाड़ी भील ने कहा कि वह दोनों अजगर मौनी बाबा के साथ ही गुफा में रहा करते हैं। वहाँ किसी दूसरे पर्वत की चोटी पर सावित्री मन्दिर में एक साधु ने मुझे कहा– ''तुम्हारा मनोरथ पुष्कर में पूर्ण नहीं होगा। हरिद्वार के कुम्भ–मेले में शत–सहस्र साधु, योगी, तपस्वी हिमालय से नीचे उतर आयेंगे। उन्हीं में से किसी के संग में रहते हुये हिमालय–भ्रमण करना ही अच्छा है। हिमालय के कन्दरों में साठ हजार से भी ऊपर साधु–योगी-तपस्वी रहते हैं। तिब्बत तक में भी ये लोग रहते हैं। मानसरोवर और ल्हासा तक भी भ्रमण करना चाहिये। वहाँ हजारों साधु योगी तपस्वी लोगों के दर्शन मिलते हैं।'' साधु जी की इसी बात को शिराधार्य करके पुष्कर छोड़कर हरिद्वार की तरफ मैं आगे बढ़ने लगा। पुनः अजमेर आकर एक नंगा बाबा के साथ मैं तारागढ़ नाम के गिरि–दुर्ग पर पहुँचा। वहाँ से अजमेर नगर की शोभा बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। वहाँ किसी साधु तपस्वी से मुलाकात होने की आशा नहीं थी। आयना सागर के तटों में यज्ञ करते हुये 8–10 साध

ुओं को मैंने देखा था। ये लोग सबके सब गाँजा पीते थे और अग्नि में घृत की आहुतियाँ देते थे। वहाँ नंगे बाबा मुझे ''ढाई दिन के झोंपड़े'' में ले आये थे। मैंने उक्त स्थान को हिन्दू या बौद्ध भजनालय के रूप में देखा था लेकिन अब वहाँ मुसलमानों का भजन स्थान बन गया—ऐसा देखा। भारत के शेष सम्राट् पृथ्वीराज, जयचन्द्र, संयोगिता स्वयंवर और शाहबुद्दीन के बारे में नंगा बाबा ने बहुत कुछ कहानियाँ सुनाते—सुनाते मुझे जयपुर होकर दिल्ली जाने की सड़क दिखा दी।

2. अजमेर के अनुभवः— पुष्कर—अजमेर आने—जाने के समय मुझे कुछ नये अनुभव प्राप्त हुये थे। रास्ते में, मन्दिरों में, बाजारों में, दुकानों में, नहाने के घाटों में, अतिथि शालाओं में—सर्वत्र स्वदेश की और स्वधर्म की रक्षा के लिये आन्दोलन और आलोचना व्यापक रूप से चल रही थी। धनी—गरीब, ज्ञानी—मूर्ख, वृद्ध—नवजवान, पुरुष—स्त्री सभी के मुखों से यही सुनाई देता था कि विदेशी पादरियों द्वारा ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार और प्रलोभन से स्वधर्म की रक्षा करनी चाहिये। विदेशी राहु के ग्रास से स्वदेश की रक्षा करनी चाहिये। इन सब चर्चा और आंदोलन से मालूम होने लगा था कि विदेशी और विधर्मियों की सर्वग्रासी कूटनीतियों से बचाने के लिये जनसाधारण कोई रास्ता ढूँढ रहे थे। विदेशी और विधर्म के प्रति भय और घृणा के भाव का धीरे—धीरे विस्तार हो रहा था।

3. मारवाड़ के अनुभवः— अजमेर आने से पहले मारवाड़ से भी अनुभव मिला था कि जनता स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा और पुनरुद्धार के लिये किसी शक्तिशाली और धार्मिक राजा को ढूँढ़ रही थी। उपयुक्त—नेता और संचालक मिलने से युद्ध करने के लिये भी तैयार थी। ईसाई—राज और ईसाई—धर्म से बचने के लिये हिन्दू और मुसलमान एक साथ मिलकर युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेंगे और प्रयोजन आने पर प्राण भी दे देंगे।

4. जयपुर के अनुभवः— पुष्कर से जयपुर आकर वहाँ मैंने गलतातीर्थ, गालव ऋषि की तपोभूमि, सूर्य—मन्दिर और मुसलमान बादशाह के आक्रमण से बचाने के लिये वृन्दावन से लाई गई गोविन्द जी की मूर्ति के मन्दिर

में योगी, तपस्वी और साधकों का अनुसन्धान किया था। यहाँ का गोविन्दजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। श्री बल्लभाचार्य को यमुना किनारे यह मूर्ति मिली थी। वृन्दावन में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुसलमान बादशाह औरंगजेब के आक्रमण से बचाने के लिये यह मूर्ति और गोविन्ददेव की मूर्ति वृन्दावन से जयपुर लाई गई थी। प्राचीन राजधानी और राजस्थान की अम्बर नगरी में गलता टीला है। उसमें गालव ऋषि की तपोभूमि में एक साधु रहते थे। योग–साधना के बारे में मैंने उनसे उपदेश करने की प्रार्थना की थी। उन्होंने इनकार कर दिया क्योंकि मैं उनकी तन्त्र साधन–प्रणाली स्वीकार करने में असमर्थ था। अब मैं जयपुर से दिल्ली रवाना हो गया।

5. जयपुर से दिल्ली:– दिल्ली के दूसरे ही वातावरण में मैं पहुँच गया था। मालूम हुआ कि दिल्ली नगरी महासमाधि में निमग्न है। एक ब्रह्मचारी ने मुझे पृथ्वीराज का लालकोट दिखाया। वह अब धूल में रंजित है। योगमाया मन्दिर देखा। पृथ्वीराज इसी साधन भूमि में बैठे हुये योगसाधन की शक्ति सीखते थे। उसी के एकांश में आज बुतखाना है। मुसलमानों ने इसका नाम बुत–खाना या पौत्तलिक भजनालय रखा है। इसके समीप लगभग डेढ़ हजार वर्षों का पुराना धातु–स्तम्भ है। सुना जाता है कि राजा धब ने इसको बनवाया था। पृथ्वीराज के द्वारा निर्मित कुतुब स्तम्भ देखा। असम्पूर्ण स्तम्भ के निर्माण कार्य को कुतुबुद्दीन ने पूरा किया था। इसलिये इसका नाम कुतुबमीनार पड़ा। वहाँ से दिल्ली के पुराने किले को देखा। यह ही प्राचीन इन्द्रप्रस्थ है। यहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का प्राचीन गौरव चिह्न है। किसी साधु का दर्शन नहीं मिला था। लेकिन यमुना के किनारे भी कई एक साधुओं से भेंट हुई थी। ये लोग भी हरिद्वार के मेले में जाने वाले थे। मैं भी सम्मिलित हो गया था।

6. दिल्ली में नया अनुभव:– अजमेर, मारवाड़, जयपुर और अलवर, सभी स्थानों में जनसाधारणों के अन्दर प्रबल रूप से चांचल्य का अनुभव हुआ। दिल्ली में इस चांचल्य का अनुभव अत्यन्त अधिक हुआ था। रास्तें में, बाजारों में, दुकानों में, पथचारी यात्रियों में, साधु–संन्यासियों में, धनी–गरीबों

में या राज–कर्मचारियों में मुख्य रूप से केवल एक ही चर्चा होने लगी कि अब सहन करना कठिन है। अब तो जीवनों को बाजी में रखकर भी स्वदेश और स्वध र्म का उद्धार करना ही चाहिये। हम दस साधु यमुना के किनारे सारे दिन के बाद भोजन कर रहे थे। एक छोटे लड़के ने हम सब को दिखा के अपनी माता जी से कहा ''माता जी! हमारा देश और धर्म विदेशी ईसाई अंग्रेज और ईसाई पादरियों के अत्याचार और शैतानी के कारण डूब रहा है और हमारे देश के ऐसे लाखों साधु बाबा केवल पेट पूजा में ही व्यस्त हैं। देश और धर्म की रक्षा के बारे में ये लोग कुछ परवाह नहीं करते हैं। इनके लिये पेट ही भगवान् है और भगवान् ही पेट है। लड़के के इन वाक्यों को सुनकर साधु एक साथ मिल कर लड़के को अभिशाप देने लगे और गाली–गलौच करने लगे। लड़के की माता साधुओं के अभिशाप के कारण भयभीत होकर रोने लगी। मैंने लड़के की माता से विनम्र भाव से कहा– ''माताजी! लड़के की बातें सम्पूर्ण सच्ची हैं। आपका लड़का देवदूत–सा मालूम पड़ता है। कम से कम इस लड़के की बातों से मेरी आँखें तो बिल्कुल खुल गयीं हैं। लड़के का पैत्रिक परिचय लेने से मालूम हुआ कि उस समय से लगभग 38 वर्ष पहले इस लड़के के पितामह अलीगढ़ के जमींदार साहसी वीर योद्धा दयाराम हाथरस किले की रक्षा करने के लिये लार्ड हैस्टिंग्स के अविराम बम्ब वर्षण के सम्मुख युद्ध करके वीरगति को प्राप्त हुये थे। मैंने लड़के के सिर पर हाथ रख के आशीर्वाद दिया। लड़का भी खुशी के मारे रोने लगा था।

7. देश पर राहुग्रासः– मैं अपने साथी साधुओं के साथ लालकिले के सम्मुख बैठा हुआ हरिद्वार जाने के लिये सोच रहा था। अचानक एक साध ु आकर कहने लगे-'' आप लोग जाइये, हरिद्वार जाकर स्नान कर शुद्ध बन जाइये। हमारी पवित्र मातृभूमि को विदेशी राहु ने ग्रास कर लिया, धीरे–धीरे हमारे देश की सुख–शान्ति, शिक्षा–सभ्यता, धर्म–संस्कृति, सम्पद्–ऐश्वर्य को भी यह हजम करने लगा है। हमारे धर्म को ग्रास करके विधर्मी पादरी हमारे सहज सरल देशवासियों पर ईसामसीह के धर्म को लाद रहे हैं। हमारे स्वधर्मी

भाई–बहनों को विधर्मी बना के देश–द्रोही के रूप में बदल देते हैं। स्वदेश को विदेशियों के पंजे से मुक्त करना जितना कठिन है उससे हजारों गुणा कठिन है कि विधर्म के पंजे से स्वधर्मियों को मुक्त करना। जब तक स्वदेश और स्वधर्म पर राहु और केतु का ग्रास रहेगा, तब तक हम गंगा–स्नान से शुद्ध होने में विश्वास नहीं करते हैं।

इस साधु से मेरी एकान्त में बहुत समय बातचीत हुई थी। मेरे मुख से अनुकूल बातचीत सुनकर वह साधु बहुत ही खुश हुआ। और आगे जाके मालूम पड़ा कि आप एक मराठी पण्डित साधु के वेश में घूम रहे हैं और इस रूप के करीब एक सौ पण्डित साधुओं के वेश में घूम घूमकर साधुओं में नई प्रेरणा लाने की कोशिश कर रहे हैं। मैं पूर्व निश्चयानुसार अपने साथी साधुओं के साथ हरिद्वार की तरफ रवाना हो गया। निश्चय हुआ था कि हम लोग मेरठ होते हुये हरिद्वार जायेंगे। हम लोग जितने ही आगे बढ़े उतने ही हरिद्वार के यात्री हमारे साथ अधिक संख्या में जुट गये थे। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार के लिये सभी लोग व्यग्र और उत्सुक मालूम पड़े।

8. दिल्ली से मेरठः– हरिद्वार कुम्भ मेले के यात्री हम सब साधु लोग यथा समय दिल्ली से मेरठ पहुँच गये थे। तीर्थयात्रियों के अन्दर सैकड़ों गृहस्थ स्त्री–पुरुष भी थे। मेरठ से लगभग चार योजन दूरी पर पांडवों की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर है। गंगा नदी वहाँ से धीरे–धीरे हटती जा रही है। वहाँ से हम गढमुक्तेश्वर गये थे। वहाँ मन्दिरों की संख्या बहुत है। करीब सौ–शती स्तम्भों के ध्वंसावशेष वहाँ मौजूद हैं। मेरठ के पास ही परशुराम की जन्म भूमि और जमदग्नि का आश्रम है ऋषि वाल्मीकि का आश्रम भी वहाँ ही था। वहाँ के पुराने आश्रमों में योग–सिद्ध पुरुषों का संधान नहीं मिला।

9. करुण–दृश्यः– हम में से बहुतों को पता लगा कि इन तीर्थयात्रियों के अन्दर बहुत सरकारी कर्मचारी और बनावटी वेशवाले राजकर्मचारी गुप्त रूप से रहते हैं। सीधे–साधे यात्रियों को इस बात का पता नहीं था। सरल यात्रियों के अन्दर गुप्तचर राज कर्मचारी अंग्रेज वणिक्– शासन के बारे में प्रसंग शुरू कर

देते थे। तीर्थयात्रियों के पीछे–पीछे कभी–कभी घुड़–सवार श्वेतांग सैनिक भी तीर्थयात्रियों की रक्षा के बहाने से आते थे। तीर्थयात्रियों के अन्दर कभी–कभी अंग्रेज वणिक्शासकों के अनाचार, अत्याचार और स्वैराचारों के बारे में तरह–तरह की चर्चायें चलती थीं। जासूस गुप्तचर लोग ही इन चर्चाओं के प्रवर्तक हुआ करते थे। एक दिन देखा गया एक व्यक्ति को सरकारी कर्मचारियों ने पकड़ लिया। उसकी पत्नी एक छोटे शिशु बच्चे को गोदी में लिये हुये किसी गोरे सरकारी कर्मचारी के पैरों पर गिर पड़ी। लेकिन श्वेतांग कर्मचारी ने शिशु बच्चे को माता की गोदी से छीन कर ले लिया और गंगा के तीव्र स्रोत में फेंक दिया। पुत्र–शोक से करुण–चिल्लाहट के साथ माता गंगा में कूद पड़ी। पिता भी गंगा में कूदने के लिये तुरन्त तैयार हो गया। लेकिन दो सिपाहियों ने बन्दूकों के हत्थों से उसको मारते–मारते अचेत कर दिया। गोद का शिशु पुत्र और शिशु की माता गंगा में बहती हुई कहाँ चली गयी, भगवान् ही जानते हैं। सरकारी कर्मचारी के पीछे बन्दूक–धारी पलटन बहुत संख्या में थी। गृहस्थ तीर्थयात्री चारों तरफ भाग गये थे। अंग्रेजी शासन और प्रजा–शासन के बारे में मेरे जीवन में यह पहला प्रत्यक्ष अनुभव था। हम सब साधु लोग दलबद्ध न रहकर चार–चार, पाँच–पाँच करके एक साथ रहकर हरिद्वार की तरफ चलने लगे। हम सब साध ुओं के दिमाग में यह चिन्ता बहुत प्रबल और क्रियाशील हो रही थीः–

''दुःखिनी, पराधीन भारतमाता की सेवा में हमको आयुष्काल और शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ अंश समर्पित कर देना चाहिये।''

किन्तु गुप्तचर कर्मचारियों के सन्देह करने के डर के मारे कोई साधु किसी साधु से बातचीत करना निरापद नहीं समझता था। इस प्रकार की घटनाओं को और इन सबका प्रतिविधान सोचते हुये हम सब तीर्थयात्री विभिन्न दलों में विभक्त होकर हरिद्वार की तरफ यात्रा करने में व्यस्त थे। कभी–कभी हम सब पुराने जान–पहचान के साधु लोग किसी–किसी निरापद स्थान पर एकत्र हो जाते थे और देश की शोचनीय दुर्दशा पर विचार करते थे।

देश की इन स्थितियों को देखते हुये, गेरूवे कपड़े पहनकर, अपनी–अपनी

मुक्ति और पारमार्थिक कल्याण के लिये देश भर घूमना, बहुत ही लज्जाकर और ग्लानिकर मालूम होने लगा। लेकिन देशवासी जन–समुदाय को कैसे सचेत और दलबद्ध किया जाये यह विचार दिमाग में आने लगा।

10. भेलोर में देशी फौजों पर अत्याचार:– दक्षिण भारत के किसी वृद्ध साधु ने कहा कि गवर्नर जनरल कार्नवालिस के बाद अस्थाई रूप से दो-एक वर्ष के लिये उसी पद पर अस्थिर रूप से जार्जवार्ले आये थे। करीब पचास वर्ष पूर्व की बातें हैं। देशी सैन्य पर कैसे-कैसे अत्याचार होते थे और आज भी होते हैं, वे वर्णनातीत हैं। मद्रास के गवर्नर उस समय लार्ड वेंटिक थे। उन्हीं की अनुमति लेकर सेनापति जन्फ्रैडक ने फौजी पोशाक के बारे में अचानक आदेश जारी कर दिया था।

''सब फौजों को कम्पनी की दी हुयी नयी टोपी पहननी पड़ेगी। उस टोपी का ऊपर का भाग गाय के चमड़े से और नीचे का भाग सूअर के चमड़े से बना हुआ था। सभी को दाढ़ी और मूँछ सफा कर देने पड़ेंगे; कोई कपाल में तिलक, चन्दन, भस्मादि के छाप नहीं लगवा सकेगा, सिर पर कोई चोटी नहीं रख सकेगा, कोई हिन्दू या मुसलमान निर्दिष्ट विश्राम के समय से अतिरिक्त समय में सन्ध्या, उपासना या नमाज के लिये समय नहीं दे सकेगा, गले में कोई जनेऊ या माला नहीं पहन सकेगा और विश्राम के समय से अतिरिक्त किसी समय में भी भगवान् या खुदा ताला का नाम उच्चारण नहीं कर सकेगा।''

इस आदेश पर करीब सब ही हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों के अन्दर जाति और धर्म के ऊपर आघात होने के कारण विक्षोभ पैदा हो गया था।

11. भेलोर–विद्रोह:– सर्वप्रथम इस अन्याय और धर्म-विघातक आदेश के विरोध में भेलोर के सिपाहियों ने विद्रोह की घोषणा की थी। उन लोगों ने उस आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया था। इन सिपाहियों को सामरिक कानून के अनुसार फौजी नियम–शृंखला तोड़ने के अपराध के कारण गोलियों से मृत्युदण्ड दिया जाये- ऐसी राय दी गयी थी। साथ-साथ ही देशी सिपाहियों ने 113 अंग्रेज फौजियों को और दो सामरिक कर्मचारियों को थोड़े

समय के अन्दर ही गोलियों से मार दिया था। उन विद्रोहियों को दमन करना कठिन था। आर्कट से विशाल सैन्य वाहिनी बुलवा कर अमानुषिक रूप से विद्रोह का दमन किया गया।

12. विद्रोह-दमन का नमूनाः– विद्रोहियों को हथकड़ी और बेड़ी लगवा के दो दिन भूखे और नंगे रखा गया था। तीसरे दिन विद्रोही सैन्यों के नेताओं के जीवित शरीर से चमड़े निकालकर उन चर्म-हीन मृत देहों को ठेला-गाड़ी पर रखकर सैन्यावास में जलूस निकाला गया था। मृत अपराधियों के अन्दर हिन्दु और मुसलमान दोनों ही थे। इस रूप से भेलोर का विद्रोह दमन किया गया था। इसके बाद ही वेटिंक और फ्रेड्रिक को स्वदेश जाने का आदेश मिल गया था। हमारे तीर्थ यात्रियों के अन्दर भेलोर-विद्रोह के बारे में सुनाने वाले व्यक्ति के मामा दंड-प्राप्त फौजी नेताओं के अन्दर शामिल थे।

13. बारीकपुर–विद्रोहः– बंगाल-नदीया के एक वृद्ध साधु ने कहा कि भेलोर की-सी अनुरूप घटना आज से करीब तीस वर्ष पहले बंगाल के बारीकपुर में भी घटी थी। वहाँ के सैन्यावास में सैनिकों को झट ब्रह्मदेश में युद्ध करने के लिए आदेश मिला था। इससे उनके अन्दर विक्षोभ पैदा हुआ था। उनको मासिक वेतन भी बहुत ही कम दिया जाता था। इसके उपरान्त समुद्र पार होके विदेश जाने से उनके खाद्याखाद्य का विभेद नहीं रहेगा और वे लोग धर्म-भ्रष्ट और जाति भ्रष्ट हो जायेंगे। घर से भी ये लोग निकाले जायेंगे। सिपाही लोगों में सम्मिलित रूप से करीब दो सौ फौजियों ने सरकार से प्रार्थना की थी ''हम सब लोग जाति रक्षा, धर्म रक्षा आचार-रक्षा के लिए ही समुद्र के उस पार ब्रह्म देश में युद्ध के लिये नहीं जाना चाहते हैं। हमारे प्रति वहाँ जाने के लिये जो आदेश दिया गया है उसको खारिज कर दिया जाये।''

बारीकपुर से कलकत्ता केवल दो योजन की दूरी पर है। वहाँ सामरिक ढंग से उत्तर आ गया था। तदनुसार सैन्यावास के अन्दर कुचकावास के मैदान में सब ही प्रार्थनाकारियों को बेड़ी और हथकड़ी लगवा के खड़े करके सब ही को एक साथ गोरे सैन्यों से गोलियों से मरवा दिया। इनके शव देहों को सप्ताह भर गंगा

नदी के तीर पर प्रदर्शनी के रूप में रखा। मांसाहारी पशु, पक्षियों ने शवों के माँस को खा लिया। पड़े रहे केवल सैकड़ों कंकाल। उस कंकाल-राशि को गंगा नदी में फेंक दिया। शाम को हर रोज जनता हटायी जाती थी। मृत-व्यक्तियों के बन्ध ु-बान्धव लोग दूर-दूर से शवों को देखने के लिए आते थे। मृत, गलित, खण्ड-खण्ड माँस राशियों के अन्दर से अपने आदमियों को पहचानना असम्भव था। सन्ध्या से पहले ही जनता को गंगा के किनारे से हटाने के लिए गोरे सैन्य लोग घोड़े पर सवार होके आते थे। जनता हटने में देर करती तो बन्धु-बान्धवों के शोक के कारण रोती हुई जनता पर बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ते थे। इन गोलियों से बहुत संख्या में पुरुष, स्त्री, शिशु और पथिक भी घायल होकर मर जाते थे।

14. सौ वर्षों को शासनः— सारे देश भर में विदेशी शासन का हाल सुनते हुए हम सब कुम्भ मेला के यात्री लोग धीरे-धीरे हरिद्वार की तरफ पैदल जाने लगे। पूरे देश का हाल सभी की ज्ञान दृष्टि के सम्मुख आने लगा। कोई सुखी नहीं है। सब कोई अंग्रेज-शासन से दुःखी हैं, यह मालूम होने लगा। जन साधारण के इन दुःखों के कारण एक नहीं बहुत हैं। सौ वर्षों के अन्दर देश की धर्म-नीति, सामरिक नीति, अर्थनीति, शासन नीति और राजनीति उलट गयी है। विभिन्न प्रकार की दुर्नीति ने समाज के शरीर को पंगु और असार कर दिया है।

15. प्रजा—विद्रोह का आभासः— आबू शैल-शिखर से हरिद्वार तक पैदल आते समय विभिन्न स्थानों के सैकड़ों आबाल-वृद्ध, नर-नारियों से वार्त्तालाप करने का मुझे मौका मिला था। मालूम पड़ता था कि प्रजा-जनसाध ारण के अन्दर अपने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करने के लिये प्रबल प्रचेष्टा हो रही है। लगभग सौ वर्ष पहले के ''प्लासी के युद्ध'' का बदला लेने के लिये करीब-करीब सब कोई तैयार हो रहे हैं। इनमें धनी, गरीब, राजा, प्रजा, सरकारी, बेसरकारी, साधु, संन्यासी, भिखमंगे, कंगाल तक सब कोई शामिल थे। जान देने के लिये भी सैकड़ों पुरुष तैयार हो गये थे।

16. गुप्त समितियों की स्थापनाः— करीब सब ही शहरों में गुप्त

समितियाँ कायम हो गयी थीं। गुप्त प्रचार कार्य और संगठन भी चालू हो गये थे। मन्दिर और मस्जिदों में गुप्त परामर्शों के कार्य सुचारु रूप से चलते थे । खास खास आदमियों के घरों में बाकायदा कार्य-केन्द्र स्थापित हो गये थे। क्रान्तिकारी नेता लोग गम्भीर रात्रियों में अलोचनार्थ समवेत होते थे। खास-खास समाचारों को खास-खास स्थानों में भेजने के लिए गुप्त पत्र वाहक दौड़ा करते थे। क्रान्तिकारी लोगों में आपस में वार्त्तालाप के लिये सांकेतिक और गुप्त भाषाओं का प्रयोग होता था। गुप्त समितियों के कवियों के रचित स्वदेश और स्वधर्म-भक्ति मूलक संगीतों के द्वारा भिखमंगे लोग भीख माँगते थे। वीर पुरुषों की जीवनियों की कहानियाँ कविताकार से प्रचारित होती थीं। हाट-बजारों में प्रचार-पत्र और प्राचीर-पत्रों का वितरण होता था।

17. क्रान्ति की अग्नि शिखा:— देश भर में इस प्रकार की गम्भीर स्थिति और वातावरण देखने से मालूम होता था कि अति निकट भविष्य में ही किसी न किसी समय क्रान्ति की अग्निशिखा प्रबल और व्यापक रूप से प्रज्वलित हो जायेगी और फैल जायेगी। प्रजा-विद्रोह के होमानल से सर्व प्रकार के अन्याय, अधर्म, अत्याचारों के पूँजी-भूत सब जंजाल एक साथ जल कर अति अल्प समय के अन्दर ही स्वाहा हो जायेंगे। अंग्रेज सरकार को यह सब मालूम होने पर भी केवल बन्दूकों के बल पर यह स्थिति निश्चिन्तरूप से उपेक्षित की गयी थी।

18. हरिद्वार में:— आबू पर्वत से आये हुये हम सब साधु संन्यासी यथा समय हरिद्वार में पहुँच गये थे। हमारे साथ रास्ते में जितने गृहस्थ यात्री आये थे, हम ने सब ही को अलग कर दिया था। मैंने स्वयं को भी सब संन्यासियों से अलग कर दिया था। कुम्भस्नान की तारीख से बहुत दिन पहले ही तीर्थ यात्री लोग सैकड़ों हजारों और लाखों आने लगे। हरिद्वार विराट् नर समुद्र में परिणत हो गया था। यह मेरा पहली बार हरिद्वार आना था। हम कुम्भ-स्नान से बहुत पहले ही हरिद्वार पहुँच गये थे। निश्चित रूप से सब ही जगह घूम-घूम के सब कुछ अनुभव कर लिया था। सिद्ध योगी साधकों का अनुसन्धान करना ही मेरा मुख्य कार्य था।

19. आशय:– हिमालय के चारों धाम- केदार, बदरी, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी जाने के रास्ते हरिद्वार से ही शुरू होते हैं। हरिद्वार में पाँच महातीर्थ हैं। गंगाद्वार, कुशावर्त, विल्वकेश्वर, नील पर्वत और कनखल। योग साधना और योगियों के संगत में रहना- इन दोनों कार्यों के लिये मैंने नील पर्वत को चुन लिया था। तीर्थयात्रियों की भीड़-भाड़ वहाँ बहुत कम है। वह स्थान करीब एक क्रोश चढ़ाई पर है। इसलिये वह स्थान एक-सा दुर्गम ही है। हम वहाँ अधिकांश समय साधना में ही बिताते थे। अवशिष्ट समय योगियों की संगत में एवं साधना के अनुशीलन करने में लग जाता था। बाहर के दर्शनार्थी हमारे खाने के लिये जो कुछ भेज देते थे, उससे मेरा गुजारा हो जाता था। किसी रोज अगर कुछ भी नहीं मिला हो तो उस रोज केवल पानी पीकर ही रह जाता था। यह आदत मुझे बहुत पहले ही आ गई थी।

स्वदेश और स्वधर्म रक्षार्थ व्यापक आन्दोलन

1. क्रान्तिकारी नेताओं का शुभागमनः– नील पर्वत में मैंने वहाँ चण्डीस्थान के संन्यासी रुद्रानन्द से सुना था कि भारत-व्यापी प्रजा-जागरण और विप्लव-प्रचेष्टा के और भविष्यत् क्रान्ति-युद्ध के नायक, नेता और कर्णधार लोग अति शीघ्र साधु-संन्यासियों के दर्शन और देश की परिस्थिति समझाने के लिये हरिद्वार मेला में आ रहे हैं। ये लोग नील पर्वत में भी आयेंगे। मेरे अन्दर भी उनके दर्शन के लिये और फिर उनसे वार्तालाप करने के लिये प्रबल इच्छा पैदा हो गई थी।

अब तीन रोज बाद ही पाँच अज्ञात नामा और अपरिचित सज्जन हमारे अति संकीर्ण कुटीर के सम्मुख आ कर पूछने लगे- ''आबु-शैल से आये हुये महात्मा जी कहाँ हैं? हम लोग उनसे मिलना चाहते हैं।'' मैंने परिचय दे दिया था। उन लोगों ने भी अपने-अपने परिचय दिये थे।

उनमें प्रथम थे द्वितीय वाजीराब पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धु पन्थ (नाना साहब)। द्वितीय थे उनके बन्धु भाई बाला साहब। तृतीय थे उनके अजीमुल्ला खाँ। चतुर्थ थे तात्या टोपे। पंचम थे जगदीश पुर के जमींदार बा० कुंवर सिंह।

2. नानासाहब के प्रश्न का उत्तरः– ये पाँच सज्जन प्रणिपात करके मेरे सम्मुख बैठ गये थे। नाना साहब ने कहा- ''महात्मा जी! विदेशी और विधर्मी अंग्रेज आकर स्वदेश और स्वधर्म को धीरे-धीरे ग्रास कर रहे हैं। इस को किसी तरह से निवारण करना चाहिये और किस तरह से रोकना चाहिये- इसके बारे में आपकी राय क्या है? हम लोग हरिद्वार में आये हुए खास-खास साध ु-संन्यासीयों से इस बात पर अभिमत लेते हैं।''

3. मेरा अभिमतः– किसी विदेशी राजा को किसी देश पर हुकूमत चलाने

का हक नहीं है। अंग्रेज विदेशी हैं। इसलिये भारत पर उसका शासन चलाने का अधिकार नहीं है। विदेशी शासक विदेशी शासितों को शोषण करके ही अपनी समृद्धि करते हैं। अंग्रेजों की समृद्धि भारत के शोषण पर ही है। किसी अन्य बर्बर असभ्य देश पर किसी सुसभ्य जाति का शासन उस देश के कल्याण के लिये हो सकता है। भारत असभ्य देश नहीं है और अंग्रेज भारतीय से ज्यादा सुसभ्य भी नहीं है। केवल वे हिंस्र पशु की तरह जबरदस्ती से शासन चला रहे हैं, जिसको भारत वर्ष नहीं चाहता है। भारत जैसे न्यायप्रिय सुसभ्य और पुराने देश को पद दलित करना महापाप है और इसको सहन करना और अधिक महापाप है, भारत जब प्राण-पन से बोलेगा कि हम अंग्रेज को नहीं चाहते हैं, तब ही अंग्रेज भारत शासन छोड़ने के लिये बाध्य होगा।

4. बाला साहब के प्रश्न का उत्तर:— द्वितीय सज्जन बाला साहब ने जिज्ञासा की- ''हमारे अपने दोष या त्रुटि क्या हैं जिससे हमारी ऐसी दुर्दशा है ? इस पर आपका क्या अभिमत है?

5. मेरा अभिमत:— युधिष्ठिर दुर्योधन, जयचन्द, पृथ्वीराज, मानसिंह प्रतापसिंह में जो भ्रातृकलह आत्मविरोध था, वही भारत के सर्वनाश का मुख्य कारण है। आगे चलकर हम देखते हैं- जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तब मराठा और सिख- दोनों की शक्ति पृथकरूप से या समवेत रूप से भारतवर्ष पर शासन चलाने के लिये यथेष्ट ही थीं। लेकिन दोनों के अन्दर आत्मविरोध के कारण से भारत अंग्रेजों के हाथों में चला गया। यह अनैक्यता और आत्म-विरोध ही हमारी दुर्दशा का कारण है।

6. अजीमुल्ला खाँ के प्रश्न का उत्तर:— तृतीय सज्जन अजीमुल्ला खाँ ने कहा- ''महात्मा जी! भारत के व्यापक प्रजा-विद्रोह के बारे में आपका क्या अभिमत है?

7. मेरा अभिमत:— मैंने जहाँ तक देखा है यह भविष्यत् गणविद्रोह का आभास मात्र ही है। यह विद्रोह साम्प्रदायिक या संकीर्ण नहीं है। इसमें

धनी-गरीब, कृषक-प्रजा, शिक्षित-अशिक्षित सब कोई सम्मिलित है। यह गण-जागरण भारत को नयी जीवनी शक्ति से संजीवित करेगा। धर्म की भित्ति पर यह आन्दोलन जब तक रहेगा। इसका भविष्यत् तब तक उज्ज्वल है। शिशु और नारियों पर जब तक आघात नहीं पहुँचेगा, तब तक इसका स्वरूप धार्मिक ही रहेगा। इस गण-जागरण में हिन्दु-मुसलमान सम्मिलित हो रहे हैं। दिल्ली के बादशाह और (विठूर) के पेशवा- दोनों ही इसमें शामिल हो गये हैं। अगर हिन्दू-जनता अंग्रेज को हटाकर पेशवा को अपना राजा बनाना चाहे या मुसलमान जनता अंग्रेज को हटाकर दिल्ली के बादशाह को ही भारत का बादशाह बनना चाहे तब तो गण-जागरण व्यर्थ बन जायेगा। पेशवा और बादशाह में प्रतिद्वन्द्विता ही है।

पंजाब का प्रबल पराक्रांत सामरिक सिख-सम्प्रदाय शायद पेशवा-परिचालित इस आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, बल्कि इसमें बाधा ही डालेगा। क्योंकि अंग्रेज और अफगान युद्ध में पेशवा ने दूसरे के राज्य हड़पने के लिये अंग्रेज को पाँच लाख रुपये ऋण-स्वरूप दिया था। इसके बाद ही अंग्रेज और सिख-युद्ध में पेशवा ने अंग्रेज पक्ष को एक हजार पदातिक सेना और एक हजार अश्वारोही सैन्य सहायता के लिये भेज दिये थे। पेशवा के इस गर्हित आचरण को शायद सिख लोग इतनी जल्दी भूलेंगे नहीं।

नेपाल के सम्बन्ध में भी बात एक सी ही है। नेपाल की राजधानी के रक्षार्थ नेपाली लोगों ने अंग्रेजों के साथ प्राणपण से युद्ध किया था। भारतीय साधारण प्रजा से उस समय कुछ भी मदद नहीं मिली थी। नेपाली लोगों ने इस बात को भुलाया नहीं है।

फिर भी इस भविष्यत् गणयुद्ध होने का परिणाम शुभ है। पलासी-युद्ध से एक शत वर्ष बाद यह गण-युद्ध होने वाला है। फिर आगे एक शत वर्ष भर युद्ध चलता ही रहेगा। तब युद्ध-जय अवश्यम्भावी होगा। बहुत कुछ आहुतियाँ अब भी बाकी हैं।

8. तात्या टोपे के प्रश्न का उत्तर:– चतुर्थ सज्जन तात्या टोपे ने

पूछा-''महात्मा जी! भारतवर्षव्यापी जिस प्रजा-विद्रोह का आभास आपकी नजर में आ गया है। उसके कारणों के बारे में आपका क्या अभिमत है?

9. मेरा अभिमत:- इस सम्भाव्य प्रजा-विद्रोह के मूल कारणों को हम भिन्न-भिन्न श्रेणियों से विभक्त कर सकते हैं- धर्म-नीतिक, समाज-नीतिक, राज-नीतिक, अर्थनीतिक, युद्ध-नीतिक और प्रत्यक्ष।

10. धर्मनीतिक कारण:- भारत के करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों को नरक से बचाने के लिये और सीधे स्वर्ग को भेजने के लिये हजारों श्वेतांग पादरी विदेशों से भारत-भूमि में, ऋषि-मुनियों के देश में आये हैं। इनका पालन-पोषण और अमीरी, भारत के गरीब प्रजाओं में कष्टप्रदत्त राजस्व से होती है। इनकी राजकीय स्थिति और प्रभाव जज मजिस्ट्रेटों से कम नहीं है। गरीब-दु:खी, असहाय-अनपढ़ और भोले-भाले लोगों को आर्थिक प्रलोभन से ईसाई बनाना ही इनका प्रधान कार्य है। अस्पताल, जेलखाने, सरकारी कार्यालय, विचारालय, पद पर नियुक्ति आदि विभागों में इनका असीम प्रभाव है। हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म के बारे में कटूक्ति और निन्दाबाद का प्रचार करना ही इनका धर्म-प्रचार है। अकाल-पीडित स्थानों में और गरीब गाँवों में आर्थिक सहायता के बल पर हिन्दू-मुसलमान नवजवानों को ईसाई बनाना ही इनका उद्देश्य है। बड़े-बड़े मेध ावी, कवि, साहित्यिक, वैज्ञानिक नव-जवानों को पादरियों ने भारतद्रोही बना दिया है। यह असहनीय है।

11. समाज-नीतिक कारण:- करीब एक सौ वर्ष पहले से ही सैकड़ों, हजारों अंग्रेज व्यवसायी, राजकर्मचारी, धर्म-प्रचारक के रूप में भारतीयों के संपर्क में आये, लेकिन इन्होंने अपने को भारतीयों से सर्वथा अलग करके रखा है। सब कोई अपने को प्रभु-शासक समझ करके सभी को शासित रूप में देखते हैं। उनके लिये भारत के सब कोई और सब कुछ घृणा के पात्र और घृणा की वस्तु हैं। इससे अंग्रेज और भारतीयों के अन्दर महान व्यवधान कायम हो गया है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय जन-साधारण के अन्दर प्रबल विद्रोह का

भाव उत्पन्न हुआ है।

12. राजनीतिक कारणः— अंग्रेजों ने राज्य-विस्तार के लिये युद्ध-नीति ग्रहण की है और जिससे पंजाब और पेगु (ब्रह्म देश) पर दखल कर लिया है। सिक्किम को एकांश युद्ध-नीति से ही लिया गया है। स्वत्वविलोप नीति से सतारा, सम्बलपुर, झांसी, भागल, उदयपुर, नागपुर, जैतपुर, कराउलि, वगैरह राज्यों पर भी दखल कर लिया है। कई एक राज्यों के राजपरिवारों को भत्ता देने का वचन दिया गया फिर उसको बन्द भी कर दिया गया। राजप्रसाद लुंठन किया गया, स्त्रियों को अपमानित किया गया। अराजकता के बहाने बनाकर भी कई-एक राज्यों का ग्रास किया गया। इन सब जबरदस्ती और दस्युवृत्तियों के कारण अत्याचार और अविचार के कारण जन- साधारण का मन विषाक्त, घृणा, विद्वेष और प्रतिहिंसा-परायण बन गया है। इसको सहन करना असम्भव हो गया है। प्रजा-विद्रोह का यह मुख्य कारण है।

13. अर्थनीतिक कारणः— अंग्रेज-शासन के एक सौ वर्षों के अन्दर देश के अपरिमित सोना, चांदी, मणि-माणिक्य-रत्नादि, सुप्रसिद्ध कोहिनूर स्यमन्तक आदि अमूल्य मणि आंग्ल-देश में भेज दिये गये। यन्त्र शिल्प के प्रवर्तन से कुटीर-शिल्प, स्वदेशी शिल्पों की जगह विदेशी शिल्पों की आमद अधिक रूप से हुई है। जिसके कारण देश की समृद्धि विनष्ट हो गयी और अन्नाभाव दुर्भिक्षादि बार-बार आने लगे। प्रजाओं के लुण्ठन के लिये घर-घर चौकीदारी-टैक्स, शिक्षा-कर, पथ-कर, जल-कर, आय-कर, शिल्प-कर और गवादि पशुओं के भूमि-चारणकर आदिकों की क्रमवृद्धि प्रचलित हुई है। जन-साधारण अन्न-वस्त्रादि के अभाव से अर्ध-मृत हो रहा है। प्रजा-विद्रोह अन्न-वस्त्राभाव के कारण स्वाभाविक गति से ही आ रहा है।

14. युद्ध-नीतिक कारणः— अनपढ़ मूर्ख जन-साधारण को शिक्षा-दीक्षा से वंचित करके बाल्य-किशोर यौवन अवस्था में अधिक वेतन के प्रलोभन से युद्ध-शिक्षा के लिये भेज दिया जाता है। राज्य-विस्तार में ये लोग

ही परम सहायक हैं। इनके प्रति विदेशी सामरिक कर्मचारियों का व्यवहार अमानवोचित है। इनके वेतन से पच्चीस गुणा अधिक वेतन अंग्रेज मामूली सैनिकों को मिलता है। जब इच्छा हो, जहाँ इच्छा हो युद्ध के लिये ये लोग भेजे जाते हैं। गन्तव्य स्थान का नाम तक भी नहीं बताया जाता है। युद्ध-भूमि में मृत्यु होने पर घर में समाचार भी नहीं पहुँचता है। ''सामरिक जाति'' यह नाम रखकर स्वास्थ्यवान् तरुण एकमात्र पुत्र को भी परवाने के बल पर पकड़ के सामरिक कर्मचारी ले जाते हैं। छावनी में धर्म कृत्य करना, धार्मिक चिह्नादि को धारण करना अवैध और निषिद्ध है। इस पर बिन्दुमात्र आपत्ति करने से भी सामरिक विचार के अनुसार गोलियों से मृत्यु-दण्ड दिया जाता है। आज से पचास वर्ष पहले भेलोर में और तीस वर्ष पहले बारीकपुर में इस प्रकार के अत्याचार और सामरिक दंडों का विधान हुआ था। दण्ड-प्राप्त सैन्यों का प्राप्त बाकी वेतन घर में नहीं भेजा जाता है । प्राणदंड का सम्वाद तक भी नहीं भेजा जाता है। बहुत रोज तक घर में पत्र आदि नहीं आने से अन्दाजा किया जाता है कि सामरिक कानून से प्राण-दण्ड मिला होगा। इस हालत को सहन करना कठिन हो गया है । प्रजा-विद्रोह का यह भी कारण है।

15. प्रत्यक्ष कारणः– कृष्णांग जातियों के प्रति प्रतिदिन और हमेशा जो व्यवहार सब ही जगह देखे जाते हैं। पशुओं के प्रति भी ऐसा निर्दय और निर्लज्ज व्यवहार नहीं देखा जाता है । जो कि ज्यादा रोज सहन करना कठिन है। इन सब कारणों से प्रजा-विद्रोह अवश्यम्भावी मालूम हुआ है।

16. श्री कुंवर सिंह के प्रश्न का उत्तरः– पंचम सज्जन श्री कुंवर सिंह ने पूछा- ''स्वामी जी महाराज! युद्धों में जय अथवा पराजय अनिश्चित होती है। आपसे पूछता हूँ, ''हमारा यह प्रजा जागरण या गण-युद्ध सफल होगा या विफल होगा?''

17. मेरा अभिमतः– स्वतंन्त्रता-युद्ध कभी विफल नहीं होता है। भारत धीरे-धीरे सौ वर्ष के अन्दर परतन्त्र बन गया है। इसको स्वतन्त्र बनाने में

और सौ वर्ष बीत जायेंगे। भारत पूर्ण स्वतन्त्र बनकर फिर जगत् पर अपने गौरव को प्रकाशित करेगा। इस स्वतंत्रता-प्राप्ति में बहुत से अमूल्य जीवनों की आहुतियाँ डाली जायेंगी। मैं हरिद्वार के कुम्भ मेले में दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आया हूँ।

18. प्रधान उद्देश्यः— योग सिद्ध साधकों का संधान करना। इससे मेरे पारमार्थिक कल्याण की प्राप्ति होगी।

19. गौण उद्देश्यः— कुम्भ मेले में भारत के और तिब्बत के सब ही साधु और महन्त लोग अपने-अपने शिष्य-सम्प्रदायों के साथ समवेत होते हैं। भारत में लाखों साधु हैं। इनके अन्दर संगठन नहीं है। सब को अपने-अपने गुरुओं के आधीन संगठित करना जरूरी है। मैं सब ही गुरुओं से मिलूँगा। देश के इस दयनीय स्थिति में सुधार के लिये मैं इनको प्रेरणा दूँगा। आप लोगों का प्रजा-विद्रोह प्रत्यक्ष रूप में रहेगा और इसका फल भी प्रत्यक्ष ही होगा। क्योंकि आप लोग मुख्य रूप से प्रत्यक्ष जीवन बिताते हैं। लेकिन साधु लोग अपार्थिव और परमार्थिक जीवन बिताते हैं। इसका स्वरूप और फल सम्पूर्ण अप्रत्यक्ष हैं। अप्रत्यक्ष फल के लिये साधु-संन्यासियों को संगठित करना बहुत ही कठिन है। इनकी संख्या कई एक लाख हैं। मैं इन त्यागी साधुओं को संगठित करने के लिये प्राण-पण से कोशिश करूँगा।

भारत की इस दुर्दशा को हटाने से भारत इतने विराट् और विशाल जन बल को प्राप्त हो जाये तो यह सौभाग्य की बात है। भारत के प्रजा-विद्रोह और साधु-संगठन के सवाल होने से देश का सर्वांगींण कल्याण होगा इसमें सन्देंह नहीं है। साधु संगठन की परिकल्पना को छोड़ देने से आज ही मैं आपके साथ प्रजा-विद्रोह में शामिल हो सकता हूँ। मैं हरिद्वार कुम्भ मेले से मानसरोवर, कैलाश और तिब्बत की तरफ योगी-साधुओं के सन्धान में जाना चाहता हूँ। लाखों-लाखों साधु संन्यासी हिमालय के विभिन्न ऋषि-पल्लियों में और पर्वत-कन्दरों में रह कर योग-साधना करते हैं और कोई-कोई साधना के आसनों में बैठे हुए जीवनों को छोड़ देते हैं।

पाँचों सज्जनों ने एक ही स्वर से मुझसे अनुरोध किया कि मैं योगियों के संधान में और साधुओं के संगठन में तत्पर रहूँ। प्रजा-विद्रोह के कार्य में सैकड़ों-सहस्रों आदमी पेशावर से कलकत्ते तक और मेरठ से कर्नाटक तक नियुक्त हुये हैं। लेकिन साधु-संगठन के कार्य में कोई भी नजर नहीं आता।

20. कमलपुष्प और चपाती:– अजीमुल्ला खाँ ने प्रश्न किया था ''हमारी यह प्रजा-विद्रोह की वाणी किस रूप से और द्रुत गति से सामरिक और असामरिक जनता में बहुत ही चुपचाप प्रचारित हो सकती है। इसके बारे में आप से उपदेश चाहते हैं।

मैंने इस कार्य के बारे में बहुत ही प्राचीन सनातन पद्धति को बतला दिया। सामरिक जनता में प्रचार के लिये कमल पुष्प और असामरिक जनता में प्रचार के लिये चपातियों का व्यवहार होता है। किसी सैन्यावास में किसी एक सैन्य के पास कमल पुष्प को हाथ में देकर व्यापक युद्ध-घोषणा की तारीख बोल दी जाये तो निःशब्द से एक हाथ से दूसरे हाथों तक कमल पुष्प भी चलता रहेगा और क्रान्ति की वाणी का भी प्रचार होता रहेगा। इस से किसी को सन्देह भी पैदा नहीं होगा। इस रूप से एक सैन्यावास से दूसरे सैन्यावास तक संवाद निःसन्दिग्ध रूप और आराम से सम्वाद पहुँच जायेगा।

असामरिक जनता में प्रजा-विद्रोह की वाणी उसी रूप से प्रचार के लिये किसी गाँव में प्रवेश कर किसी व्यक्ति को व्यापक विद्रोह की ठीक तारीख बोल देने के बाद एक व्यक्ति के हाथ में चपाती दे देनी चाहिये। उससे एक टुकड़ा लेने के बाद दूसरे व्यक्ति के हाथ तक पहुँचा देना। इस रूप मे टुकड़े होकर चपाती समाप्त हो जाने से अगले व्यक्ति नई चपाती बनवाके उसी रूप से दूसरे हाथों में दे देंगे। इस प्रणाली से गाँव से गाँवों तक एवं शहर से शहरों तक व्यापक विद्रोह का समाचार प्रचारित हो जायेगा।

किसी गुप्तवाणी या पवित्र समाचार के प्रचार के लिये यह अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है। अजीमुल्लाखाँ ने मेरी कही हुई इस प्रणाली के द्वारा सारे भारत में सर्वत्र क्रान्ति के समाचार को पहुँचाने का प्रबन्ध किया था। जिनके हाथों में

चपाती या कमल पुष्प आ जायेगा। वे अगर इसको दूसरे हाथों में नहीं देंगे। तो भयंकर पाप के भागी बन जायेंगे। इस स्वाभाविक भय से प्रचार-कार्य चालू रहा था। इस सांकेतिक अन्यथा गुप्त प्रणाली के प्रवर्तक बहुत पुराने जमाने के व्यक्ति थे। आजकल भी यह प्रणाली चालू है।

इस सुदीर्घ आलोचना के बाद पाँचों सज्जन प्रणिपात करके चले गये। श्रीमन्त नाना साहब ने मुझको हिमालय भ्रमण के बाद कानपुर (विठूर) में आने के लिये आमन्त्रण दिया था और मैंने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया था।

21. नाना साहब और विठूर:– कानपुर से डेढ़ योजन की दूरी पर पश्चिम की तरफ गंगा के पश्चिम उपकूल में विठूर है । ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था इसलिये इसका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त्त है। नाना साहब बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। इनका प्रकृत नाम था धुन्धु पन्थ। द्वितीय वाजीराव ने अंग्रेज सरकार को आत्मसमर्पण किया था और वार्षिक आठ लाख रुपये से सन्तुष्ट होकर विठूर में अंग्रेज के नजरबंदी के रूप में रहने लगे। द्वितीय बाजीराव की मृत्यु के बाद अंग्रेज सरकार ने वह वार्षिक आठ लाख रुपया बन्द कर दिया था। यही नाना साहब प्रजा-विद्रोह के अन्यतम नेता थे।

22. कुम्भमेला:– अब हमने हरिद्वार के कुम्भ मेले के उपलक्ष्य में योगसिद्ध साधकों के सन्धान में और साधुओं के संगठन के सम्बन्ध से ध्यान दिया। कुम्भ मेले में भारत के और तिब्बत के लाखों साधुओं का समागम होता है।

ऐतिहासिक लोग बोलते हैं कि राजा हर्षवर्धन के राज काल में (सप्तम शताब्दी) कुम्भ मेला का प्रवर्तन प्रयाग-क्षेत्र में हुआ था। 12 वर्ष बाद उन्होंने प्रयाग में हिन्दू और बौद्ध साधुओं के सम्मेलन का आह्वाहन किया था। तब से कुम्भ योग में हरिद्वार में, प्रयाग में, नासिक में और उज्जयिनी में संन्यासियों के महासम्मेलन होते हैं।

1. हरिद्वार में:- चैत्र संक्रान्ति (महाविषुव संक्रान्ति) में हरिद्वार में कुम्भ स्नान होता है । ब्रह्मकुण्ड में मुख्य स्नान होता है। शिवरात्रि में प्रथम स्नान, चैत्र अमावस्या में द्वितीय स्नान और महाविषुव संक्रान्ति में तृतीय स्नान या प्रधान स्नान

होता है। चैत्र संक्रान्ति में (महाविषुव- संक्रान्ति) हरिद्वार के ब्रह्म-कुण्ड में तृतीय या प्रधान स्नान होते हैं। वहाँ शिवरात्रि में और द्वितीय स्नान होते हैं, वहाँ चैत्र-अमावस्या में।

2. प्रयागः- मकर संक्रान्ति (पौष संक्रान्ति) से प्रयाग के त्रिवेणी संगम में । पौष संक्रान्ति (मकर-संक्रान्ति) में प्रयाग के त्रिवेणी संगम में कुम्भ मेले के स्नान होते हैं। वह ही प्रथम या प्रधान स्नान है। द्वितीय स्नान होते हैं परवर्ती अमावस्या में और तृतीय स्नान होते हैं वसन्त-पंचमी में।

3. नासिक में:- कुम्भ मेला चार्तुमास्य के समय होता है। आषाढ़ की शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक चार्तुमास्य है।
चार्तुमास्य में (आषाढ़ शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक) नासिक में कुम्भ-मेला लगता है। इस मेले का प्रथम स्नान होता है। श्रावण मास में बृहस्पति के साथ मंगल के और शुक्र के साथ सिंह राशि के मिलन से या कुम्भयोग में। यही ही प्रधान स्नान है। भाद्र की अमावस्या में यहाँ द्वितीय स्नान और कार्तिक की शुक्ला एकादशी में तृतीय स्नान होते हैं। संन्यासी लोग नासिक से ढाई योजन की दूरी पर गोदावरी के उत्पत्ति स्थान (लम्बकेश्वर) में रहकर कुशावर्त घाट में स्नान करते हैं।

4. उज्जयिनीः- वैशाखी पूर्णिमा में उज्जयिनी में कुम्भ मेला होता है। उज्जयिनी का कुम्भमेला वैशाखी पूर्णिमा के कुम्भलग्न में होता है । यहाँ एक ही मात्र प्रथम और प्रधान स्नान होता है। प्रति 6 वर्ष बाद हरिद्वार में और प्रयाग में अर्ध कुम्भ मेला होता है।

23. प्रयागः— इलाहाबाद में है तीर्थराज-प्रयाग और दूसरे छः प्रयाग हैं हिमालय में हैः-

1. देवप्रयागः-भागीरथी और अलकनन्दा के मिलन-स्थान में है।

2. रुद्रप्रयागः- अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थान में है।

3. शैवप्रयागः- केदारनाथ जाने के रास्ते में त्रियुगी नारायण और गौरी कुण्ड के अन्दर मन्दाकिनी के साथ शैव-गंगा या काली गंगा के मिलन-स्थान

में है।

4. कर्णप्रयाग- बदरी के रास्ते में अलकनन्दा के साथ विष्णु गंगा के मिलन-स्थल में है।

5. नन्दप्रयागः- अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थल में है।

6. विष्णुप्रयागः- अलकनन्दा के साथ विष्णुगंगा के मिलनस्थल में है।

मैं इन छः प्रयागों में भी योग-सिद्ध साधकों के सन्धान में गया था, दूसरा मेरा उद्‌देश्य साधु-संगठन था।

24. सम्राट् हर्ष वर्धनः— सुना जाता है कि हर्ष वर्धन कुम्भ-मेलों के स्थानों में विराट् महायज्ञों के अनुष्ठान करते थे। सर्वस्व दान दिया करते थे। उन्हीं स्थानों में ही साधु-संन्यासी और ज्ञानियों के सम्मेलनों के कारण कुम्भ-मेलों का प्रवर्तन हुआ था। इन सम्मेलनों में लक्ष-लक्ष साधु-संन्यासियों की शोभा-यात्रा एक अपूर्व दृश्य है। मैं तीन बार हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुआ था। यह थी हरिद्वार कुम्भ मेले मे मेरी प्रथम उपस्थिति। अब मैंने विभिन्न नेताओं और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के नेताओं से अपने दो विषयों पर आलोचना के लिये भेंट की थी।

25. वेदान्तियों के चारों दिशाओं में मठः— जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने संन्यासियों को एकता-बद्ध करने के लिये और उनसे जगत् की उन्नति करने के लिये भारत की चारों सीमाओं में संन्यासियों के चार मठ स्थापित किये थे। उत्तर में बदरी नारायण-क्षेत्र में ज्योतिर्मठ, दक्षिण के (कन्याकुमारी) क्षेत्र में श्रृंगेरी मठ, पश्चिम के द्वारावती क्षेत्र में शारदा मठ और पूर्व के पुरुषोत्तम क्षेत्र में गोवर्द्धन मठ स्थापित करके उन मठों के संचालनार्थ चार शिष्यों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया था। संन्यासियों को उन्होंने दस सम्प्रदायों में विभक्त करके उनको चार मठों के अन्तर्गत कर दिया था। आज भी उन चार मठों के अन्तर्गत संन्यासी लोग दस नामों में से किसी न किसी नाम से अपना परिचय देते हैं।

26. दस नामी संन्यासी सम्प्रदायः— शृंगेरी मठ के संन्यासियों के नाम-सरस्वती, पुरी और भारती ये तीन। गोवर्द्धन मठ के- वन और आरण्य ये दो। शारदा मठ के- तीर्थ और आश्रम ये दो और ज्योतिर्मठ के गिरि, पर्वत और सागर ये तीन नाम हैं।

27. ब्रह्मचारियों के नामः— शृंगेरी मठ के ब्रह्मचारी- चैतन्य, गोवर्द्धन मठ के ब्रह्मचारी प्रकाश, शारदा मठ के ब्रह्मचारी स्वरूप और ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी आनन्द हैं।

श्री शंकराचार्य के चारों मठों के अन्तर्भुक्त संन्यासी और ब्रह्मचारी हजारों कुम्भ-मेलों में उपस्थित हुये थे । मैंने इनके चारों शंकराचार्यों से और प्रधान-प्रधान संन्यासियों से केवल संन्यासी-संगठन के लिये उपदेश, परामर्श और सहयोग माँगा था। मेरी प्रार्थना थी- ''आप में से कई एक संन्यासी आ जाइये। हम लोग सारे भारतवर्ष में कम से कम एक हजार संन्यासी संगठित और मिलित हो जायें। हमारे उद्‌देश्य रहेंगे-

1. वेद प्रणिहित धर्म का उद्धार और प्रचार करना।

2. सामाजिक आदर्श और मर्यादा को देशवासियों के सम्मुख स्थापित करना।

3. देश को विदेश और विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करना।

4. देश के मंगल के लिये मन और जीवन समर्पित कर देना।

आप ही में से इस कार्य के कोई न कोई संचालक कर्णधार बन जाइये।

28. वेदान्तियों के मनोभावः—हमारी इस प्रार्थना पर चारों मठों के चारों शंकराचार्य और बड़े-बड़े संन्यासियों ने इस आशय पर अपने मनोभावों को इस रूप से प्रकट कर दिया-''हम ब्रह्मवादी संन्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं। हमारे लिये ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। राष्ट्र, समाज, परिवार, जीवन, जगत् और ये सब स्वतन्त्रता-परतंत्रता, वर्ण आश्रम, हमारा-तुम्हारा भाव सब कुछ मिथ्या है। मिथ्या के लिये हम कुछ करना व्यर्थ समझते हैं।''

हम उन्हें केवल यह कहकर चले आए थे- 'दुःख की बात है कि आपके भोजन के लिये अन्न, पीने के लिये पानी, रहने के लिये स्थान, सर्दी के लिये कम्बल, हवा के लिये पंखा और सेवा के लिये शिष्य ही एक मात्र सत्य स्पष्ट हो रहे हैं, बाकी सब कुछ मिथ्या मालूम पड़ते हैं''

इसके बाद निराश होकर हम वैष्णव-सम्प्रदायों के प्रधान-प्रधान नेताओं के पास आ गये थे, ये लोग भी कुम्भ मेले में हजारों एकत्र हुए थे। ये लोग द्वैतवादी हैं और वैष्णव भक्त हैं।

29. वैष्णव सम्प्रदायः— वैष्णवों के अन्दर सम्प्रदाय बहुत हैं। शंकराचार्य के समय में भी बहुत तरह के वैष्णव मौजूद थे। अब मात्र रामानुजी, विष्णु स्वामी, माध्वाचार्यी और निम्बार्की सम्प्रदाय ही प्रबल हैं। इन सम्प्रदायों का वैरागी या वैष्णव नाम से परिचय दिया जाता है। ये लोग द्वैतवादी हैं और अद्वैतवाद के विरोधी हैं। अवतारों की उपासना करना ही इनकी साधना है। सत्ययुग के नारायण, त्रेतायुग के श्री रामचन्द्र, द्वापरयुग के श्रीकृष्ण और कलियुग के श्री चैतन्य देव की उपासना करना ही इनकी मुख्य साधना है। श्री रामानुजाचार्य, श्री बल्लभाचार्य, श्री निम्बकाचार्य और श्री चैतन्यदेव ही इनके स्व-स्व सम्प्रदायों के आलम्बन हैं। रामायेत, रामनुजी और गौडीय वैष्णव नामों से भी इनका परिचय होता है। दक्षिण देश में रामानुजी वैरागी या वैष्णव अधिक संख्या में हैं। इस प्रकार अयोध्या में और चित्रकूट में रामायेत वैष्णव, वृन्दावन अंचल में श्री कृष्ण के उपासक, बंगाल और उड़ीसा में गौड़ीय वैष्णव, आसाम में शंकर देव के उपासक, शंकर वैष्णवों की संख्या अधिक है। वैष्णव या वैरागी सम्प्रदायों के अन्दर चार मठधारी सम्प्रदाय हैं:-

1. श्री रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय,
2. श्री माध्वाचार्य का ब्रह्म-सम्प्रदाय,
3. श्री वल्लभाचार्य का वल्लभचारी या रुद्र सम्प्रदाय,
4. श्री सनक सनन्दन-सनातन सनत्कुमार का निम्बार्क सम्प्रदाय।

उत्तर भारत में रामानुजी से रामानन्दी वैष्णव अधिक प्रभावशाली हैं।

रामानुज के शिष्य देवानन्द, देवानन्द के शिष्य हरिनन्द, हरिनन्द के शिष्य राघवानन्द और राघवानन्द के शिष्य रामानन्द थे। इसलिये परम्परागत रूप से रामानुज से रामानन्द चतुर्थ शिष्य थे। इन सभी के अन्दर-अन्दर श्रेणियाँ हैं, उदासीन और गृहस्थ। गृहस्थ वैष्णव लोग उदासीनों के या गृहस्थ वैष्णव गुरुओं के निर्देशानुसार संसार धर्म का पालन करते हैं। उदासीन वैष्णव तीर्थ-पर्यटन, भिक्षा या देव-पूजा या मठों के महन्त बनकर आजीविका चलाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में इनके आश्रय-स्थल हैं और गृहस्थ वैष्णवों की सहायता से पुष्ट मठ, मन्दिर, देवोत्तरभूमि या अतिथिशालायें इनके आलम्बन हैं।

इन वैष्णव सम्प्रदायों के बड़े-बड़े गोस्वामी, महन्त, गुरु और साधु संन्यासी हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुये थे। मैंने सब ही की सेवा में उपस्थित होकर देश राष्ट्र और समाज की शोचनीय दशा के प्रति दृष्टि आकर्षण करके अपनी दोनों प्रार्थनाओं को पूर्ववत् रखा था। इन्होंने भी दूसरे ढंग की भाषा का प्रयोग करके मुझको निराश कर दिया था।

30. वैष्णव सम्प्रदाय के मनोभावः– उन सब के कहने का सारांश यह था ''हमारे यह शरीर श्रीराम या श्रीकृष्ण के भजन के लिये हैं । दूसरे कार्य के लिये नहीं हैं। दूसरे कार्य करना, श्री भगवान् के स्थान में देश-समाज राष्ट्र की सेवा करना महापाप है। मानव-शरीर फिजूल कार्य के लिये नहीं हैं महाप्रभु की सेवा और चिन्तन से मुक्ति मिलेगी, देश-समाज-राष्ट्र की वैषयिक चिन्ता से भगवद्-भक्ति ढीली हो जायेगी। मुक्ति लाभ या गोलोकवैकुण्ठ में जाने के मार्ग में प्रबल बाधायें आ जायेंगी। मानव-जीवन इतना सस्ता नहीं है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करके तब भक्ति-साधना के एक मात्र अवलम्बन भजन के लिये शरीर मिल गया है। इन शरीरों को देश, समाज, राष्ट्र की भजन-विरोधी सेवा के लिये समर्पण करना बुद्धिमानों का कार्य नहीं है।''

वैष्णव-गुरुओं से निराश होकर लौटते समय मैंने केवल मात्र इन वाक्यों को बोला था-

''जिस देश में ऐसे भक्तों की संख्या अत्यधिक है, उस देश का सर्वनाश

है।''

वैष्णव सम्प्रदाय की शाखा के अनुरूप बहुत सम्प्रदाय हैं। मैं इन सम्प्रदायों के नेताओं से मिला था और सभी की सेवा में साधु-संगठन के उद्देश्य का निवेदन किया था और प्रेरणा दी थी। सभी ने अनुरूप निराशाजनक बातें कहीं। उन सम्प्रदायों के नाम ये हैं। रामानुजी, रामाईत, कबीर-पन्थी, दादू पन्थी, रयदासी, सेन पन्थी, रुद्र सम्प्रदाय, मीराबाई, तुलसीदास, विट्ठलभक्त, चैतन्य सम्प्रदाय, स्पष्टदायक सम्प्रदाय, रामवल्लभी, साहब-धर्मी, बाउल, दरवेश, आउल, कर्ताभजा, न्याड़ा, सहजिया, खुशि- विश्वासी, गौरवादी, राधावल्लभी, सखी सम्प्रदाय, चरणदासी, हरिश्चन्द्री, सरपन्थी, माधवीपन्थी, वैरागी, नागा और ललिता। इनमें बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय अधिक हैं। इनके लिये साधु-संगठन का मतलब समझना ही कठिन हुआ था।

31. कुम्भ मेले की शोभा यात्राः– हिन्दू धर्म के विभिन्न सांप्रदायिक रूप देखने के लिए मैंने कुम्भ मेले के स्नान-यात्रियों की शोभा-यात्रा को देखा था। उसका स्वरूप निम्न प्रकार का थाः-

1. दिग्विजय का डंकाः- जगद्गुरु शंकराचार्य के लिये जय ध्वनि, एक नागा संन्यासी घोड़े पर सवार होकर दो नगाडे पीटते हुए जाता है।

2. दिग्विजय का झण्डाः- शंकराचार्य की विजय-पताका लेकर एक नागा संन्यासी गेरु पताका लेकर घोड़े पर सवार होकर जाता है।

3. कसरतः- नागा संन्यासी लोग पदातिक और अश्वारोही सैन्यों के रूप मे युद्ध भूमि में जाने के ढंग से अग्रसर होते हैं।

4. निदर्शनः- भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के और अखाड़ों के पताका-प्रदर्शन।

5. ऐक्यतान वादनः- युद्ध कालीन समवेत वाद्यध्वनि।

6. गैरिक पताकाः- हाथी के ऊपर बैठे हुए संन्यासी के हाथों में त्याग के प्रतीक अति बृहत गैरिक पताका की धारणा।

7. विजय पताकाः- युद्ध में जय लाभ का निदर्शन हाथी के ऊपर जरीदार मखमल की बड़ी नीले रंग की पताका।

8. दण्डधारी:- नागा संन्यासियों की सोने-चान्दी से मण्डित दण्डों को धारण करके विजय-गौरव के ढंग से अग्रगति।

9. धूनाधारी:- युद्ध कालीन उत्साह-व्यंजक धूप-धूना के साथ अग्रगति।

10. बल्लम पूजा:- बल्लमों से (भालों से) शत्रु-जय के बाद साधुओं की भारतवर्ष के हजारों लाखों नर-नारियों के सम्मुख त्यागी नागा साधु-संन्यासियों का विजय गर्व उन्मादन के साथ सामरिक ताल से पादक्षेप बहुत ही विस्मय के कारण हैं।

" पराधीन भारत में भी इतना हर्ष? क्या ये लोग भूल गये हैं कि हमारी मातृ-भूमि विदेशियों के हाथों में परतन्त्र है और पितृ-पुरुषों का धर्म विदेशियों से पद-दलित है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि विदेशी राहु ने हमारी देश जननी को ग्रास कर लिया है और अब सर्वग्रास के लिये तैयार हो गया है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि देश में अदूर भविष्य में जो क्रान्ति आने वाली है उसमें मात्र एक हजार सन्यासी-साधु त्यागी-महात्मा भी भाग लें और अपने-अपने जीवनों को आहुतियों के रूप में अर्पण कर दें तो देश सर्वनाश से बच जाये? हमने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक कुम्भ-मेला चलता रहेगा, मैं देश-जाति धर्म रक्षा के लिये मुख्य-मुख्य सब ही को प्रेरणा दूँगा। इन को संगठित रूप से मातृ-भूमि की सेवा और रक्षा के लिये सदा तैयार रहने के लिये अनुरोध करूँगा। गृहस्थ नर-नारी और भिन्न-भिन्न राज-पुरुषों का भी यहाँ आगमन हुआ है। इन्हें भी इस कार्य से मदद पहुँचाने के लिये अनुरोध करूँगा और इसके बाद योग-सिद्ध साधकों के सन्धान के लिए हिमालय और तिब्बत में भी भ्रमण करूँगा।"

32. कुम्भ मेले की भीड़ भाड़ में निराशा:– कुम्भ स्नान के लिये बहुत पहले ही हजारों हजार तीर्थ यात्री हरिद्वार पहुँच गये थे। भीड़ से बचने के लिये मैंने चण्डी पहाड़ पर आश्रय लिया था। हरिद्वार आने के बाद मुझे हिन्दू जगत् के विभिन्न सम्प्रदायों की स्थिति और जनता के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था। मैं यथा साध्य प्रधान-प्रधान सभी सम्प्रदायों से मिला था और उनके गुरुओं

और मुख्य पुरुषों के साथ बातचीत की थी। मेरा उद्देश्य था- स्वदेश और स्वध र्म की रक्षा के लिये उनके भीतर उत्साह पैदा करना। परस्पर विरोधी सम्प्रदायों के साधुओं को संगठित करके उस उत्साह को क्रियात्मक रूप में परिणत करना। परन्तु उन्होंने मुझे अपने उद्देश्य से भ्रष्ट करने का ही प्रयत्न किया। जिससे विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं से निराश हुआ था।

33. निराशा में आशा:—बहुत सम्प्रदायों के नेता मेरे उद्देश्यों के विरोधी बन कर मेरे विरुद्ध घूम-घूम कर प्रचार करने लगे थे और मेरे रहने के स्थान पर जाकर मेरे ऊपर आक्रमण और जुल्म के लिये जनता को भड़काने लगे थे। इससे सुफल यह हुआ कि साधु-संन्यासी, यति और गृहस्थ तीर्थ-यात्री मुझ जैसे पाखण्डी को देखने के लिये कौतूहली होकर चंडी पहाड़ में आने लगे थे। धीरे-धीरे दिन प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थी तीर्थ-यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी। दर्शनार्थी तीर्थ यात्रियों के सम्मुख खड़े होकर मैंने सवेरे और दोपहर प्रतिदिन स्वदेश और स्वधर्म रक्षा के बारे मे उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। मेरे जीवन में जनता के सम्मुख व्याख्यान देने का सूत्रपात यहाँ से ही हुआ था। सभी पुरुष-स्त्री खड़े होकर उपदेश सुन कर चले जाते थे। सरकारी कर्मचारी और शान्ति रक्षक भी वहाँ आया-जाया करते थे । इस सुफल के अन्दर मेरे लिये दो समस्यायें भी उत्पन्न हो गयी थी। जनता मुझे प्रणाम करने लगी और पैसे भी देने लगी।

मैंने कई एक दिन हाथ जोड़ कर प्रार्थना की ''मुझको ये दोनों ही नहीं चाहिये। मेरे खाने के लिये हर रोज अति अल्प वस्तु की जरूरत होती है और पैसे की तो बिल्कुल जरूरत नहीं है। मुझे प्रणाम भी नहीं चाहिये। मैं मामूली संन्यासी हूँ।''

मेरी प्रार्थना को जनता में से किसी ने भी नहीं सुना।

एक सज्जन ने कहा -''हम लोग आपको कुछ नहीं देते और आपको प्रणाम भी नहीं करते। अपने प्राचीन ऋषि-मुनि और पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं। इसके सिवा और कुछ नहीं। जो कुछ पैसे आपकी भेंट के लिये दिये

जाते हैं, इसको भी रोकना नहीं चाहिये। यह भी हमारी जाति का अन्यतम सद्‌गुण है। यह भी प्राचीन धर्म गुरुओं के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन मात्र ही है। आप इसको जहाँ चाहें खर्च कर देना। इस बात पर मैं नीरव और शान्त हो गया था।

34. राजा गोविन्दनाथ राय:— गोविन्दनाथ राय उत्तरी बंगाल में नाटोर की प्रसिद्ध रानी भवानी के वंशज हैं। यह रानी सिराजउद्दौला के शासन काल तक भी आधे बंगाल की शासन-कर्त्री थी। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे सब ही राज्य ग्रास कर लिया था। ये लोग असहाय बन गये थे। अब ये लोग जमींदार मात्र थे। राजा गोविन्दनाथ राय कुम्भ-स्नान के लिये हरिद्वार आये थे। आप अचानक रात्रि की शान्त, नीरव और निर्जन स्थिति में चार कर्मचारियों के साथ मशाल हाथ में लेकर मेरे पास आकर प्रणिपात करके बैठ गये और योगविद्या के बारे में उपदेश माँगा। मैंने उनको उपदेश दे दिया और उन्होंने विदाई काल में मेरे सम्मुख ग्यारह सौ एक रुपये की थैली भेंट के रूप में रख दी थी। मैंने समझाया कि मेरे लिये यह रुपया हानिकारक हो जायेगा। मेरे लिये यहाँ कुछ भी अभाव नहीं है। उन्होंने रुपया वापस नहीं लिया। बल्कि प्रयोजनानुसार और कुछ गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिये सूचना दी थी। उन्होंने सुना था कि मैं तिब्बत जाने के लिये विचार रखता हूँ। उन्होंने कहा ''तिब्बत जाना अतीव कठिन है और खतरनाक भी है। आप कभी उत्तर बंगाल में मेरे स्थान नाटोर तक आने की कृपा करें। हम आपके साथ अपने विश्वस्त पहाड़ी किसी एक आदमी को संगी और साथी के रूप में दे देंगे।'' मेरा संकल्प था:- काश्मीर होके हिमालय में भ्रमण करने का, फिर दार्जिलिंग होके ल्हासा तक जाने का और सम्भव हो तो गंगासागर भी जाने का। इसलिये इस संकल्प को ही पक्का कर लिया।

35. रानी लक्ष्मीबाई और रानी गंगाबाई:— दो-एक रोज के बाद ही झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनकी सहचरी रानी गंगाबाई ने तीन कर्मचारियों के साथ वहाँ आकर प्रणिपात किया। परिचय पूछने पर लक्ष्मी बाई आँखों में आँसू भरकर ओजस्विनी भाषा में बोलने लगी- ''मैं निःसन्तान और विधवा हूँ। मेरे पतिदेव की मृत्यु के बाद मेरे श्वसुर कुल के वैध राज्य को अंग्रेजों ने मेरे

नि:सन्तान होने के बहाने से अपना राज्य घोषित कर दिया। मेरे पतिदेव के राज्य से मेरा हक चला गया और अंग्रेजों का हक बन गया। सुनते हैं कि अंग्रेज सेनापति बहुत अधिक संख्या में फौज लेकर मेरी झाँसी को छीनने के लिये आ जायेंगे।''

आँखों से आँसू बहाती हुई झाँसी की महारानी ने कहा- ''महात्मा जी! मैं जिन्दा रहती हुई अपने श्वसुर-कुल के इस राज्य को दुश्मनों को नहीं दूँगी। मैं लड़ाई करती हुई मर जाऊँगी, लेकिन झाँसी को चुपचाप लुटेरे डाकुओं को नहीं दूँगी। मेरे लिये इस प्रकार के मरण को वरण करना ही कल्याणकर है। आप हमको आशीर्वाद दीजिये कि में हँसती हुई युद्ध में मर जाऊँ।''

लगभग बीस वर्ष की एक तरुणी के मुख से ऐसी बातें सुनकर समझ में आ गया कि भारतवर्ष में अभी तक वीर रमणी मौजूद हैं, भारत वीर शून्य नहीं है।

रानी को मैंने बोल दिया कि ''नश्वर शरीर को कोई भी स्थाई नहीं कर सकता है। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये जो अपने अस्थाई शरीर को दे देते हैं, वे कभी मरते नहीं। चिरकाल के लिये वे पूजा पायेंगे। हम भगवान् से आपके लिये शुभ और कल्याण की प्रार्थना करते हैं।''

उन्होंने भी एक हजार एक रुपया मेरे सम्मुख रखकर सम्मान दिखाया। नाटोर के राजा से जैसा मैंने कहा था, उन्हें भी वैसा बोल कर रुपये लेने से असहमति प्रकट की, लेकिन इन्होंने भी नहीं सुना। इस समस्या से मुक्त होने के लिये मैंने भगवान् से प्रार्थना भी की थी, परन्तु जनता ने सुनी नहीं। जिसका जैसा सामर्थ्य हो, रुपये-पैसे देने लगे थे । इसका सदुपयोग कैसे हो मैं यही सोचने लगा। वे चलीं गईं।

36. नाना साहब आदि का पुनः आगमनः– नाना साहब और नये अपरिचित तीन-चार सज्जन सात-आठ रोज के बाद फिर हमसे मिलने के लिये आये थे। ये सब कर्म-शील और व्यस्त थे।

नाना साहब ने कहा-''हम लोग सारे भारतवर्ष में भ्रमण के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जायेंगे। अति शीघ्र निर्दिष्ट तारीख में हम लोग चुने

हुये स्थानों में सुस्पष्ट विद्रोह का युद्ध शुरू कर देंगे। तारीख अब तक ठीक नहीं हुई है। संगठन में हम लगे हुये हैं। आप से आशीर्वाद लेने के लिये हम यहाँ आये हैं हम जहाँ रहें आपको यथासाध्य सूचित करते रहेंगे।''

मैंने कहा-''जो आशीर्वाद मैं आप लोगों को दूँगा। आप लोग उसको जरूर लेंगे। इसकी ठीक-ठीक प्रतिश्रुति दीजिये। आशीर्वाद मैं जरूर दूँगा।

उन्होंने कहा- ''आपका आशीर्वाद हमारे लिये शिरोधार्य है।''

मैंने राजा गोविन्द नाथ राय और रानी लक्ष्मी बाई से प्रदत्त रुपये और जनसाधारण से प्रदत्त खुदरा पाँच सौ तैंतीस रुपये कुल छब्बीस सौ पैंतीस रुपये नाना साहब के हाथ में स्वदेश-रक्षा के लिये दे दिये। उन लोगों ने सहर्ष ग्रहण किये।

हमने कह दिया कि-''जनसाधारण का नेतृत्व करना और आग लेकर खेल करना- दोनों हीं खतरनाक हैं। मामूली भूल से भी सत्यानाश हो जाता है। हमारे पास भेंट के रूप में जो कुछ एकत्र हो जायेगा, सब कुछ आपके पास स्वदेश-रक्षा के लिये ही आशीर्वाद के रूप में भेजते रहेंगे।''

ये लोग प्रसन्न होकर चले गये। मैं भी हिमालय में योगी और साधकों को ढूँढ़ने के लिये तैयारी में लगा।

37. पाँच योग-साधकों का संगः— हरिद्वार में कुम्भ मेले के बाहर निर्जन जंगल और पहाड़ी अंचलों में, मैं खास-खास स्थानों में दिनों के अधिकांश समय को योग साधना में बिताता था। इस उपलक्ष में मैंने पाँच योग साधकों के संग में आने का सुयोग लाभ किया था । उनका क्रियात्मक योग देखा। इनके नाम थेः- स्वामी मोक्षानन्द तीर्थ, चिदानन्द ब्रह्मप्रकाश आरण्य, स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ, स्वामी भक्तिविलास पाँचरात्र और स्वामी निर्वाणानन्द पुरी। इनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। इन्होंने मुझे क्रियात्मक रूप से योग-साधना के बारे में बहुत कुछ उपदेश भी दिया था।

38. साधु जनता में जागृतिः— नाना साहब और रानी लक्ष्मीबाई के प्रचार के कारण साधु लोग मेरे साथ वार्त्तालाप की इच्छा से एक-एक करके

सैकड़ों मेरे पास दिन भर शंका-समाधान करने के लिये आने लगे। स्वधर्म-रक्षा के लिये विहित कार्यक्रम जानने के लिये वे लोग आते थे। मैंने सबसे अनुरोध किया था:-

आप लोग अपने-अपने सम्प्रदायों के अन्तर्भुक्त रहकर ही स्वधर्म रक्षा के लिये तैयार हो जाइये । जन साधारण के अन्दर धर्म-रक्षा के लिये नया जोश उत्पन्न कीजिये। धर्म हमारे पूर्वजों की और ऋषि-मुनियों की कीर्ति और दान हैं। अहिन्दू नर-नारियों के प्रभाव से जाति और धर्म को और कतिपय विदेशी पादरी या मौलवियों की धोखेबाजी से ऋषियों के वंशजों को बचाइये। धर्म की प्राथमिक शिक्षा के प्रथम पाठ का जनसाधारण में प्रचार कीजिये। प्रयोजनानुसार धर्म-रक्षा के लिये और जाति के कल्याणार्थ जीवन दे देना परम पुण्य कार्य है। जगह-जगह धर्म-प्रचार के लिये केन्द्रों की स्थापना कीजिए। साधुओं के जीवन में दोनों ही पुण्य कार्य हैं।

प्रथम एकान्त जीवन में आत्मिक उन्नति के लिये योग- साधना करना और दूसरा सामूहिक जीवन के उत्कर्ष के लिये वेद-प्रतिपादित धर्म का प्रचार करना।

इन दोनों में ही हमारा पारमार्थिक कल्याण स्थित है। आप लोग केन्द्रों के अधीन रह कर संगठित हो जाइये। स्वदेश हमारी माता है और स्वधर्म हमारा पिता है। दोनों की रक्षा के लिये तत्पर रहिये और स्वेच्छा से जो साधु लोग इस व्रत को धारण करें उनके नामों की तालिका बनाते रहिये।

साधु लोगों ने कहा:- हम लोगों ने आपसे प्रेरणा पाते ही अपनी इच्छा से पहले ही करीब ढ़ाई सौ साधुओं के नामों की तालिका बनाई है। आप जब चाहें, ये लोग एक साथ स्वदेश रक्षा के लिये तैयार हो जायेंगे। मैने कहा:- उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम भारत में जितने सैन्यावास मौजूद है, वहाँ सुविधा के अनुसार कमल पुष्प और चपाती की बहु प्राचीन तरकीब से सैन्य और नागरिकों के अन्दर स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये प्रेरणा और जागृति पैदा कर देना आवश्यक है।

वे लोग मेरी बातें शिरोधार्य करके चल दिये और बोले- सब के साथ

सम्बन्ध रखकर ही चलेंगे।

मैंने केवल इंगित से बोल दिया था कि ''उत्तर भारत में मेरठ की तरफ, पूर्व भारत में बारीकपुर की तरफ और दक्षिण भारत में भेलोर की तरफ जरूर जाना चाहिये। केवल आप लोग दिल्ली के योगमाया मन्दिर के पुरोहित त्रिशूल बाबा से सम्पर्क रखियेगा। वहाँ से नियमित समाचार मिलेगा और आप लोगों के समाचार भी अवश्य हमको वहाँ से मिलने चाहिये।''

हिमालय पर्यटन

1. हरिद्वार से ऋषिकेशः— साधु लोग चले गये और मैं हरिद्वार से ऋषिकेश की तरफ रवाना हो गया। हिमालय में भ्रमण करना और योगियों से योग-साधना के बारे में उपदेश ग्रहण करना और साधुओं का संगठन करना ही उद्देश्य था। कहीं-कहीं योगियों से मिलने का अवसर मिला था।

2. ऋषिकेश से श्रीनगरः— ऋषिकेश से परिव्राजक साधुओं से मिलित होकर लक्ष्मणझूला में आया। वहाँ से टिहरी आकर श्रीनगर तक पहुँच गया था। केदारघाट के योगी साधुओं के साथ सम्मिलित होके तीन सप्ताह का समय योगाभ्यास में व्यतीत किया।

3. श्रीनगर से अमरनाथः— श्रीनगर से अमरनाथ जाना मैंने जरूरी समझा था। सुना था अमरनाथ में कोई न कोई योग-सिद्ध पुरुष सदा ही रहते हैं। उनमें योग-बल से देहत्याग करने की शक्ति है और कैवल्यलाभ की सहज शक्ति उनमें सदा ही है। अगल-बगल बहुयोग-सिद्ध पुरुषों के स्वेच्छा-मृत्यु के बाद जीर्ण कंकाल वहाँ ही पड़े रहते हैं। तिब्बती साधु लोग उन कंकालों के टुकड़ों को तिब्बत में ले जाते हैं। तिब्बत के साधु लोग उन टुकड़ों को बाजार में बेच देते हैं।

अमरनाथ जाने के लिए मैं तैयार हो गया था। साधु-दर्शन होगा, ऐसा सुना था। बेताल-सिद्ध नाम के किसी योग-सिद्ध पुरुष के बारे में भी सुना था। पहल गाँव, चन्दनवाड़ी, शेषनाग और पंचतरणी होता हुआ मैं अमरनाथ पहुँच गया था। वहाँ किसी गुफा में सरदी के कारण शुक्ला प्रतिपदा से बरफ जमते-जमते पूर्णिमा में छः हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा बरफ का शिवलिंग बन जाता है। उसी का नाम अमरनाथ शिवलिंग है। कृष्णा प्रतिपदा से वह शिवलिंग क्षय को प्राप्त होते-होते अमावस्या में नाम मात्र ही रहता है। यह अमरनाथ शिवलिंग का माहात्म्य कहा जाता है।

वहाँ बेताल-सिद्ध बाबा का दर्शन मिला था। उन्होंने मुझको अति सहज उपाय से मोक्ष लाभ का उपाय बतला दिया था। इसमें अतिशीघ्र मोक्ष लाभ होता है यह निश्चित है। उनका कथित उपाय हैं कि "किसी नव-जात पुंशिशु को चोरी करके लाना और अमावस्या के मध्य रात्रि में श्मशान भूमि में उस जीवित शिशु पर बैठे हुए चामुंडा देवी के बीजमन्त्र एक लाख, एक हजार एक सौ एक बार जप करने से अतिद्रुत मोक्ष मिल जाता है।'' मैं साधन प्रणाली को सुनकर ही नमस्कार करके भाग गया था।

4. अमरनाथ से पुनः श्रीनगरः- अमरनाथ से श्रीनगर आकर मैंने सुना था कि बौद्ध साधु लोग विभिन्न स्थानों पर परिभ्रमण करके तिब्बत जा रहे हैं। साधुओं के लिये राजनैतिक विधि-निषेध बहुत ही ढीला है। मैं बहुत ही प्रयत्न करके बौद्ध साधुओं में तीर्थयात्रियों में सम्मिलित हो गया था। श्रीनगर से मैं क्षीर-भवानी के मन्दिर में योगी साधुओं के सन्धान में गया था। लेकिन निराश होकर चला आया था।

5. श्रीनगर से गान्धार बलः- बौद्ध साधुओं के साथ स्थल-पथ से मैं डेढ़ योजन दूरी पर गान्धार बल नामक स्थान में आया था। क्षीरभवानी मन्दिर यहाँ से समीप ही है। गान्धार बल से तुलमुल आया। इस गाँव के प्रान्तभाग में ही क्षीर भवानी का मन्दिर है। बौद्ध साधुओं ने मेरे लिए 'लेह' शहर के वजीर और कार्गिल शहर के तहसीलदार के नाम पर परिचय पत्रों का प्रबन्ध कर दिया था। मैं साधुओं के साथ सिन्धुनद के तट को अवलम्बन करके पैदल तिब्बत रवाना हो गया।

6. गान्धार बल से कंगनः- गान्धार बल से हम नुन्नुर, जोजिलादि स्थान हो कर कंगन नामक स्थान को पहुँचे। सिन्धु नद के तट देश में असंख्य अखरोट, नासपाती, सेब, बादाम और अंगूर आदि के पेड़ और पौधे हैं। भगवान् की सुन्दर सृष्टि को देखते हुए तिब्बत के अन्तर्वर्ती स्थानों की तरफ हम अग्रसर होने लगे। मार्ग में बौद्ध साधुओं से मेरी धर्म-विषयक बातचीत भी हुआ करती

थी। हम हमेशा कहा करते थे कि गौतम बौद्ध ने कभी अलग धर्म-सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहा था। कतिपय व्यक्तियों की प्रबल चेष्टा से यह बौद्ध सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी और इनकी मृत्यु के बाद महायान और हीनयान आदि आदि उप-सम्प्रदायों का उद्‌भव हुआ था। मैं कहा करता था कि गौतम बुद्ध शुद्ध हिन्दू संन्यासी थे। हमारी इस बात पर बौद्ध साधुओं के अन्दर कोई-कोई नाराज हो गये और कोई-कोई सन्देह भी करने लगे थे।

7. कंगन से माटायन:— हम लोगों ने कंगन से गुंड, हायान, गंजन, सोना मार्ग, द्रास, सिरबल, बालताल आदि स्थान अतिक्रम किए थे। बालताल गाँव से जो जिला नामक गिरिपथ पार होने से ही तिब्बत राज्य शुरू हो जाता है। यह गिरिपथ ही मध्य एशिया से भारत आने-जाने का प्राचीन पथ है। इस रास्ते से परिचय पत्र ले हम तिब्बत के पहले गाँव ''माटायन'' में पहुँच गये थे। अब हम लोग हिमालय पार तिब्बत में थे।

8. माटायन से कार्गिल:— माटायन से पानदास, दुनुदुलयांग, तासगाम, सिमरी खुर्बु, पड़ावों आदि ग्राम होकर हम सब कार्गिल नामक शहर में पहुँच गये थे। यहाँ से लेह शहर करीब 15 योजन है। लेह लद्‌दाख राज्य का प्रधान शहर है। कार्गिल में करीब सभी धर्मावलम्बी निवास करते हैं।

9. कार्गिल से लेह शहर:— कार्गिल, लद्‌दाख और काश्मीर का मध्यवर्ती स्थान है। कार्गिल से हमको ''मौलवा चम्बा'' नामक गाँव में जाना था। पर्वत पर आरोहण करके बहुत ही ऊँचे रास्ते से करीब तीन योजन रास्ता चलने में 12 घण्टे समय लगता है। प्राणवायु वहाँ बहुत ही हल्का है। इसलिये जाना कठिन है। प्रातःकाल रवाना होके हम लोग रात को पहुँच गये थे। कार्गिल से करीब ढ़ाई योजन दूरी पर लामाओं के मठ और बौद्ध स्तूप नजर आये। दो योजन आने पर ''बौद्ध खर्बु'' आदि में हम आए थे। हर एक गाँव में मृत व्यक्तियों को श्मशान-भस्म कोटा में रखा जाता है और मृतव्यक्तियों का नाम प्रस्तर-खण्ड में लिखकर रख दिया जाता है। लद्‌दाख के राजा लोग प्राचीन काल में इन प्रस्तरों

के लिये प्राचीर निर्माण कर देते थे और पुण्य संचय करते थे। हमने ऐसे बहुत प्रस्तरों को देखा था। इस रूप में नुरला नाम गाँव अतिक्रम करने के बाद 'लिकिर गुम्फ' नजर आया था। लिकिर पर्वत बहुत ऊँचा है। बौद्धों के लिये यह बहुत ही पवित्र स्थान है सोने के सिंहासन में सोने की बुद्ध मूर्ति है। वज्रपाणि, लोकेश्वरी, वज्रतारा, अवलोकितेश्वर, शकाथुवा, मंजुश्री आदि बौद्ध देव-देवियों की मूर्तियाँ शोभित हैं।

इसके बाद हम ''नीमु'' की तरफ अग्रसर हुये। वहाँ से लद्दाख राज्य के प्राचीन सर्वश्रेष्ठ शहर ''वासगो'' का ध्वंसावशेष देख लिया था। इसके बाद हम नीमु में पहुँच गये थे। नीमु से बौद्ध लोग लेह शहर में आते हैं और आगे सुप्रसिद्ध ''हिमिस मठ'' को जाते हैं। नीमु ग्राम से आकर नदी पार होकर हम ''पितक'' नामक स्थान में आये थे। वहाँ पहाड़ पर ''फियाँ'' नामक गुफा है। इस उपत्यका में "लेह'' शहर, "स्तोक'' गाँव और सिन्धु नद सदृश मूल्यवान् सम्पद हैं। इसके बाद ही हम लेह शहर में पहुँच गये थे। लद्दाख के अधिवासी करीब सब के सब कृषिजीवी हैं। धनियों को छोड़कर सब गरीब परिवारों में एक ही परिवार के सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं।

लद्दाख प्रान्त के करीब सब ही गुम्फा, मठ, मन्दिरों में हमने किसी-किसी सिद्ध योगी पुरुष से मिलना चाहा था। त्यागी संन्यासियों का भी अनुसन्धान किया था। दुर्भाग्यवश हमको कोई भी नहीं मिला। योगी नाम सुनकर जिन-जिन से वार्त्तालाप किया था, वे सब कोई प्रेत पूजा के तन्त्र-मन्त्रों को ही योगविद्या के उपाय समझते हैं। साधु संन्यासी बोलने से बुद्ध मन्दिर के पुरोहित ही समझे जाते हैं। बाहर से कोई भी वहाँ जाय तो वह सन्देह का पात्र बन जाता है। मुसलमानों को मठ-मन्दिर, मूर्ति और विहार ध्वंस करने के कारण शत्रु ही समझते हैं। विदेशी ईसाइयों को खृष्टान राज्य विस्तार करने के अग्रदूत समझते हैं। हमको भी इन्होंने पहले-पहल गुप्त ईसाई समझ लिया था। वहाँ से हमने हिमिस गुम्फा के बारे में सुना था। तिब्बत की सर्वश्रेष्ठ गुफा बोलने से ''हिमिस'' गुफा ही समझा जाता है। हम लद्दाख प्रान्त के लेह शहर को छोड़कर हिमिस गुम्फा जाने

के लिये तैयार हो गये। मेरे साथ जितने बौद्ध साधु आये थे यह लोग एक वर्ष के लिये लद्दाख में ही रह गये।

10. लेह शहर से हिमिस की गुफा:–

यह गुफा लेह शहर से तीन योजन पूर्व दिशा में है। बगल में ही ''स्तोक'' नामक गाँव में लद्दाख के शेष राजवंशघर बहुत ही विलासिता और कर्जे से बंधे हुये रहते हैं। पहाड़ी मार्ग छोड़कर हम मैदान के रास्ते से हिमिस की तरफ रवाना हो गये। मेरे साथ और दो बौद्ध साधु थे। हम लोग वहाँ पहुँच गये थे। वहाँ के भिक्षु लोग बहुत ही खुश हुये थे।

11. लद्दाख प्रदेश में:– लामा मुझको देखकर कर ही बहुत आदर के साथ हिमिस मठ दिखाने को भीतर ले गये थे। करीब पाँच-छः बीघे भूमि पर बहुत कुछ देखा था । डेढ़ सौ भिक्षु अपने-अपने अलग-अलग कक्षों में रहा करते हैं। ऊँचे घर में मठाधीश (खाँपों) रहते हैं तिब्बती भाषा को छोड़कर थोड़ी-थोड़ी हिन्दी और अंग्रेजी भाषा भी जानते हैं। उनसे तिब्बत और बौद्ध ध र्म के बारे में वार्त्तालाप शुरू हुआ, उनके मुख से आश्चर्यकर समाचार मिला।

12. ईसामसीह भारत में आये थे:– मठाधीश से समाचार मिला था कि ईसा धर्म-ज्ञान-लाभ के लिये भारत में आये थे। इसके बारे में इसके पाठागार में हस्तलिखित पोथी में विस्तृत विवरण हैं। यहाँ की पोथी तिब्बती भाषा में अनुदित है। मूल पोथी पाली भाषा में मासा के समीप ''मारवुर'' नामक मठ में सुरक्षित है। उस पोथी में 14 परिच्छेद और 244 श्लोक हैं। मैं उन श्लोकों को अनुवाद करके ले आया था। उसका सारांश यहाँ बोला जायेगा। मठाधीश लामा ने आगे कहा था कि भिन्न भिन्न समयों में असंख्य बौद्धों ने जन्म लिया था। करीब पौने तीन हजार वर्ष पहले राजपुत्र शाक्य मुनि बुद्ध रूप में आविर्भुत हुये थे। इनके हर एक के बारे में ही कुछ न कुछ बौद्ध मठों में कुंचित और वेष्टनी कागजात में लिखा हुआ है। कम से कम 48000 लिखित कागज मिलते हैं। मौलिक कागज भारत से नेपाल में और नेपाल से तिब्बत में लाया गया था। इस

रूप से धर्म-प्रचारक ईसा की जीवनी भी तिब्बत में लायी गई थी। इस मठ में यह जीवनी मौजूद है। इसका सारांश मेरे पास है।

13. ईसा की जीवनी:— करीब दो हजार वर्ष पहले इस्राइल देश में गरीब माता-पिता के घर में ईसा का जन्म हुआ था। तेरह वर्ष की अवस्था में प्रचलित प्रथा के अनुसार जब ईसा का विवाह होने वाला था, तब ईसा घर से वणिक् दलों के साथ सिन्धु देश में पहुँच गया था। चौदह वर्ष की अवस्था में ईसा भारत के निवासियों के साथ सिन्धु देश में ही रहने लगा था। जब ईसा ने पंजाब और राजपूताना में प्रवेश किया था और वहाँ के भगवद्- भक्तों के साथ रहने लगा। तब जैन लोग उनको अपने अन्दर नहीं रख सके। ईसा अब उड़ीसा के जगन्नाथ क्षेत्र में पहुँच गया था। वहाँ के पण्डित लोगों ने वैदिक ज्ञान प्रदान किया था और आत्मोन्नति का यौगिक कौशल भी सिखा दिया था। ईसा छः वर्ष तक जगन्नाथ में, काशी में और भिन्न-भिन्न तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते हुये वैदिक-ज्ञान- संचय करने लगा । साधारण जनता ईसा को बहुत ही प्रेम-प्रीति की दृष्टि से देखने लगी। क्योंकि वह विशेष रूप से वैश्य और शूद्र लोगों के साथ ही रहा करता था और इन्हीं को ही वेद-विद्या सिखाता था। इस कारण से ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग ईसा के प्रति रुष्ट हो गये थे।

1. ईसा की शिक्षाः- अब ईसा धर्म-प्रचार करने लग गये। साधारण जनता ईसा के ज्ञान, बुद्धि और धर्म-प्रवीणता के कारण उनके प्रभाव मे आई थी, क्योंकि वैश्य और शूद्रों के अन्दर उनका शान्ति पूर्ण व्यवहार अति चित्ताकर्षक था। ये वैश्य और शूद्रों को वेद-विद्या की शिक्षा देते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगों ने इसका निषेध किया था। क्योंकि वेद-ज्ञान के लिये ये लोग अनाधिकारी है। ईसा ने इस निषेध आज्ञा को स्वीकार नहीं किया और ब्राह्मण-क्षत्रियों के इस अन्याय आदेश के विरोध में प्रचार करने लगे थे। वेद में सभी मानव-सन्तानों का समान अधिकार है। ईश्वर में किसी सन्तान के प्रति भेदभाव नहीं है। गरीबों को मदद पहुँचाओ, दुर्बलों की रक्षा करो, किसी की भी हानि मत करो, जो वस्तु तुम्हारी नहीं है, उसके प्रति लालच मत करो।

जब ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग निरुपाय होकर ईसा को जान से मारने के लिये तैयार हो गये, तब शूद्र लोगों ने ईसा की रक्षा के लिये सहायता की थी। ईसा जगन्नाथ क्षेत्र को छोड़कर दूसरे स्थानों में जाकर प्रचार करने लगे।

चारों तरफ ईसा के नाम और यश का प्रचार होने लगा। ईसा फारस देश में पहुँचे। वहाँ भी पुरोहित लोग ईसा के मतों के विरोधी बन गये थे। दूसरी तरफ धीरे-धीरे जनसाधारण ईसा के अनुरागी बनने लगे। प्रधान पुरोहित के पास ईसा के विरुद्ध अभियोग चलाया। ईसा को विचारालय में हाजिर किया गया। ईसा के वक्तव्य सुनकर प्रधान विचारपति या प्रधान पुरोहित ने ईसा को छोड़ दिया।

ईसा वहाँ से ईस्राइल में पहुँच गये। वहाँ धर्म और राष्ट्र के नाम पर अमानुषिक अत्याचार चल रहा था। जनसाधारण ईसा को वेष्टित करके खड़े हो जाते थे। मन्दिर के नाम पर वहाँ प्रबल अत्याचार चालू था। ईसा ने उपदेश दिया ईश्वर मनुष्य-निर्मित मन्दिरों को मन्दिर ही नहीं समझते हैं। मानव-हृदय ही हम सबके सच्चे मन्दिर हैं। सद् भावना सुचिन्ता और सत् आदर्श के द्वारा उन मन्दिरों को अधिकतर उज्जवल करो।

भगवान् में विश्वास रखो। धैर्य रखो। ईश्वर तुम्हारे लिये कल्याण करेंगे। हृदय को पवित्र रखो। हृदय को जंजाल, कूड़े, झंझट, बखेड़ा और फसाद से मुक्त रखो। ये तुम्हारी ही वस्तुयें हैं। तुम इनको शुद्ध नहीं रखोगे तो कौन रखेगा? इसलिए ही मन, प्राण, हृदय को सद्गुण और पवित्र ईश्वर-प्रेम और सद्भावनाओं से पूर्ण करके रखो। जिससे ईश्वर में अविश्वास और कुभावनाओं के वहाँ रहने के लिये जगह न रहे।

2. ईसा के उद्देश्यः- अब तो ईसा इस्राइल के भिन्न-भिन्न शहरों में धर्म प्रचार करते हुए घूमने लगे। रोम-शासन के पीडन से बचने के लिए सर्व साधारण के अन्दर जागृति पैदा हुई थी। नगरों के प्रधान पुरुष सब कोई दूर हो गये थे। यरुशलम में जाकर प्रधान शासक पाईलेट के पास ईसा के बारे में उन्होंने सब कुछ निवेदन किया। पाईलेट ने ईसा को गिरफ्तार करने और मन्दिर में यहूदी पुरोहितों से विचार करवाने का आदेश दिया। ईसा धर्म प्रचार करते हुए यरुशलम

में ही पहुँच गये। ईसा की कीर्ति और महिमा सुनकर सब वहाँ मुग्ध थे। मन्दिरों में ईसा के उपदेश होने लगे। ईसा के उपदेश में सुना गया था तुम लोग जरूर अन्धकार से मुक्त हो जाओगे। तुम लोगों के सम्मिलित हो जाने से तुम्हारा दुश्मन डर के मारे काँपने लगेगा।

पुरोहितों ने उपदेश सुना था और उन्होंने ईसा से पूछा भी था कि क्या आप शासन-कर्त्ताओं के विरुद्ध प्रचार करते हैं? शासन-कर्त्ता के पास ऐसा ही संवाद पहुँचा है।

ईसा ने कहा- आप लोगों ने क्या नहीं देखा कि विश्वप्रभु के विरोध में शक्तिमान् और धनाढ्य लोगों ने इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर पापों की क्रान्ति फैला दी हैं? मैं इस्राइल का अधिवासी हूँ। मेरे देशवासी पापों में डूबे हुए हैं। मैं मूसा व गमूर का विरोधी नहीं हूँ। मूसा के प्रकृत धर्म का देशवासियों के अन्दर प्रचार करना चाहता हूँ। मैं हृदय-मन्दिर से पापों के दाग को धोना चाहता हूँ।

शासक पाईलेट के पास पुरोहितों का निर्णय चला गया कि ईसा ध र्म-प्रचार करते हैं और कुछ नहीं। इस संवाद पर पाईलेट ने विश्वास नहीं किया। उन्होंने गुप्तचर नियुक्त किये। ईसा का धर्म-प्रचार भी चालू ही रहा।

पाईलेट के एक गुप्तचर ने जा के ईसा से पूछा- क्या हम लोग सीजर के शासन को मानते रहेंगे या उससे भविष्य में मुक्ति की आशा करेंगे?

ईसा ने जबाब दिया- मैंने आप लोगों से कभी नहीं कहा कि आप लोग सीजर के शासन से मुक्त हो जायेंगे। पापों में डूबी हुई आत्मा ही पापों से मुक्त हो जायेंगी। कर्त्ता के बिना परिवार नहीं चलता और शासनकर्त्ता के बिना देश नहीं चलता।

गुप्तचर ने ईसा से पूछा- क्या सीजर के अन्दर ऐसी शक्ति और भगवान् से प्रदत्त अधिकार है? क्या सीजर सर्वोत्तम पुरुष है?

ईसा ने जबाब दिया- मानवों के अन्दर कोई एक व्यक्ति सर्वोत्तम नहीं हो सकता। अधम व्यक्तियों की संख्या ही अधिक है। अधमों की चिकित्सा के लिए

धर्म-प्रचारकों की जरूरत है। उसी के अधिकार में दया और सुविचार करने का सुयोग सबसे अधिक है। यदि सीजर इस सुयोग का सदुपयोग करें तो उनका नाम धन्य हो जायेगा। यदि इस सुयोग का दुरुपयोग किया जाये, तो साधारण की दृष्टि में पतित हो जायेंगे।

3. ईसा की गिरफ्तारीः- साधु ईसा ने इस रूप से इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर सर्वत्र तीन वर्ष तक धर्म-प्रचार किया था। शासक के गुप्तचर लोग ईसा के पीछे-पीछे घूमने लगे। शासक के मन में शान्ति नहीं रही, क्योंकि ईसा की लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ने लगी। शासक भयभीत हो गये कि अतिशीघ्र ईसा प्रजा विद्रोह के द्वारा रोम का शासन उलट देगा। उन्होंने अभियोग चलाने के लिये परामर्श दिया और ईसा की गिरफ्तारी के लिये सैन्य भेज दिया । प्राण-दण्ड देने के लायक स्वीकारोक्ति मुख से निकालने के लिये कठोर अत्याचार करने के लिये भी निर्देश दिया गया था। ईसा पर अमानुषिक अत्याचार किये जाने लगे। प्रधान पुरोहित और ज्ञानवान् पुरुषों ने दयार्द्र होकर शासक से ईसा की बन्धन-मुक्ति की प्रार्थना की थी, ताकि जातीय उत्सव के रोज ईसा सबके साथ सम्मिलित हो सकें। शासक ने प्रार्थना मंजूर नहीं की । प्रधान पुरोहित और सबने प्रार्थना की थी कि जातीय उत्सव से पहले ही मृत्यु दण्ड हो या मुक्ति हो, विचार समाप्त हो जाये।

4. ईसा का विचारः- शासक ने दूसरे रोज ही विचार सभा का आह्वान किया था। सभा में प्रधान पुरुष गण, पुरोहित गण, विचारक गण और विशेषज्ञ गण सम्मिलित हुये थे। दस्युओं के बीच रख कर विचारक के सम्मुख बैठाया गया था ताकि केवल ईसा को ही प्राण दंड नहीं दिया जायेगा। ऐसा ही लोग समझ पावें।

शासक पाईलेट ने ईसा से पूछा- क्या यह बात सच्ची है कि तुम खुद ईस्राइल के राजा होने के लिये वर्त्तमान् शासन के विरुद्ध जनसाधारण को उत्तेजित कर रहे हो।

ईसा ने कहा- अपनी इच्छा से कोई भी राजा नहीं बन सका है। आप से लोगों ने यह मिथ्या ही कहा है। मैंने केवल स्वर्गीय राजा के बारे में ही प्रचार किया है और केवल उन्हीं की पूजा के लिये ही कहा है। क्योंकि इस्राइल के

सन्तान पूर्व पुरुषों के धर्म को भूल गये हैं। यदि ये लोग सत्य ईश्वर की तरफ वापस नहीं आते तो ये ध्वंस हो जायेंगे। और इनके मन्दिर भी विनष्ट हो जायेंगे। मैंने इनसे कहा कि तुम लोग अपनी स्थिति के अनुसार चलो, सर्वसाधारण की शान्ति को तोड़ो मत। मैंने उनको अपने-अपने हृदय और चित्तों के चांचल्य के बारे में स्मरण दिलाया था। इस कारण से ही परम प्रभु ने तुम्हारी जातीयता का विनाश करवा दिया और तुम्हारे देश के शासन को छीन लिया। यदि तुम लोग फिर परम प्रभु में आत्म-समर्पण करोगे तब तो स्वर्ग राज्य तुम्हारा ही हो जायेगा।

ठीक इसी समय पूर्व प्ररोचना के अनुसार एक साक्षी ने कहा- तुम तो जनता से इस बात को भी कहा करते थे कि तुम विधर्मियों के बन्धन से ईस्राइल के अधिवासियों को मुक्त कर दोगे।

ईसा ने कहा- हमने ठीक ही कहा था कि विश्व के परम प्रभु पृथिवी के राजाओं से ऊपर हैं। अदूर भविष्य में ही उस प्रभु की शरण में आकर ईस्राइल पाप के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। एक अग्रदूत शीघ्र ही आकर सबकी ही मुक्ति कर देगा।

अब शासक ने विचारकों से कहा- आप लोगों ने तो सुन ही लिया कि ईस्राइल के अधिवासी ईसा ने स्वयं ही अपने ऊपर लगाये हुये अभियोग को स्वीकार कर लिया है। अब आप लोग कानून के अनुसार विचार करके इसको मृत्यु दण्ड का आदेश दीजिये।

पुरोहित और विज्ञ लोगों ने कहा- आपने भी सुना है कि इन्होंने परम प्रभु के बारे में ही कहा है और इन्होंने आईन के विरोध में कुछ भी नहीं प्रचार किया।

अब शासक ने दूसरे एक साक्षी को बुलवाया। जिसको उसके प्रभु पाईलेट ने खुद घूस देकर वशीभूत कर रखा था, जिससे यह ईसा पर विश्वासघात कर सके। उसने ईसा से कहा- क्या यह बात सत्य है कि आपने अपने को ईस्राइल का राजा घोषित किया था और कहा था कि परमप्रभु ने ही आपको जनसाध ारण की तैयारी के लिये भेजा है?

ईसा ने उस आदमी को अशीर्वाद दिया और कहा- तुम इस वाक्य को

अपने अन्तर से नहीं कह रहे हो। इसलिये तुम भगवान् की दया से वंचित नहीं रहोगे।

शासक की तरफ दृष्टि देकर उन्होंने कहा- आप अपनी मर्यादा को क्यों नष्ट करते हैं? क्या इस उपाय को छोड़कर आपके हाथ में निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति है?

ईसा की इस उक्ति को सुनकर क्रुद्ध पाईलेट ने ईसा के लिये मृत्यु दण्ड दे दिया और दो दस्युओं को निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया।

विचारकों ने आपस में बातचीत करके पाईलेट से कह दिया आप के इस पाप में हम भागीदार बनना नहीं चाहते हैं। निर्दोष को दण्ड-दान और दोषी को मुक्तिदान यह हमारे कानून से बाहर है। आप जो चाहें करें। यह कहकर विचारक विचारालय से बाहर चले गये।

शासक के आदेशानुसार फौजों ने ईसा को और दो डाकुओं को पकड़ लिया। इन्हें बध्य भूमि में ले जाया गया और काष्ठ-स्तम्भों पर लटका के लोहे की कीलों से घायल करके लटका दिया गया। दिन भर ईसा और दोनों डाकुओं के शरीर लटके रहे थे। शरीरों से रक्तपात होने लगा था। जनता और दंडित व्यक्तियों के सम्बन्धी लोग वध-स्तम्भों के चारों ओर खड़े हो देख रहे थे और प्रार्थना करने लगे थे। शाम को ईसा अचेतन हो गये और देह को छोड़ दिया।

पाईलेट अपने आप को याद करके भयभीत हो गये थे। ईसा के मृत देह को उनके सम्बन्धियों को देने के लिये आदेश दिया। सम्बन्धी लोगों ने उस मृत देह को वध-स्तम्भ के पास कबर में रख दिया था। बहुत आदमी उस कबर को देखने के लिये आने लगे थे। सब कोई चारों तरफ से रोने लगे थे। तीन रोज के बाद शासक ने उस मृत देह को वहाँ से उठवा के अन्यत्र कबर में रखने का आदेश दिया था। उन्होंने जन-साधारण के विद्रोह की आशंका की थी। जब दूसरे रोज आदमी लोग कबर के पास आये थे तब देखा कि कबर खुली ही है और खाली है ईसा का देह वहाँ से कहीं चला गया है। चारों तरफ उड़ती खबर चली कि जगत् के परम-विचारक ने वहाँ से उस मृत देह को हटवाने के लिये स्वर्गीय

दूतों को भेजा था, क्योंकि उस देह में ही वे आंशिक रूप में निवास करते थे।

जब पाईलेट ने इन जनश्रुति को सुना था, तब रुष्ट होके आदेश प्रचारित कर दिया कि ईसा का नाम लेने से या उसके लिये प्रार्थना करने से मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा, तो भी जनसाधारण ने ईसा की मृत्यु पर रोना और प्रार्थना करना बन्द नहीं किया। जिससे बहुतों को कारा-दंड या मृत्यु-दण्ड मिला। चारों तरफ इसी रूप से ईसा की महिमा का प्रचार होने लगा था।

हिमिस-मठ के बड़े लामा ने यहाँ तक जीवन के बारे में उस ग्रन्थ से पढ़-पढ़ के टूटी-फूटी हिन्दी में जैसा सुनाया था। उसका सारांश मैंने आपकी सेवा में रखा है। तिब्बत के लामाओं ने कहा था कि ईसा किसी प्रकार कबर से मुक्त होकर छिपे हुये कश्मीर में आये थे। वे तथागत बुद्ध या गौतम बुद्ध की तरह ''ईसा-बुद्ध'' नाम से प्रचारित थे। जीव बहुत जीवनों में साधना करते-करते ''बोधिसत्व'' बन जाते हैं और वे साधना करते-करते आगे जाकर बुद्ध बन जाते हैं । ईसा इसी रूप से ही बुद्ध बन गये थे। ईसा बहुत शिष्यों के साथ काश्मीर के मठ में रहते थे। उनके दर्शन के लिये देश-देशान्तर में भक्त लोग आया करते थे और उनके शिष्य बनकर जीवनों को धन्य मानते थे। उस समय तिब्बत के रहने वाले, जिन्होंने ईसा को अपनी आँखों से देखा था और जिन वणिक् लोगों ने दण्ड प्राप्त ईसा को बध-स्तम्भ में देखा था। उन्हीं के मुख से सुन-सुन कर ईसा की मृत्यु से तीन चार वर्षों बाद सर्वप्रथम ईसा की जीवनी पाली भाषा में लिखी गयी थी। यहाँ की पुस्तक मूल पुस्तक की नकल है। न मालूम वह पुस्तक कहाँ है कोई कहते हैं कि ईसा योगी संन्यासी के रूप में भारत के आबू पर्वत में भी आये थे।

14. हिमिस गुफा से श्रीनगरः— वहाँ से लेह लिकिर गुफा, कार्गिल और शालीमार बाग होके एक बौद्ध साधु के साथ हम श्रीनगर चले आये थे।

15. श्रीनगर से ऋषिकेश में:—श्रीनगर में शैवतान्त्रिकों से परिचय हुआ। श्रीमत् स्वामी गंगागिरि से मेरी घनिष्ट मित्रता हो गयी थी । हम दोनों ने एक साथ लगभग दो महीने भिन्न-भिन्न तीर्थों में भ्रमण किया था।

धनुष-तीर्थ हो के हम दोंनों साढे तीन-योजन दूरी पर अगस्त्याश्रम गये थे। इससे पहले रुद्र प्रयाग भी होके आये थे। अलकनन्दा और मन्दाकिनी का संगम-स्थल है। ऋषीकेश से रुद्र-प्रयाग 11 योजन है और केदार नाथ 18 योजन है। रुद्र प्रयाग से अगस्त्याश्रम आधा-योजन और गुप्त-काशी भी आधा योजन दूरी पर है। मन्दाकिनी के उस पार सामने ही ऊषी मठ है। रामपुर भी नजदीक है। रुद्र प्रयाग से त्रियुगी नारायण आधा योजन से ऊपर है। यहाँ चार कुण्ड हैं- ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड और सरस्वतीकुण्ड। गौरीकुण्ड भी रुद्रप्रयाग से आधा-योजन है। इन सब तीर्थ स्थानों में भ्रमण करके हम दोनों (गंगागिरि और मैं) ऋषिकेश में पहुँच गये थे।

16. ऋषिकेश से मानसरोवरः– अनुकूल ऋतु में ऋषिकेश से रवाना होके हम देहरादून आये। वहाँ से यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी और गंगोत्तरी आये थे। वहाँ से डेढ़ योजन दूरी पर गोमुखी हैं। शीतकाल में यह स्थान बरफ से आच्छन्न हो जाता है। वहाँ केदार गंगा में आकर गोमुखी (गंगोत्तरी) से बहती हुई गंगा मिल गयी है। गौरी कुंड इसी का नाम है। गोमुखी से उतर कर तीन रोज की यात्रा में गंगोत्तरी मिलती है। गंगोत्तरी से त्रियुगी नारायण तीन योजन और केदारनाथ ढाई योजन की दूरी पर हैं। वहाँ से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी हैं। उससे आगे केदारनाथ और जोशी मठ है। यहाँ से नीती घाटी होकर तीर्थ यात्री लोग मानसरोवर और कैलास जाते हैं इन सब स्थानों पर होकर हम बदरीनाथ आये और वहाँ से ब्रह्म-कुंड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी, अलखनन्दा का उद्गम स्वर्गारोहण शिखर, अलकापुरी शिखर और मानसोद्भव तीर्थ आ गये थे। वहाँ से हम दोनों मानसरोवर जाने वाले तीर्थ यात्री लोगों से मिल गये थे। इस यात्रा में तीन सप्ताह से भी कुछ अधिक समय तिब्बत में ही भ्रमण करना पड़ा था। गुप्तचर लोग भी यात्री लोगों में सम्मिलित हो जाते थे। यह यात्रा बहुत ही कठिन और दुष्कर थी। सभी जगह मठ-मन्दिर हैं, लेकिन योग-शिक्षक नहीं मिले थे।

17. मानसरोवर से कैलाशः– तिब्बत के अन्दर करीब चार योजन

पैदल आने पर मान सरोवर और राक्षस ताल नाम के दो सरोवर मिले। पार्वत्य संकीर्ण भूमि से संयुक्त होकर भी दोनों सरोवर 'मानसरोवर' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसके किनारे योग-साधकों के स्थान हैं। वहाँ से करीब तीन योजन दूरी पर कैलाश है। कैलाश की आकृति बृहत् शिवलिंग जैसी है। कैलाश की परिक्रमा चार योजन की है। कैलाश में ऐसे स्थान हैं, साधक जिनमें योगस्थ बनकर बैठे हैं। उनमें कोई-कोई जीर्ण कंकाल के रूप में हैं और कई एक तो मृत देह के रूप में देखे गये थे। वहाँ साधना में निमग्न योगी लोग किसी को योग-विद्या की शिक्षा देने के लिये तैयार नहीं हैं।

18. कैलाश से ल्हासा:– कैलाश से मानसरोवर के किनारे आकर हम ल्हासा जाने के लिये तैयार हो गये थे। वहाँ से व्यापारी कारोबार की सामग्री पशु-वाहनों से ढोकर करीब अस्सी योजन दूरी पर ल्हासा में जाते हैं। हम दोनों भी उन व्यापारियों में सम्मिलित होकर ल्हासा की तरफ जाने लगे थे। हम भगवान् के भजन गाते थे। विश्राम स्थलों में सत्संग लगाते जाते थे। बौद्ध भिक्षु लोगों से मेरी बहस हो जाती थी। वे लोग केवल बुद्ध को ही सब कुछ मानते हैं और ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। कारोबारी गृहस्थ बौद्ध लोग हमसे कभी-कभी सहमत हो जाते थे। इससे बौद्ध भिक्षु लोग मेरे प्रति और मेरे साथी स्वामी गंगागिरि के प्रति रुष्ट हो गये थे। क्रमशः हमारे प्रति उनकी शत्रुता बढ़ती ही गयी।

19. प्राण-दंड और निर्वासन:– किसी बड़े शहर में वहाँ के ध र्म गुरु लामा के पास हम दोनों के विरुद्ध धर्म-निन्दा और बुद्ध के प्रति तिरस्कार करने की नालिश कर दी गयी थी। हम दोनों गिरफ्तार होके अन्धेरे कारागार में कैद रहे। तीसरे रोज लामा के विचार से हम दोनों को प्राण-दण्ड सुनाया गया। विचार-समय हम से पूछा गया था- क्या बुद्ध आदमी है या केवल बुद्ध ही हैं? हमने जवाब दिया था- बुद्ध महापुरुष हैं। बुद्ध हैं और आदमी हैं । गंगागिरि का जबाव भी ऐसा ही था। दोनों के प्रति प्राण दंड का आदेश दिया गया था। दोनों के शरीरों पर सैकड़ों जोंक लगाये गये थे। दोनों ही अलग-अलग वध-स्थानों में लाये गये थे और दोनों के उपाय भी अलग-अलग ही थे। गंगागिरि को ''याक''

नाम के किसी वन्य गाय के चमड़े से आच्छादित करके सिलायी की गयी थी और मृत्यु तक वह दिन भर धूप में और रात्रि भर ठण्ड में भूखे रखे गये थे और मैं मृत्युदण्ड प्राप्त शव देहों से परिपूर्ण एक गम्भीर कुएँ में भूखा मारने के लिये फेंक दिया था। इस भयंकर दृश्य को देखती हुई वहाँ की देवियाँ रोने लगीं। दूसरे दिन देवियों ने दयार्द्र होकर गंगागिरि को छुटकारा दे दिया था और मुझको कुएँ से निकालने के लिये मोटी रस्सी ऊपर से गिरा दी थी। मैं उस रस्सी को पकड़ कर तीसरे रोज ऊपर आ गया था। दोनों ही, देवियों की दया से उद्धार प्राप्त कर चौथे रोज दूसरे-दूसरे व्यवसायियों के साथ ल्हासा की तरफ रवाना हो गये थे। पुरुषों ने हमको कानून के बल पर मारना चाहा था और देवियों ने करुणा के बल पर जीवन दान दिया था। इस बात को हमारे लिये भूलना कठिन है। इस रूप से दो महीनों के अन्दर हम दोनों ल्हासा में पहुँच गये थे।

20. ल्हासा की बातें:– ल्हासा नगरी अति सुन्दर है । लेकिन नगरी में बाहर वालों के आने-जाने के लिये कठोर रूप से निषेध था। केवल साधुओं के लिये कानून में कुछ ढीलापन था। ल्हासा शहर करीब एक योजन लम्बा है चारों तरफ पर्वतों से घिरा है और किचु नदी के दक्षिण किनारे पर अवस्थित है। शहर के ठीक मध्य स्थान की उच्चभूमि पर ''झियो'' नाम का चतुष्कोण मन्दिर है। इसकी छत सोने से आच्छादित है। मन्दिर में बहुत तरह की मूर्तियाँ हैं। उनमें दो मूर्तियाँ ही प्रधान हैं- एक शाक्य मुनि की और दूसरी पल देन लामो की जो भारत की ''काली माता'' है। मूर्तियों के शरीर मूल्यवान् सोने और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत है। यहाँ के आदमी कहते हैं कि भारत के शाक्यमुनि यहाँ आये थे। पहाड़ के पाद देश में तिब्बत के राजगृह हैं । यहाँ के राजा का नाम ''गिय लिवो'' है। अलग दूसरे उच्च पर्वत-शिखर पर पोटाला या चाई नामक प्रासाद में तिब्बतियों के सर्वप्रधान धर्म गुरु लामा रहते हैं। इनका नाम ''कियामकुर्रि वोचि'' है। ये ही तिब्बत के सर्वेसर्वा हैं। ल्हासा शहर के उत्तर में ''गियाँ बुमोचि'' नामक महावीर का स्मृति-स्तम्भ है। यहाँ इन्होंने एक लाख चीनी शत्रुओं का वध करके देश की स्वतंत्रता की रक्षा की थी। तिब्बत के शासन

विधानानुसार बड़े लामा ही राजा है। 'गियालबो'' इनके प्रधानमन्त्री हैं। ये भी लामा हैं। तिब्बत में सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं।

21. तिब्बत की भाषा, धर्म, सामाजिक आचार:– तिब्बत में तीन तरह की भाषाओं का प्रचलन है- बोधकाई, खामकाई और दोयागकाई। ल्हासा में राजधानी की बोध-काई में ही धर्म ग्रन्थादि लिखित हैं। यहाँ बौद्ध-धर्म प्रचलित है। बौद्ध-धर्म भी यहाँ दो तरह के हैं एक ''नावाँ'' और दूसरा "चिवाँ''। लामा को छोड़कर सब ही के शव ''धोतो'' नाम के पर्वत पर ले जाये जाते हैं और शवों को टुकड़े-टुकड़े करके काटकर सम्बन्धी लोग माँस भुक्, चील, गीध, कौवें आदि पक्षियों को देने के लिये फेंक देते हैं। ल्हासा शहर के सब मठ, मन्दिर और धर्म गुरु लामाओं के आवास स्थानों को मैंने देख लिया था। योगी साधकों की भी तलाश की थी। ''ओं मणि पद्में हुँ'' मन्त्र के जप करने वाले साधु ही तिब्बत में योगी साधु नाम से प्रसिद्ध हैं । प्रकृत योगी साधकों का दर्शन मुझे नहीं मिला। मैं ल्हासा छोड़कर दार्जिलिंग जाने के लिये तैयार हो गया था।

22. ल्हासा से दार्जिलिंग:– ल्हासा से बहुत तिब्बती वणिक्, कस्तूरी, चमरी-पुच्छ और मूल्यवान् प्रस्तर बेचने के लिये दलबद्ध रूप से दार्जिलिंग आते हैं और इनके साथ लामा लोग और भिक्षु लोग भी तीर्थ-भ्रमण के लिये दार्जिलिंग पहुँच जाते हैं। स्वामी रुद्रानन्द मेरे साथ आये थे। ल्हासा से ''किचु'' नदी पार होके हम लोग दक्षिण किनारे ''नेथांग'' नामक स्थान में आये थे। वहाँ से हम लोग स्याम्यो या ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर तट में पहुँच गये। 'च्याकसाम' नामक गाँव के बगल दुर्गम प्रस्तराकीर्ण पथ से आकर नदी पार होने के लिये पुल देखा। पुल और ज्यादा भयंकर था। दोनों तरफ दो मजबूत रस्सी के साथ तख्ते बन्धे हुये थे। सब ही तख्ते दैर्घ्य में और चौड़ाई में छोटे और संकीर्ण थे। तख्ते लम्बी रस्सी के साथ झूलते हुये बन्धे हुये थे। इसलिये एक से ज्यादा आदमी एक साथ उस पर से नदी को पार नहीं कर सकता। लोहे की जंजीर दोनों तरफ स्तूपीकृत शिलाराशि के अन्दर प्रोथित काष्ठ दण्ड के साथ बन्धी हुई थी। पुल लम्बाई में एक सौ कदम था। उसके पार जाने के बाद हमने विश्राम करके

'कायरा' नाम की पहाड़ी घाटी को अतिक्रम किया। घाटी से उस पार जाकर हमने "काम्पापरत्सि" नामक स्थान में आकर विश्राम किया। ल्हासा से यहाँ आने में चार रोज लगे गये थे। ग्रामों में फल-मूल जो कुछ मिलता था खा लेते थे। इस रूप से हम दार्जिलिंग रवाना हो गये।

1. काम्पापरत्सि से न्यांकरत्सिः- काम्पापरत्सि से दूसरे रोज हम ने न्यांकरसि में पहुँच कर विश्राम किया। बगल में ''पालत्ति'' नाम का सरोवर है। इसकी आकृति घोड़े के खुर जैसी है। एक छोटे पर्वत से यह सरोवर घिरा हुआ है। रास्ते में इतना बड़ा सरोवर नहीं देखा। पर्वत के ऊपर ''दोरजिफ्यामो'' नाम का मन्दिर है और वहाँ आदमियों का निवास स्थान भी है।

2. न्याँकरत्सि से उपसि गाँवः- तीन रोज में न्याँकरत्सि गाँव से उपसि गाँव में आकर मैंने चीनी लोगों का उपनिवेश देखा। वहाँ प्रवेश करने की अनुमति मुझको नहीं मिली थी। स्वामी रुद्रानन्द भी वहाँ नहीं जा सके। वहाँ हम लोग समभूमि के रास्ते से बहुत आराम के साथ आ गये।

3. उपसि से गियात्सिः- उपसि गाँव से नियं नदी के किनारे दो समान्तराल पहाड़ों के ऊपर 'गियात्सि' नामक अति मनोरम छोटे नगर को हमने देखा । इसके पूर्वी तरफ के पहाड़ पर एक बड़ा किला है और पश्चिमी तरफ के पहाड़ पर एक गुफा है, जिसमें पाँच सौ लामा अर्थात् धर्म गुरु निवास करते हैं। यहाँ चुरतान अर्थात् धर्म मन्दिर है, जिसमें धर्म ग्रन्थ, मूर्तियाँ, और विभिन्न देव देवियों के पूजनार्थ उपकरण भी हैं।

4. गियात्सि से फारिः- गियात्सि से तीन रोज में फारि में नामक स्थान में हम रांगि को 'डयाग्कारपो, 'कालासर, 'काला शहर' 'छुटिआ' आदि स्थानों को अतिक्रम करके पहुँच गये थे। रास्ते में गर्म पानी का झरना देखा। काला शहर के बगल में 'कालसर' नामक सुन्दर सरोवर देखा। 'राम' नामक एक सरोवर भी देखा, जिसका जल कई एक महीनों तक पक्की बरफ के रूप में रहता है। 'फारि' में किला है। वहाँ से तिब्बतियों का पवित्र गिरि-शृंग ''चामोलारि'' दिखाई देता है।

5. फारि से चुम्बीः- फारि से दो रोज में हम चुम्बी नामक स्थान में आये। चुम्बी में सिक्किम के राजा गरमी के समय रहते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर दो नदियाँ मिल गई हैं। उस मिलित जलधारा का नाम ही ''आमो'' दरिया है। रास्ते में दो छोटे गाँवों में (रुपाखा नाम के गाँव की गुफा में और दोंकारा गाँव में) दो योगसाधक महापुरुषों का दर्शन किया। इन दोनों साधकों के नाम हमको मालूम नहीं हुये। बौद्ध साधु नाम से ही इन दोनों का परिचय था। पातंजल योगदर्शन के अनुसार विभूतिपाद में जितनी विभूतियाँ हैं, सब इन दोनों के आयत्त्व में आ गई थी। हमारी प्रार्थना पर इन्होंने हमको क्रियात्मक रूप में कुछ प्रदर्शन किया था। कैवल्य लाभ के बारे में इन के उपदेश बहुत ही उपादेय थे। हमने समझा था- तिब्बत भूमि में दुर्गम स्थानों में भ्रमण करना बेकार ही रहा है, लेकिन इन दो साधकों की संगत में आकर सारा परिश्रम सार्थक हो गया।

6. चुम्बी से इउकः- चुम्बी से इउक तक हम पार्वत्य दृश्य देखते हुये और स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुये पहुँच गये। यहाँ तक ही तिब्बत की सीमा है। इससे आगे भारत की सीमा आरम्भ होती है। तिब्बतीय गुप्तचरों ने बहुत कुछ पूछताछ करके हम दोनों को छोड़ दिया था। स्वामी रुद्रानन्द के पास दतौन-काष्ठ काटने के लिये एक छोटी सी कुल्हाड़ी थी, उसको भारत में गुप्तचरों ने लाने नहीं दिया । अब हम भारत में पहुँच गये थे।

7. इउक से दार्जिलिंगः- इउक से रवाना होके बौद्ध साधुओं के साथ स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुये हम करीब पन्द्रह रोज के अन्दर दार्जिलिंग पहुँच गये थे । रास्ते में 'नाथा' 'चुमाकेन, और 'पीडांग' आदि गाँवों में भ्रमण करके योगसाधकों का अनुसन्धान किया था । ''जिलेप'' नामक उच्च्य पर्वत शृंग पर्वत को पार करके नाथा गाँव में आये थे। 'चुमकान' गाँव में बौद्ध भिक्षु लोगों ने तिब्बत का भ्रमण वृत्तांत हम से उत्साह और कौतुहूल के साथ सुना। वहाँ से ''पीडाँ'' होके "कालिम्पोंग'' पहुँचे। यहाँ हाट और बाजार दोनों हैं। रविवार को यहाँ पेंठ लगती है। इस पैठ में तिब्बत से व्यवसायी लोग मूल्यवान् पशमीना, कपड़े, कस्तूरी, कीमती पत्थर और हाथी के दाँत बिक्री करके नमक खरीद कर

ले जाते हैं। कालिम्पोंग में दो ईसाई पादरियों से वार्त्तालाप हुआ। ईसाई धर्म और हिन्दूधर्म के बारे में उनका विश्वास है कि करीब दो सौ वर्षों के अन्दर-अन्दर भारत के सब के सब शिक्षित पुरुष-नारियाँ ईसाई धर्म की शरण में आ जायेंगे। कालिम्पोंग और दार्जिलिंग दोनों स्थानों में ही इनका प्रबल प्रभाव देखा गया। दार्जिलिंग की भुटिआ बस्ती में हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के बारे में हमने शंका-समाधान किया, दार्जिलिंग को हमने तिब्बत और भारत के बीच में व्यवसाय केन्द्र और पहाड़ी जातियों के अन्दर ईसाई धर्म-प्रचार के केन्द्र के रूप में देखा था। वहाँ के शिक्षित बंगाली लोगों में, पहाड़ी जातियों में, ईसाई धर्म का अबाध और प्रबल प्रचार हमारे देश और जाति के लिये हानिकारक है। इस तत्त्व को हमने अच्छे रूप से समझ लिया था। सब ही सज्जनों ने हमारी इस बात को स्वीकार भी कर लिया था, लेकिन उसका क्रियात्मक रूप नहीं देखा गया।

23. दार्जिलिंग से नाटोर:- दार्जिलिंग से नाटोर के राजा के उच्चतम कर्मचारी से परिचय हो गया। हरिद्वार में नाटोर के राजा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ था। इन्होंने भी मुझको बाहर जाने के लिये आग्रह प्रकट किया था। इनका नाम था श्री रतन मणि लाहिड़ी। लाहिड़ी महोदय के साथ नाटोर आ गया था। राजपरिवार के सब मनुष्य सन्तुष्ट थे। राजगृह में मैंने सात रोज राजधर्म और प्रजाधर्म के बारे में उपदेश दियाथा। योगविद्या के बारे में हम से क्रियायोग शिक्षा के लिए राजा बहादुर ने प्रार्थना की थी। हमने तपः स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के सम्बन्ध में शिक्षा प्रदान की थी। ये सब अपने को धन्य समझने लगे।

24. नाटोर से बारीकपुर:- हम वहाँ से गंगासागर जाने के लिए तैयार हो गये और स्वामी रुद्रानन्द जी के साथ प्रस्थान कर दिया। शिलीगुड़ी होकर हम दोनों बारीकपुर पहुँच गये थे। गंगा के किनारे हम दोनों वट वृक्ष के नीचे बैठ गये और लोग उपदेश लेने के लिए आने लगे। वहाँ के सैन्यावास से फौजी लोगों ने अति गुप्त रूप से कुछ कहना चाहा था। इस रूप से बातचीत करना हमें पसन्द नहीं आया। सैन्यावास में प्रवेश करना बाहर के आदमियों के

लिये निषिद्ध है। हम सैन्यावास के सम्मुख एक बड़े वट वृक्ष के नीचे धूनी लगा के बैठ गये थे। सभी प्रकार के आदमी हम से उपदेश और आशीर्वाद माँगने के लिए आने लगे थे। सभी का हम संक्षिप्त परिचय लिया करते थे। एक मंगल पाण्डे ने और दो फौजी आदमियों ने अपने को फौजी बोलकर परिचय दिया और रोते हुए कहा– ''महाराज! सरकार ने एक विचित्र तरह की कारतूस व्यवहार करने के लिए भेजी है। सुना जाता है– इसमें गाय और सूअरों की चर्वी मिली हुई है। उसको दाँतों से काट कर लगाना पड़ता है। हम समझते है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का धर्म भ्रष्ट करने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है। जान देने के लिये हम बहुत से फौज के सिपाही तैयार हो गये हैं। हमारे पास कमल पुष्प और चपाती भी क्रान्ति के दूत के रूप में आकर धर्म युद्ध में तैयार रहने के लिए प्रेरणा दे गये हैं। जब युद्ध के लिए संकेत आ जायेगा। हम लोग हथियार के साथ उतर पड़ेंगे। हम लोग प्रकट विद्रोह की ठीक तारीख की प्रतीक्षा में हैं। मराठी नेता के या कुमार सिंह के आदेश पर ही युद्ध शुरु हो जायेगा। आप हम सब को आशीर्वाद दीजिए। जिससे हमको धर्मयुद्ध में दुश्मनों के प्राण लेने या अपने प्राण देने के लिए शक्ति मिल जाय।

इन्होंने मुझे प्रणाम किया । मैंने आशीर्वाद दिया– '' जीना और मरना दोनों ही धर्म के लिए ही हैं। साथ-साथ धर्मयुद्ध में भी नियम और शृंखला की रक्षा करो। इससे विपरीत होने पर बड़े-बड़े जहाज भी डूब जाते हैं । भगवान् आपके हृदयों में शक्ति प्रदान करे।''

25. बारीकपुर से कलकत्ता:– मैं बारीकपुर से कलकत्ता आकर शोभा बाजार के राजा के भवन में तीन रोज रहा था। सायंकाल मेरा उपदेश गृहस्थाश्रम धर्म के बारे में होता था। उसमें केवल कर्मचारी लोग ही आया करते थे। राजा बहादुर के पास मैंने गंगा सागर जाने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने तीन कर्मचारियों को मेरे लिये नियुक्त कर दिया। हम सब एक साथ मिलकर जलपथ से गंगा सागर रवाना हो गये।

26. कलकत्ता से गंगासागर:– कलकत्ता से गंगासागर करीब

आठ योजन दूरी पर है। अब वह स्थान द्वीप के रूप में है। वहाँ अति अल्प संख्यक साधु हमेशा रहते हैं। जहाँ अब मेला लगता है। वहाँ ही समुद्र के साथ गंगा का पुराण मिलन स्थान हैं। गंगा वहाँ से हट गयी और समुद्र से मिलने के लिये एक छोटी सी धारा ही देखी जाती है। मकर संक्रान्ति में और कार्तिक पूर्णिमा पर वहाँ हजारों नर-नारी स्नान के लिये एकत्र हो जाते हैं। सारे भारत से भी साधु-संन्यासी और वैरागी लोग वहाँ एकत्र हो जाते हैं। आप लोग तो यहाँ के रहने वाले हैं। हम यहाँ आये थे केवल योगी साधक पुरुषों के सन्धान में। परन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई। वहाँ केवल स्नान के द्वारा पुण्य लेने के अपने गौरव के लिये साथ ही अपनी-अपनी साधनाओं के प्रदर्शन के लिये और केवल मेला दर्शन के लिये ही लोग एकत्र होते हैं। हमने योगी साधक ढूँढा था। एक ही योगी-साधक को मैंने पहचान लिया था। वे अल्प समय के लिये आये थे। किसी से भी उन्होंने बातचीत नहीं की।

27. गंगासागर से नवद्वीपः— मेरे साथ स्वामी रुद्रानन्द महाराज पूर्ववत् थे। दोनों कलकत्ते पहुँचकर नवद्वीप और शान्तिपुर गये थे। कार्तिकी पूर्णिमा में वहाँ मेला लगता है। नवद्वीप में तांत्रिक मूर्तियाँ सैकड़ो पूजी जाती हैं और भवतारिणी के मन्दिर के प्रांगण में सब मूर्तियाँ एकत्र की जाती हैं। मादक द्रव्यों का व्यवहार भी उसी रोज ज्यादा रूप से होता है। वैष्णव भक्त लोग भक्ति भाव से तीर्थ यात्रा के लिये वहाँ आते हैं। वैष्णव मत श्री चैतन्य महाप्रभु का और तान्त्रिक मत श्री कृष्णानन्द आगम-वागीश पण्डितों का आज भी प्रतिद्वन्द्विता के रूप में वहाँ पर्वोत्सवों में देखा जाता है।

28. नवद्वीप से कामरूपः— गंगा सागर और नवद्वीप होके कलकत्ता वापस आने के बाद कामरूप-कामाख्या जाने का विचार हुआ। सुना जाता है कि तान्त्रिकयोगियों के लिये वह स्थान सिद्ध पीठ पवित्र तीर्थ है। शोभा बाजार के राजा ने कामाख्या जाने के लिये भी जल-पथ-यात्रा का प्रबन्ध कर दिया था। स्वामी रुद्रानन्द महाराज कलकत्ते से पुष्कर तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से चले गये थे। मैं नौका-पथ से चारों आदमियों के साथ कामरूप चल दिया। कई

एक रोज के बाद हम लोग 'पांडुतीर्थ' में पहुँच गये थे। ब्रह्मपुत्र नदी के समीप ही कामाख्या पहाड़ है। पहाड़ के दूसरे पार ही गौहाटी (राजा भगदत्त की राजधानी) और ब्रह्मपुत्र नदी के केन्द्रस्थ गर्भ में छोटे पहाड़ पर उमानन्द शिव का मन्दिर है। चार सौ वर्ष पहले कामाख्या के इस मन्दिर को काला पहाड़ ने तोड़ दिया था। पुराने टूटे हुये मन्दिर की निशानी आज भी मौजूद है।

वर्त्तमान् मन्दिर का कूचविहार के राजाओं ने ही पूर्ववत् निर्माण किया था। नये मन्दिर के उद्घाटन के दिन मन्दिर के सम्मुख एक सौ इक्यावन (151) ब्राह्मण बालकों का बलिदान दिया गया था। कामरूप गोपालपाड़ा, नवगाँव और शिवसागर जिलों से इन सब बालकों का संग्रह हुआ था। अर्थ-लोभ से और पुण्य की आशा से माता-पिताओं ने इन सब बालकों को बलिदान के लिये बेच दिया था। तब से विभिन्न पर्वों पर उस मन्दिर के सम्मुख नरबलि देने की प्रथा चालू हो गयी है। कामरूप के अन्तर्गत कूचविहार के कोच राजा नर नारायण ने कामाख्या देवी के लिये इष्टक-मन्दिर निर्माण करवा के एक सौ चालीस की नरबलि के साथ मन्दिर का उद्घाटन-उत्सव सम्पन्न किया था। छिन्न मुंडों को अलग-अलग ताम्र पात्रों में रखकर देवी के सम्मुख रखा गया था। उनके भतीजे रघुदेव ने भी सन् 1583 में हयग्रीव-मन्दिर का पुननिर्माण करके ब्राह्मणों को भूसम्पत्ति दान देकर उसके बदले सात सौ (700) ब्राह्मणों को संग्रह करके बलिदान दिया था। इन छिन्न मुंडों को भी अलग-अलग ताम्र पात्रों में देवमूर्ति के सामने रखा गया था। आसाम के जयन्तीया राज्य में भी नरबलि का प्रचलन था। अंग्रेज-राजदूत को भी पकड़ के जयन्तीया राजा ने जयन्तीदेवी की मूर्ति के सम्मुख बलिदान दिया था इसी के कारण जयन्तीया राज्य को अंग्रेजों ने छीन लिया था। इस रूप से सुविधा के अनुसार ब्रिटिश प्रजाओं को पकड़-पकड़ के बलिदान दिया जाता था। आसाम के खासी पहाड़ में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी।

कामाख्या पहाड़ का पूर्व नाम मयूर पहाड़ था। महाभारत युग के राजा भगदत्त के पिता नरकासुर ने उस पहाड़ को तन्त्र धर्म का केन्द्र बनाया था। तब

से मयूर-पहाड़ "पञ्च-मकार" के आधिक्य के कारण "कामाख्या-पहाड़" बन गया है।

वहाँ योग-साधन-प्रणाली सीखने के लिये हम उस पहाड़ के ऊपर कामाख्या-मन्दिर में जाने वाले थे। रास्ते में और दो साथी जुट गये। एक गौहाटी के कमलाकान्त फुकान और दूसरे लोहित कुमार बडुआ। पहाड़ पर चढ़ते समय वहाँ के सुप्रसिद्ध योगी महाकाल बाबा की चर्चा चल रही थी। कामाख्या मन्दिर में पहुँचने से पहले ही उनका आश्रम मिल गया। पहाड़ के एक संकीर्ण कक्ष में बाबा जी आसन लगाकर बैठे हुये थे। आँखें बन्द थी। गले में मोटी रूद्राक्ष की माला थी। व्याघ्र-चर्म से घर के भीतर का भाग आच्छादित था। घर के भीतर नर-मुण्डों के कपाल झूल रहे थे। उनके दाहिनी तरफ थाली में छाग-माँस आहुति के लिये रखा हुआ था। बायें बगल में एक टोकरी में छिली हुई लीचियों का समूह मालूम पड़ा। पीछे मालूम हुआ कि यह आगन्तुक भक्तों के लिये प्रसाद रूप में देने को बकरों की आँखें रखी गई हैं। बाबा के सम्मुख होमकुण्ड प्रज्वलित किया गया। भक्त लोग आश्रम कक्ष को भीतर-बाहर पूर्ण कर रहे थे। माँस का आहुतिदान शुरू हो गया। भृंगारपात्र से डाली हुई शराब को मिट्टी के शराबों में भर-भर के भक्तों में परोसना भी शुरू हुआ। मैं संकुचित हो गया। एक भक्त ने कहा- ''आज तुम्हारा परम सौभाग्य है। जो आज शनिवार को पूर्णाहुति के रोज तुम अचानक पहुँच गये हो।''

मेरे साथियों ने कहा- ''आज दिवारात्र यहाँ ही रहा जाये। पूर्ण पञ्च-मकार के अर्थात् मत्स्य, माँस, मुद्रा, मद्य और मैथुन का पूर्ण सौभाग्य लेकर तब यहाँ से चलना।''

इस बात को सुनकर मुझे भय, क्रोध और लज्जा आई। मैंने मिट्टी के पात्रों को छीन लिया, फेंक दिया और तोड़ दिया। परोसने वाले चिल्लाने लगे। मैं अति वेग से नीचे उतरने लगा। भक्त लोग मुझे पकड़ने के लिये ''पगला-पगला'' कहते हुये पीछे दौड़ने लगे। मैंने देखा कि आठ-दस आदमी आ ही रहे हैं। मैं अचानक नीचे पड़े पेड़ की मोटी डाल लेकर खड़ा हो गया। तब वे लोग डर

के मारे भाग गये थे। मैं ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पांडुघाट में पहुँच गया।

29. कामरूप से परशुरामः– पांडुघाट में शिवसागर के एक पण्डित ने मेरी सब बातें सुनकर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे योगी-साधकों के पते दे दिये। मालूम हुआ के शिव सागर के 'मुक्तिनाथ' मन्दिर में जोड़हाट के जटिया बाबा के आश्रम में और आसाम की पूर्वोत्तर सीमा पर परशुराम कुण्ड के पास झुण्ड के झुण्ड योग-विद्या शिक्षा देने वाले योगी-साधक लोग रहते हैं। मैं उन स्थानों पर भी गया।

30. परशुराम कुण्ड से नेपालः– पश्चिम आसाम से पूर्व-आसाम तक अतिक्रम करके मैंने अकेले ही उन सब स्थानों में योगी और साधकों के सन्धान में परिभ्रमण किया था। लेकिन सफल काम नहीं हुआ। ये लोग सबके सब कामाख्या वाली योगसाधना में ही निपुण हैं। मैंने निराश होकर सदिया में आकर दो रोज भर विश्राम किया। वहाँ एक नेपाली ब्राह्मण सिपाही से परिचय हो गया। उन्होने मुझको नेपाल जाने के लिये परामर्श दिया। नेपाल में योग सिद्ध पुरुष बहुत मिल जायेंगे। इस आशा पर मैंने उत्तरी-आसाम का अतिक्रमण करके मिथिला में प्रवेश किया। मैं समस्तीपुर, द्वारबंगा (दरभंगा), बेतिया आदि का अतिक्रमण करके नेपाल में पहुँच गया था। धीरे-धीरे काठमाण्डु होकर पशुपतिनाथ पहुँचा। दो स्थानों में मेरी तलाशी भी ली गयी। काठमाण्डु से करीब बीस योजन दूरी पर मुक्तिनाथ और वहाँ से दो योजन की दूरी पर विभिन्न स्थानों में गया। उन सब स्थानों में करीब-करीब सब ही साधु-संन्यासी गाँजा, भाँग और शराब पीते हैं। इनके मतानुसार ये सब नशीले पदार्थ योग-विद्या शिक्षा के लिये जरूरी हैं। मैं नेपाल में आकर भी निराश हो गया। मैं एक वैरागी साधु के परामर्शानुसार कलकत्ता और नवद्वीप के प्रसिद्ध पण्डित और साधुओं से मिलने के लिये फिर कलकत्ता आने के लिये तैयार हो गया था और परिव्राजक साधुओं के साथ नेपाल से बंगाल के लिये प्रस्थान कर लिया था।

31. नेपाल से पुनः कलकत्ता मेंः– मैंने कलकत्ता से आते हुये

मिथिला की हालत भी जान ली थी। मिथिला के रहने वाले अधिकांश बहुत ही गरीब दु:खी और सरल हैं। इन में भक्त साधक बहुत हैं और योगी बहुत ही कम हैं। मैंने कलकत्ता आकर यहाँ के आदिम मालिक सावर्ण चौधरी के वंशधरों के आग्रह से उनके गृह में आश्रय लिया। यह स्थान बेहाला की तरफ कलकत्ते के दक्षिण में है। उन्होंने बाहर कहीं भी जाने का निषेध कर दिया था। किसी पर्व के उपलक्ष्य में उन्होंने नवद्वीप और कलकत्ता के चुने हुये साधक और पण्डित लोगों को मेरे साथ वार्तालाप के लिये आमन्त्रण भेजा था। निर्दिष्ट दिन में लगभग पच्चीस साधु और पण्डित सम्मिलित हुये। मेरी भ्रमण की कहानियाँ और भ्रमण के उद्‌देश्य को सुनकर सबने हर्ष प्रकट किया। एक वृद्ध पण्डित ने कहा– ''आपने भारत के पूर्व-पश्चिम उत्तर दिशाओं के प्रधान प्रधान सब ही तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया है। देश वासियों को और देश को आपने अच्छी तरह जान भी लिया है। अब बाकी रहा दक्षिण देश। दक्षिण देश का भ्रमण करके आप किसी स्थान पर साधना के लिये बैठ जायें या जो कुछ कर्तव्य समझें उसका पालन करें। हमने यहाँ सुना था कि दक्षिण देश के तीर्थ यात्री लंका तक भी तीर्थ-दर्शन के लिये जा सकते हैं। कलकत्ता में रहते हुये और चारों तरफ देखकर मेरे अनुभव में आया था कि अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के लिये बंगाल में साधारण रूप से और कलकत्ता में विशेष रुप से विद्यालयों की स्थापना हो रही है। बहुतों को शायद मालूम नहीं है कि अप्रत्यक्ष रूप से ये सब विद्यालय गिरजाघर का रूप धारण करेंगे और प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा केन्द्र के रूप में ही रहेंगे। इससे दासमनोभाव की वृद्धि होगी।

दक्षिण भारत की यात्रा

1. कलकत्ता से पुरी:—कलकत्ता से तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं पुरी की तरफ रवाना हो गया था। कलकत्ता से पुरी करीब चालीस योजन दूरी पर है। धीरे-धीरे हम पुरी में पहुँच गये। पहले पुरी से जगन्नाथ मन्दिर का पूजा संभार महाराष्ट्र-भोंसले वंशीय नागपुर के राजाओं के हाथों में था। अंग्रेजों से सन्धि होने के बाद यह पूजा-संभार भोंसले से छूटकर अंग्रेजों पर आ गया था। अंग्रेजों ने परिस्थिति के अनुसार इस जगन्नाथ की मूर्ति की पूजा का भार खुरदा के राजा पर छोड़ दिया। जगन्नाथ की सेवा और पूजादि कार्यों में बत्तीस हजार रुपये वार्षिक खर्च होता है। वह खर्च चलाने की मन्दिर की भू-सम्पत्ति को महन्त लोग जमींदारी के रूप में भोग कर रहे हैं।

पुरी में भारत के धर्म-सम्प्रदायों के सब ही के अपने-अपने मठ-मन्दिर संन्यासी मौजूद हैं। आचार्य शंकर द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ आज भी पुरी में विद्यमान है। किसी समय बौद्ध लोगों ने पुरी में प्राधान्य से विस्तार किया था। जगन्नाथ के मन्दिर में बौद्ध की शरण वाणी मूर्ति के रूप में स्थापित हुई थी। वे तीन शरण वाणियाँ ये हैं- ''बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्म्मं शरणं गच्छामि और संघं शरणं गच्छामि।'' बुद्ध, धर्म और संघ ये तीन शरीर जगन्नाथ के मन्दिर में काष्ठ-निर्मित तीन देवता के रूप में देखे जाते हैं। ''बुद्ध'' जगन्नाथ के रूप में प्रथम ''धर्म'' सुभद्रा रूप में द्वितीय और ''संघ'' बलराम के रूप में तृतीय शोभा और गौरव दे रहे हैं।

बौद्ध-तांत्रिकों के प्राधान्य से जगन्नाथ के मन्दिर गात्र में मिथुन शिल्प का भी प्राधान्य घोषित हो रहा है। विभिन्न हाव-भावों की अति कुत्सित और अश्लील मूर्तियाँ आज भी मन्दिर-गात्र में स्थायी रूप से रखी हुई हैं।

पुरी में सर्वत्र खाद्याखाद्य व्यापार में कट्टरपन नहीं है। बाजार में रन्धित अन्न को सब कोई स्पर्श करते हैं और खरीद लेते हैं। किसी के रन्धित अन्न को जो चाहे खा सकते हैं । उदारता ने सीमा का भी अतिक्रम किया है। किसी के

जूठे अन्न को जो चाहे खा सकते हैं और यह कार्य पुण्य समझा जाता है।

लेकिन आज भी बहुत हिन्दुओं के लिये मन्दिर में प्रवेशाधिकार नहीं हैं। उनके लिये मन्दिर के प्रवेश द्वार में 'पतित-पावन ठाकुर' नाम से एक चित्र रखा गया है। इस मूर्ति के दर्शन करके खास मन्दिर में प्रवेश के सम्पूर्ण पुण्य को ये लोग लूट लेते हैं। जगन्नाथ की रथ-यात्रा और स्नानयात्रा के रहस्य तो बहुत ही विस्मयकर और हास्यकर हैं। रथयात्रा आदि उत्सवों में ही सब ही जातियाँ जगन्नाथ को स्पर्श करती हैं और पूजा देती हैं। इससे सर्वसाधारण के पाप जगन्नाथ में घुसकर जगन्नाथ को अशुचि बना देते हैं और जगन्नाथ खुद पतित और जाति-भ्रष्ट बन जाते हैं। इसलिये जगन्नाथ की स्नान-यात्रा से वे शुचि बन जाते हैं। सर्वसाधारण के पाप धौत होके जगन्नाथ के शरीर से निकल जाते हैं जिससे जगन्नाथ का पातित्य नष्ट हो जाता है। मूर्ति-पूजा के विविध विषयों में अर्थनीति का प्रभाव सर्वत्र ही दृष्ट हो जाता है। व्यवसाय-नीति पर ही इसी ढंग से पंडा लोगों ने तीर्थ स्थानों में मूर्तिपूजा को कायम रखा है। पुरी में पंडा लोगों का राज्य है। स्नान-यात्रा और रथ-यात्रा के बाद पंडों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अत्याचार के कारण कोई योगी या साधक पुरी में ठहर नहीं सकते।

यहाँ से रवाना होने से पहले मैंने जगन्नाथ मन्दिर के मालिक या खुरदा के राजा से प्रार्थना की थी-''राजन्! आप हमारे धर्म-रक्षक क्षत्रिय राजा हैं। आप हमारे धर्म को बचाइये। विदेशी वणिक् और विधर्मी ईसाई पादरी एक साथ मिलकर हमारे देश का सर्वनाश कर रहे हैं। ये लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से सत्यानाश कर रहे हैं। हम संन्यासी और साधु लोग देश में सर्वत्र देशवासियों को सचेत करने के लिये एकता-बद्ध हो रहे हैं। आप अपनी प्रजाओं को सचेत करने का भार लीजिये। आप केवल नियन्त्रण-भार लीजिये। सैकड़ों संन्यासी आपके नियन्त्रण में कार्य करेंगे। ये लोग केवल आपकी प्रजाओं के अन्दर स्वधर्म की रक्षा और देश के प्रति भक्ति-भाव का प्रचार करेंगे। अगर इस कार्य के लिये आप असमर्थ हों तो जगन्नाथ मन्दिर की वार्षिक आय से कुछ अंश खर्च के लिये अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति के हाथों में जमा कर दीजिये।''

राजा ने धीर स्थिर होके सब सुनी, लेकिन बोल दिया- ''महाराज! इस विषय पर हमसे कभी अनुरोध दुबारा नहीं करना। इस प्रकार के दोनों कार्य ही विधि- विरोधी हैं। हम इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। एक पैसा भी इसमें हम खर्च नहीं करेंगे। आप मुझको क्षमा करें।'' मैं निराश होके चला आया।

2. पुरी से धनुष्कोटिः– मैं और साधु कृपाराम ब्रह्मचारी दोनों क्रमानुसार एक-एक करके नासिक, शृंगेरी, बंगलोर, महीशूर, काँची, त्रिचिनापल्ली, मदुरा, रामेश्वर, धनुष्कोटि और कन्याकुमारी तक और इन सब तीर्थों के अगल-बगल के तीर्थों में भी गये। सब ही जगह विराट्-विराट् मन्दिरों में वार्षिक लाखों रुपये जनसाधारण के भक्तिपूर्ण दानों से जमा हो जाते हैं। लेकिन इसका खर्च देश के अधिवासियों के हित या देश के हित या देश के हितकर कार्यों में नहीं होता है। केवल स्वार्थी पुजारियों के पालन-पोषण और भोग-विलास आडम्बरों में ही लग जाता है। सब मन्दिरों के कर्तृपक्ष से ही अनुरूप मैंने आवेदन किया था और मुझको अनुरूप जवाब भी मिल गया था कि उनसे यह सब कार्य असम्भव है।

3. धनुष्कोटि से लंकाः– धनुष्कोटि में सारनाथ से आये हुये एक बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप हुआ। उन्होंने मुझे सिंहल जाने के लिये प्रेरणा दी थी। मुझे और कृपाराम ब्रह्मचारी को भिक्षु के साथ काष्ठ निर्मित जलयान से उस पार जाने का सरकारी अनुमति-पत्र भी मिल गया। जहाज उस पार तलैमन्नार नामक बन्दरगाह में पहुँच गया। वहाँ से कोलम्बो और कांडी में जाकर बुद्ध मन्दिरों में ठहरा। वहाँ से एक पर्वत के 'आदम' नामक शृंग पर एक पुरातन मन्दिर में रहा। वहाँ अनुराधापुरादि स्थान भ्रमण करके बौद्ध-शिक्षालय, विहार और बौद्ध-मन्दिरों में बौद्ध लामा और भिक्षुओं के समक्ष भारत के विभिन्न धर्म मत और बौद्ध मत के बारे में आलोचना की। सिंहल को प्राचीन लंका बोलकर स्वीकार करना कठिन है।

4. लंका से पुनः धनुष्कोटिः– लंका (सिंहल) से हम लोग

जलयान द्वारा फिर धनुष्कोटि पहुँच गये थे। मैं धनुष्कोटि में बौद्ध-सम्मेलन में निमन्त्रित होके पहुँचा। हमारे साथ कई एक बौद्ध-भिक्षु लंका से आते समय परिचित हो गये थे। हम बुद्ध को एक योगी साधू बोलकर ही विश्वास करते हैं। वे नास्तिक भी नहीं थे और वेद-विरोधी भी नहीं थे। वेद के नाम पर जो यज्ञों में पशु-वध होते थे और वैदिक धर्म के नाम पर जो अयौक्तिक कदाचार और कुप्रथा का प्रचलन था, बुद्ध उन्हीं के विरोधी थे। बौद्ध पंडितों ने मेरे मुख से ''धम्मपद'' ग्रन्थ से गौतम बुद्ध की वाणियाँ भी सुनी थी। वे लोग मेरे प्रति सन्तुष्ट हुये थे। बौद्धों के अन्दर हीनयान और महायान सम्प्रदायों के भेद-भाव, बौद्ध सम्प्रदाय के लिये हानिकारक हुये हैं। एक बौद्ध पंडित ने सम्मेलन में मुझसे प्रश्न किया था भारत में बौद्ध धर्म की धीरे-धीरे विलुप्ति का क्या कारण है?''

हमने जवाब में कहाः- ''वेद विरोधी मनोभाव और प्रचार, ईश्वर-विरोध ी आन्दोलन, राजा, महाराजा, सम्राटों पर बौद्ध धर्म-प्रचार करने का भार अर्पण कर देना, भिक्षु और भिक्षुणी को एक साथ प्रचारक पदों पर नियुक्त कर देना, भिक्षु लोगों का गृहस्थ लोगों के साथ अत्यन्त घनिष्ठता स्थापन करना इत्यादि कारणों से भारत में बौद्ध-धर्म का प्रचार और प्रसार अबाध गति से नहीं हुआ।

5. धनुष्कोटि से कन्याकुमारीः— बहुत दिनों से निर्दिष्ट स्थानों में और निर्दिष्ट समय तक दिल्ली के योगमाया मन्दिर से प्रजा विद्रोह के बारे में कोई खबर नहीं मिली थी। मैं धनुष्कोटि से कन्याकुमारी में आया था। वहाँ रामेश्वर के भव्य मन्दिर में ठहरा। विभिन्न मन्दिरों से घूम-घूमकर साधु-संगठन कार्य में दीर्घकाल व्यतीत किया गया। साधु आपस में संगठित होने लगे। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करना और वहाँ के जन साधारण के अन्दर जागृति पैदा कर देना ही साधुओं का कर्तव्य था। भारत-व्यापी प्रजा विद्रोह का प्रत्यक्ष संग्राम अचानक शुरू हो गया था। अत्याचारित और उत्तेजित प्रजागण नेतृवृन्द के नियन्त्रण से बाहर चला गया था। बहरामपुर, बारीकपुर, मेरठ आदि स्थानों से विद्रोह शुरू होकर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गया था। दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बरेली और झाँसी इस क्रान्ति युद्ध के केन्द्र रहे थे। संगठन पूरा

नहीं होने के कारण और अचानक विच्छिन्न और विशृंखल रूप से युद्ध शुरू होने के कारण युद्ध में पराजय आ गया था। विद्रोही प्रजाजन संख्या में करीब 50-60 हजार नेपाल की सीमा पर नेपाल राज्य के आश्रय-प्रार्थियों के रूप में हाजिर हो गये थे। नेपाल-राज श्री जंगबहादुर ने कड़ी भाषा में आश्रय देने से इन्कार कर दिया था। नाना साहब, तात्या टोपे आदि कई एक नेता विद्रोहियों के साथ थे। विद्रोही प्रजाजनों ने आत्म-रक्षार्थ जंगलों में प्रवेश किया था और वहाँ ही फल-फूल खाकर किसी रूप से देह-रक्षा करने लगे थे। बहुत प्रजा भूखी मर गई या वन्य हिंस्र पशुओं के आहार के रूप में समाप्त हो गई थी। बहुत विद्रोही पकड़े जाने पर मृत्यु-दण्ड को प्राप्त हुये और कोई-कोई भाग कर आत्मरक्षार्थ इधर-उधर चले गये थे। इस प्रकार की चर्चा कन्या-कुमारी तक चल रही थी। हम इस पर अच्छी तरह सोचने लगे और दिल्ली के योगमाया मन्दिर से कन्याकुमारी में प्रजा-विद्रोह के बारे में आने वाले समाचार की प्रतीक्षा में निर्दिष्ट दिन तक बिताने का संकल्प किया था।

6. कन्या कुमारी में नाना साहबः— कन्या कुमारी भारत का अन्तिम दक्षिणी सीमा का अन्तरीप है। पूर्व दिशा का बंगोपसागर, पश्चिमी दिशा का अरब सागर और दक्षिणी दिशा का भारत महासागर इस कन्याकुमारी अन्तरीप के सम्मुख सम्मिलित हुये हैं। एक दिन भारत महासागर की तरफ मुख करके एकान्त में बैठे हुये हम भारत के धर्म और स्वतंत्रता की विराट् समस्या के बारे में आँखें बन्द करके सोच-विचार कर रहे थे।

अचानक पीछे से शब्द आयाः- ''हम योग-माया मन्दिर के समाचार लाये हैं ।'' मुख पीछे की तरफ घुमा कर देखा तीन मुण्डित मस्तक, गैरिक वस्त्रों से सज्जित और कमण्डलधारी संन्यासी आ रहे हैं। उनमें से एक को शिवाजी के सतारा सिंहासन के उत्तराधिकारी नाना साहब को पहचान लिया। शेष दोनों अपरिचित थे। तीनों प्रणिपात करके बैठ गये और तीनों की सजल दृष्टि से अवाक् से रह रहे थे।

मैंने कहा-''युद्ध-पराजय और नेपाल के जंगल में प्रवेश तक मुझे सब

मालूम हो गया। इसमें हताशा या निराशा होने का कोई कारण नहीं है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये युद्ध में जय या पराजय दोनों ही लाभदायक हैं। आप लोग भविष्यत् भारत के लिये त्याग, साहस, शूरता और निर्भीकता और स्वतंत्रता के लिये प्रेरणा देंगे।''

नाना साहब ने दोनों आगन्तुकों का परिचय दिया- एक तात्या टोपे और दूसरे मेरे साथी दुर्जय राव हैं। हम लोग इसी गुप्त वेश में आपको योगमाया मन्दिर के निर्देशानुसार ढूँढते हुये यहाँ पहुँच गये हैं। ब्रिटिश गुप्तचर हमारे सन्धान के लिये हमें ढूँढ़ रहे है। न मालूम कब हम पकड़े जायें और वध-स्तम्भों में प्राण त्याग करना पड़े। आप आशीर्वाद दीजिए। जिससे हम सहर्ष मृत्यु-वरण कर सकें और भारत के सुपुत्र पराधीन भारत को मुक्त कराने के लिए आयें।

कानपुर के एक सहस्र अंग्रेज नर-नारियाँ विपत्ति में पड़ी हुई थी। मैंने आश्वासन दिया था कि ये लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार इलाहाबाद में जा सकते हैं । इन अंग्रेजों के अन्दर सैकड़ों सिपाही ऐसे भी थे, जिन्होंने विगत सप्ताह में काशी और प्रयाग में उन सब देशी सिपाहियों के बालकों और स्त्रियों पर अत्याचार किये था। नील साहब के अत्याचारों की स्मृति ने भी इन सब देशी सिपाहियों को उत्तेजित कर दिया था। जिसके कारण उन्होंने गोलियों के द्वारा उनमें अधिकांश को मार दिया था। जो लोग बच गये थे, उनको भी बन्दी बनवा दिया। विद्रोही-प्रजा और सैन्यों पर विजय लाभ करके जब विजयी अंग्रेज सिपाही कानपुर के समीप पहुँच गये, तब विद्रोही प्रजाओं ने दो सौ से भी अधिक अंग्रेज महिलाओं और शिशुओं का बध करके उनके मृत देहों को निकटस्थ कुओं में फेंक दिया था। जनता के इस प्रकार के हत्या-काण्ड के साथ मेरा बिल्कुल सम्बन्ध नहीं था। तथापि आनुषंगिक कारणों से मेरा सम्बन्ध था। इस महापाप के प्रायश्चित के लिये मैं अपने देह को प्रज्ज्वलित अग्निकुण्ड में आहुति के रूप में डाल दूगाँ। मैंने ऐसा ही संकल्प कर लिया है।''

मैंने कहा-''आपका इस प्रकार का संकल्प भूल है। आत्महत्या तो मानसिक विकार या कमजोरी से होती है। आत्मत्याग दूसरा कुछ है। मानसिक बल और

तेजस्विता के बिना आत्मत्याग नहीं बनता। आप तेजस्वी पुरुष हैं। लेकिन संन्यासीयों के वेश को गुप्त रूप से ग्रहण किया है। आप इस गैरिक वस्त्र को सत्य रूप से ग्रहण कीजिए। भारत के पश्चिम सीमा की तरफ किसी मठ मन्दिर में रह कर आप जन सेवा के लिए जीवन दान कीजिए। मनुष्यों को पारमार्थिक कल्याण के लिए उपदेश दीजिये। ऐहिक कल्याण के लिए रोगियों को विना मूल्य वृक्षों के मूल और पत्ती से औषध बनवा के वितरण करते रहिये। मृत्यु तक शान्ति और आनन्द के साथ शेष जीवन बिता सकेगें। आप आत्महत्या कभी न करे। हमारे इस उपदेश को तीनों ने ही समान रूप से ग्रहण किया और तीनों के वहाँ से चलने से पहले मैंने नाना साहब को संन्यास देकर उनका नाम दिव्यानन्द स्वामी रख दिया था। शेष दोनों ने संन्यास लेने का साहस नहीं किया।

दिव्यानन्द ने '' ऐसा ही होगा। भगवान् की इच्छा पूर्ण हो'' ऐसा कहा और तीनों ही वहाँ से चल दिये।

7. मेरा भावी कार्यक्रमः– अपनी संक्षिप्त जीवन के अन्दर सामाजिक स्थिति और गण-जागरण को मैंने सूक्ष्म रूप से अनुभव किया था। इसलिये ही विशुद्ध ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता समझ ली थी। और साथ-साथ मुझे यह भी मालूम हो गया था कि बिना वैदिक ज्ञान के विशुद्ध ज्ञान आ भी नहीं सकता। समाज संस्कार और जातिय जागरण वैदिक भित्ति पर हो- इस सिद्धान्त को देश-हित और मानव-हित के लिये मैंने ग्रहण किया। देश में शत सहस्रों की संख्या में प्रचार-धर्मी वेद-प्रचारक बन जाये तो देश का कल्याण होगा। वैदिक ज्ञान से वंचित समाज-संस्कारक या राजनितिक कर्णधार हमको भोगवाद, उच्छृंखलता और नास्तिकता की तरफ ले जायेंगे। इसलिये वेद को सर्व-साधारण के अन्दर सहज, सरल और सुबोध रूप से जाति-वर्ण लिंग निर्विशेष से प्रचार करने की आवश्यकता है। तब हम सोचने लगे कि वेद के अनुभवी, वेद के ज्ञान को देने में समर्थ और इच्छुक विद्वान कहाँ है और उनका दर्शन किस प्रकार से हो। मैंने योग-विद्या-परायण योगियों के संधान के लिये जैसे विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था और लाभावान् हुआ था ऐसे ही वैदिक ज्ञान

प्रदान करने के इच्छुक और प्रकृत वेदज्ञ पंडितों के संधान में भ्रमण करने पर भी मेरा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ था। योग-विद्या के ज्ञानार्जन के लिये जैसे मैंने भिन्न-भिन्न स्थानों में परिभ्रमण किया था, ठीक वैसे ही वेद पाणिनि, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि वैदिक ग्रन्थों के ज्ञानार्जन के लिये मैंने देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था।

8. गुरुवर विरजानन्द सरस्वती जी की शरण में:– अन्त में वेद विद्या-अर्जन के लिये भारत के अद्वितीय वेदज्ञ पंडित दण्डी स्वामी श्रीमद् विरजानन्द सरस्वती के शरण ग्रहणार्थ मथुरा में, मैं आ गया था। उन्होंने मेरे प्रति अशेष कृपा करके वर्षों तक मुझे वेद-विद्या प्रदान की। उन्होंने मुझसे ''सर्वसाध ारण के अन्दर वेद-प्रचार और अवैदिक मतों के खण्डन'' की शपथ को दक्षिणा रूप से ग्रहण किया था।

9. गुरु दक्षिणा दान:– गुरुदक्षिणा-प्रदानार्थ ही मैंने आगरे से लेकर कलकत्ता तक साठ से ऊपर स्थानों में करीब नौ वर्षों तक (अर्थात्-1863 से 1872 तक) परिभ्रमण किया। शास्त्रार्थ किये और वैदिक ज्ञान का प्रचार किया है । इसी क्रम के अनुसार ही मैंने काशी में आकर रक्षण-शील सनातनी पंडितों को ''मूर्तिपूजा अवैदिक'' विषय लेकर शास्त्र-युद्ध में आह्वान किया था। उस शास्त्रविचार-सभा में सत्ताईस विरोधी पंडितों के सम्मुखीन हुआ था। उन सत्ताईस पंडितों के अन्दर प्रधान प्रतिद्वन्द्वी छः पंडित बंगाली ही थे। उस सभा के विवरण संग्रहार्थ ''बंगाल रायल सोसाइटी'' के वैदिक पंडित श्री सत्यव्रत सामश्रमी उपस्थित थे। उन्होंने अपने संस्कृत पत्र 'प्रयत्न-क्रमनन्दिनी' में मेरे लिये पक्ष में विजय घोषणा की थी। 'हिन्दू पेट्रियट' और ब्रह्म समाज के ''तत्त्वबोधनी'' पत्रों में भी मेरे ही अनुरूप विजय-घोषणा की गई थी। इस उपलक्ष्य में बंगाल के प्रतिष्ठित पुरुषों से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया। देवेन्द्रनाथ ठाकुरादि के अनुरोध से ही मैं कलकत्ता आया हुआ हूँ।

10. उपसंहार:– मेरे कलकत्ता आने का प्रधान उद्देश्य है- वेद

विद्यालय की स्थापना और गौण उद्देश्य है वैदिक धर्म का मौखिक प्रचार करना। संस्कार-पन्थी बंगाल की तरफ मेरा मानसिक आकर्षण स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन राय का मूर्ति-पूजा विरोधी आन्दोलन (सन् 1787), ईसाई धर्म-विरोध आन्दोलन (सन् 1820) सतीदाह निषेध आन्दोलन (सन् 1829) जन साधारण के अन्दर आर्य-धर्म-प्रचार के लिये महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ''तत्त्व बोधिनी पत्र'' का संस्थापन और स्त्री शिक्षा के लिये विद्यालय-स्थापनादि का कार्य और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा ऋग्वेद का बंगानुवाद प्रकाशन (सन् 1841) आदि सर्वतोमुखी संस्कारादि के कारण बंगाल के प्रति मेरा आकर्षण पैदा हो गया था।

मेरे मुख से आप लोगों ने मेरे जीवन के बारे में सब कुछ सुनने के लिये आग्रह किया था। योग-विद्या के बारे में मेरा अनुभव, प्रजा-विद्रोह के बारे में मेरा मन्तव्य और मेरे पारिवारिक परिचय के बारे में प्रकाश आदि विषय जानने के लिये विशिष्ट व्यक्तियों ने इच्छा प्रकट की थी। मैंने जहाँ तक सम्भव हुआ इन विषयों के बारे में सब कुछ कहा। विभिन्न शंकायें मेरे सम्मुख आयी थीं। इनका भी समाधान किया गया है। जहाँ तक यह सब मेरी स्मृति में थे, सब कुछ कहा। आप लोगों ने सब का सब लिपि बद्ध किया है। आप लोगों से केवल एक ही अनुरोध है कि मेरे जीवन-काल में यह सब मुद्रित न हो।

16 दिसम्बर, 1872 को मैं कलकत्ता पहुँचा था, आज 31 मार्च 1873 है। अब हुगली और वर्धमान की तरफ भी मुझे जाना है। इसके पश्चात् बिहार की तरफ रवाना हो जाऊँगा। कल से मैं मौन धारण करुँगा। परमप्रभु आप लोगों की सदिच्छा पूर्ण करें।

इति योगी का आत्मचरित्र

श्रद्धाञ्जलियाँ

1. महर्षि दयानन्द जी के उपदेशों ने करोड़ों लोगों को नवजीवन, नवचेतना और नया दृष्टिकोण प्रदान किया है । डा० राजेन्द्र प्रसाद प्रथम राष्ट्रपति

2. महर्षि दयानन्द जी स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे, उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रहा है । वीर सावरकर

3. संगठन कार्य, दृढता, उत्साह और समन्वयात्मकता की दृष्टि से आर्य समाज की समता कोई नहीं कर सकता । नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

4. स्वामी दयानन्द जी मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है । वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है ।

पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय

5. स्वामी दयानन्द एक ऐसे प्रकाश के स्तम्भ हैं, जिन्होंने असंख्य मनुष्यों को सत्य का मार्ग बतलाया है । मैं अपने को उनका अनुयायी कहलाने में गर्व अनुभव करता हूँ । देवता स्वरूप भाई परमानन्द (एम.ए.)

6. मैं ऋषि दयानन्द जी को अपना राजनैतिक गुरु मानता हूँ । मेरी दृष्टि में तो वे महान् विप्लववादी नेता और राष्ट्र विधायक थे ।

विठ्ठल भाई पटेल

7. गांधी जी राष्ट्र के पिता थे, तो महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के पितामह थे । अनन्तरशयनम् अय्यंगर

8. दयानन्द ! योग विद्या शिक्षा के लिये ही तुमने पितृगृह को छोड़ा है । यह तो वैराग्य का परिचय है, लेकिन केवल वैराग्य से ही योग विद्या का लाभ नहीं होता है । इसके लिये अभ्यास भी चाहिये । अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही योग अर्थात् चित्तवृति का निरोध होता है ।

स्वामी शिवानन्द गिरि, दयानन्द जी के राजयोग के गुरु

9. योगेश्वर महर्षि दयानन्द जी अत्यन्त विरक्त थे तथा उच्चकोटि के

योगाभ्यासी भी थे । राजयोग पर उनका पूर्ण विश्वास था ।

आचार्य भद्रकाम वणी

10. महर्षि दयानन्द ने वेद में प्रतिपादित प्राचीन ऋषियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए मानव मात्र को मुक्ति का सीधा एवं सरल मार्ग दिखा दिया है।

सतीश आर्य